

उपन्यास

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

हिल स्टेशन

[पीछे](#)[आगे](#)

उन दिनों मिर्जा के स्नायुओं पर हिल स्टेशन बुरी तरह सवार था लेकिन हमारा हाल उनसे भी अधिक बुरा था। इस लिए कि हम पर मिर्जा अपने स्नायु-मंडल और हिल स्टेशन समेत सवार थे। जान मुश्किल में थी। उठते-बैठते, सोते-जागते इसी की चर्चा, इसी का जाप। हुआ यह कि वह सरकारी खर्च पर दो दिन के लिए कोयटा हो आए थे और अब इस पर मचले थे कि हम अवैतनिक छुट्टी पर उनके साथ दो महीने वहाँ गुजार आएँ, जैसा कि गर्मियों में कराची के शरीफों और रईसों का दस्तूर है। हमने कहा, 'पूछो तो हम इसीलिए वहाँ नहीं जाना चाहते कि जिन लोगों की परछाईं से हम कराची में साल भर बचते फिरते हैं, वह सब मई-जून में वहाँ जमा होते हैं।' बोले, 'ठीक कहते हो! मगर खुदा के बंदे अपनी सेहत तो देखो। तुम्हें अपने बाल-बच्चों पर तरस नहीं आता? कब तक हकीम, डॉक्टरों का पेट पालते रहोगे? वहाँ पहुँचते ही बगैर दवा के ठीक हो जाओगे। पानी में दवा की तासीर है और किसी-किसी दिन (मुस्कराते हुए) मजा भी वैसा ही। यूँ भी जो समय पहाड़ पर बीते, उम्र में से काटा नहीं जाता। मक्खी, मच्छर का नाम नहीं। कीचड़ ढूँढ़े से नहीं मिलती। इसलिए कि पानी की सख्त किल्लत है। लोगों की तंदुरुस्ती का हाल तुम्हें क्या बताऊँ। जिसे देखो, गालों से गुलाबी रंग टपका पड़ रहा है। अभी पिछले साल वहाँ एक मंत्री ने अस्पताल का उद्घाटन किया तो तीन दिन पहले एक मरीज को कराची से बुलवाना पड़ा और उस की निगरानी पर चार बड़े डॉक्टर तैनात किए गए कि कहीं वह उद्घाटन से पहले ही ठीक न हो जाए। हमने कहा, 'हवा-पानी अपनी जगह, मगर हम दवा के बिना स्वयं को नार्मल महसूस नहीं करते।' बोले, 'इसकी चिंता न करो। कोयटा में आँख बंद करके किसी भी बाजार में निकल जाओ। हर तीसरी दुकान दवाओं की मिलेगी और हर दूसरी दुकान तंदूरी रोटियों की।' पूछा, 'और पहली दुकान', बोले, 'उसमें दुकानों के लिए साइन बोर्ड तैयार किए जाते हैं।' हमने कहा, 'लेकिन कराची की तरह वहाँ कदम-कदम पर डॉक्टर कहाँ? आज कल तो बगैर डॉक्टर की मदद के आदमी मर भी नहीं सकता। कहने लगे, 'छोड़ो भी। फर्जी बीमारियों के लिए तो यूनानी दवाएँ सबसे कारागर होती हैं।'

हमारे अनुचित शकों और गलतफहमियों का इस अकाट्य ढंग से निपटारा करने के बाद उन्होंने अपना वकीलों का-सा ढंग छोड़ा और बड़ी गर्मजोशी से हमारा हाथ अपने हाथ में लेकर हम नेको-बद हुजूर को समझाए जाते हैं वाले अंदाज में कहा, 'भई तुम्हारी गिनती भी संपन्न लोगों में होने लगी, जभी तो बैंक को पाँच हजार कर्ज देने में संकोच न हुआ। कसम खुदा की, मैं ईर्ष्या नहीं करता। खुदा जल्द तुम्हारी हैसियत में इतनी तरक्की दे कि पचास

हजार तक के कर्जदार हो सको। मैं अपनी जगह सिर्फ यह कहना चाहता था कि अब तुम्हें अपने इन्कम-ब्रेकेट वालों की तरह गर्मियाँ बिताने हिल स्टेशन जाना चाहिए। यह नहीं तो कम से कम छुट्टी लेकर घर ही बैठ जाया करो। तुम्हारा यूँ खुले आम सड़कों पर फिरना किसी तरह उचित नहीं। मेरी सुनो! 1956 ई. की बात है। गर्मियों में कुछ यही दिन थे। मेरी बड़ी बच्ची स्कूल से लौटी तो बहुत रुआँसी थी। कुरेदने पर पता चला उसकी एक सहेली ने, जो स्वात घाटी जा रही थी, ताना दिया कि क्या तुम लोग गरीब हो जो साल भर अपने ही घर में रहते हो? साहब! वह दिन है और आज का दिन, मैं तो हर साल मई-जून में छुट्टी लेकर सपरिवार 'अंडर ग्राउंड' हो जाता हूँ। फिर उन्होंने कराची के और भी बहुत से छुपे हुए सज्जनों के नाम बताए जो उन्हीं की तरह हर साल अपने सम्मान की रक्षा करते हैं। अपना यह वार कारगर होते देखा तो 'नाक-आउट' की आवाज बुलंद की। बोले, 'तुम जो इधर दस साल से छुट्टी पर नहीं गए तो लोगों को खयाल हो चला है कि तुम इस डर के मारे नहीं खिसकते कि दफ्तर वालों को कहीं यह पता न चल जाए कि तुम्हारे बगैर भी काम बखूबी चल सकता है।'

किस्सा हातिमताई में एक जादुई पहाड़ का जिक्र आता है। कोहे-निदा (आवाज देने वाला पहाड़) उसका नाम है और यह नाम यूँ पड़ा कि पहाड़ की खोह से एक अजीबो-गरीब आवाज आती है कि जिस किसी को यह सुनाई दे, वह जिस हालत में, जहाँ भी हो, बिना सोचे समझे उसी की तरफ दौड़ने लगता है। फिर दुनिया की कोई ताकत, कोई रिश्ता-नाता, कोई बंधन उसे रोक नहीं सकता। अब लोग इसे किस्सा-कहानी समझकर मुस्करा देते हैं। हालाँकि सुनने वालों ने सुना है कि ऐसी आवाज अब हर साल हर पहाड़ से आने लगी है। मिर्जा का कहना है कि यह आवाज जब तुम्हें पहले-पहल सुनाई दे तो अपनी निर्धनता को अपने और पहाड़ के बीच में बाधक न होने दो। इसलिए तय हुआ कि सेहत और गैरत का तकाजा यही है कि हिल स्टेशन चला जाए। चाहे और अधिक कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। हमने दबे लहजे में याद दिलाया कि कर्ज मुहब्बत की कैंची है। मिर्जा बोले, 'देखते नहीं लोग इस कैंची को कैसी आतुरता से प्रयोग करके अपनी परेशानियाँ दूसरों को शिफ्ट कर देते हैं? साहब! हुनरमंद के हाथ में औजार भी हथियार बन जाता है।' यहाँ यह स्पष्टीकरण अनुचित न होगा कि कर्ज के बारे में मिर्जा की पंद्रह-बीस साल से वही आस्था है जो मौलाना हाली की ज्ञान के बारे में थी यानी हर तरह से हासिल करना चाहिए -

जिस से मिले, जहाँ से मिले, जिस कदर मिले

लेकिन हमने यह शर्त जरूर लगा दी कि प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स साथ होंगे तो जरा दिल्लगी रहेगी और जिरगौस भी साथ चलेंगे बल्कि हम सब इन्हीं की चमचमाती ब्यूक कार में चलेंगे।

प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स हँसोड़ न सही हास्य के मौके जरूर उपलब्ध कराते रहते हैं मगर उन्हें साथ घसीटने में दिल बहलाने के अलावा उनकी दुनिया और परलोक सँवारने का विचार भी था। वह यूँ कि कस्बा चाकसू से कराची अवतरित होने के बाद वह पंद्रह साल से रेल में नहीं बैठे थे और अब यह हाल हो गया था कि कभी म्यूनिसिपल सीमा से बाहर कदम पड़ जाएँ तो अपने-आप को मातृभूमि से दूर महसूस करने लगते। आखिर किस बाप के बेटे हैं। उनके पूज्यवर मरते मर गए, मगर फिरंगी की रेल में नहीं बैठे और अंतिम समय तक इस आस्था पर बड़े स्थायित्व से स्थिर रहे कि दूसरे कस्बों में चाँद इतना बड़ा हो ही नहीं सकता जितना कि चाकसू में। प्राकृतिक सौंदर्य के चाहने वाले। विशेष रूप से दरिया सिंध के। कहते हैं खुदा की कसम! इससे खूबसूरत दरिया नहीं देखा। वह कसम न खाएँ तब भी यह दावा शब्द-शब्द सही है, इसलिए कि उन्होंने वाकई कोई और दरिया नहीं देखा। खुदा जाने कब से उधार खाए बैठे थे। बस टोकने की देर थी। कहने लगे, 'जरूर चलूँगा। कराची तो निरा

रेगिस्तान है। बारिश का नाम नहीं। दो साल से कान परनाले की आवाज को तरस गए हैं। मैं तो सावन भादों में रात को गुस्लखाने का नल खुला छोड़ कर सोता हूँ ताकि सपने में टप-टप की आवाज आती रहे।' मिर्जा ने टोका कि कोयटा में भी बरसात में बारिश नहीं होती। पूछा, 'क्या मतलब?' बोले, 'जाड़े में होती है।'

फिर भी पाक बोहेमियन कॉफी हाउस में कई दिन तक अटकलें लगती रहीं कि प्रोफेसर कुद्स साथ चलने के लिए इतनी जल्दी कैसे आतुर हो गए और कोयटा का नाम सुनते ही मुल्तान की कोरी सुराही की तरह क्यों सनसनाने लगे। मिर्जा ने कुछ और ही कारण बताया। बोले, 'किस्सा दरअस्त यह है कि प्रोफेसर के एक दोस्त उनके लिए पेरिस से समूर के दस्ताने भेंट में लाए हैं, जिन्हें पहनने के चाव में वह जल्द-से-जल्द किसी पहाड़ी स्थान पर जाना चाहते हैं, क्योंकि कराची में तो लोग दिसंबर में भी मलमल के कुर्ते पहन कर आइस्क्रिम खाने निकलते हैं।' इस अतिशयोक्ति अलंकार की पुष्टि एक हद तक उस सूटकेस से भी हुई जिसमें प्रोफेसर यह दस्ताने रखकर ले गए थे। उस पर यूरोप के होटलों के रंग-बिरंगे लेबिल चिपके हुए थे। वह कभी उसे झाड़ते-पोंछते नहीं थे कि कहीं वह उतर न जाएँ।

अब रहे जिरगौस तो औपचारिक परिचय के लिए इतना काफी होगा कि पूरा नाम जिरगामुल इस्लाम सिद्दीकी एम.ए., एल.एल.बी., सीनियर एडवोकेट हैं। हमारे यूनिवर्सिटी के साथी हैं। उस जमाने में लड़के प्यार और सार में उन्हें 'जिरगौस' कहते थे। इन शिष्ट दायरों में वह आज भी इसी संक्षिप्त नाम से पुकारे और याद किए जाते हैं। अक्सर अपरिचित एतराज कर बैठते हैं कि, भला यह भी कोई नाम हुआ, लेकिन एक बार उन्हें देख लें तो कहते हैं, ठीक ही है। प्रोफेसर ने उनके व्यक्तित्व का वर्णन बल्कि पोस्टमार्टम करते हुए एक बार बड़े मजे की बात कही। बोले, 'उनके व्यक्तित्व में से 'बैंक-बैलेंस और ब्यूक' निकाल दें तो बाकी क्या रह जाता है?' मिर्जा ने झट से लुकमा दिया, 'एक बदनसीब बीवी!' सैर-सपाटे के रसिया, लेकिन जरा खुरच कर देखिए तो अंदर से ठेठ शहरी। ऐसा शहरी जो बड़ी मेहनत और मशक्कत से जंगलों को खत्म करके शहर बसाता है और जब शहर बस जाता है तो फिर जंगलों की तलाश में मारा-मारा फिरता है। बड़े रख-रखाव वाले आदमी हैं और उस कबीले से हैं जो फाँसी के तख्ते पर चढ़ने से पहले अपनी टाई की गाँठ ठीक करना जरूरी समझता है। अधिकतर कार से सफर करते हैं और उसे भी अदालत का कमरा समझते हैं। इसलिए अगर कराची से काबुल जाना हो तो अपने मुहल्ले के चौराहे से ही खैबर के दर्रे का पता पूछने लगेंगे। दो साल पहले मिर्जा उनके साथ मरी और कागान घाटी की सैर कर आए थे और उनका बयान है कि कराची म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की सीमा से निकलने से पहले ही वह पाकिस्तान का रोड-मैप (सड़कों का नक्शा) सीट पर फैलाकर ध्यान देखने लगे। मिर्जा ने कहा, 'तुम्हें बगैर नक्शा देखे भी यह मालूम होना चाहिए कि कराची से निकलने की एक ही सड़क है। शेष तीन तरफ समंदर है।' बोले, 'इसी लिए तो सारी समस्या है।'

इसी सफर की यादगार एक तस्वीर थी जो जिरगौस ने शोग्रां के पहाड़ पर एक पेंशनयाफता टट्टू पर इस तरह बैठ कर खिंचवाई थी जैसे नमाज में झुके हुए हों। इस तस्वीर में वह पूँछ के अलावा टट्टू की हर चीज पर सवार नजर आते थे। लगाम इतने जोर से खींच रखी थी कि टट्टू के कान उनके कानों को छू रहे थे और चारों कानों के बीच में टट्टू की गरदन पर उनकी तीन मंजिली ठोड़ी की कलम लगी हुई थी। अपना सारा वजन रकाब पर डाले हुए थे ताकि टट्टू पर बोझ न पड़े। मिर्जा कहते हैं कि खड़ी चढ़ाई के दौरान कई बार ऐसा हुआ कि टट्टू कमर लचका कर रानों के नीचे से सटक गया और जिरगौस खड़े के खड़े रह गए। कठिन ढलवानों पर जहाँ पगडंडी तंग और दाएँ-बाएँ हजारों फिट गहरे खड्ड होते, वहाँ वह खुद टाँगें सीधी करके खड़े रह जाते। कहते थे, अगर मुकद्दर में गिर कर ही मरना

लिखा है तो मैं अपनी टाँगों की गलती से मरना पसंद करूँगा, टट्टू की नहीं। यह तस्वीर तीन चार हफ्ते तक उनके दफ्तर में लगी रही। बाद में दूसरे वकीलों ने समझा-बुझा कर उतरवा दी कि अगर जानवरों पर बेरहमी को रोकने वालों में से किसी ने देख ली तो खटाक से तुम्हारा चालान कर देंगे।

2

चार दरवेशों का यह काफिला कार से रवाना हुआ। रेगिस्तान की यात्रा और लू का यह हाल कि पसीना निकलने से पहले खुशक। जैकबाबाद से आगे बढ़े तो मिर्जा को बड़ी व्यग्रता से चनों की कमी महसूस होने लगी। इस लिए कि अगर वह उनके पास होते तो रेत में बड़े खस्ता भूने जा सकते थे। दोपहर के खाने के बाद उन्होंने सुराही में पत्ती डालकर चाय बनाने का सुझाव पेश किया जो बिना धन्यवाद इसलिए रद्द कर दिया गया कि सड़क से धुआँ-सा उठ रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद जिरगौस को यही गर्म पानी उससे अधिक गर्म टायरों पर छिड़कना पड़ता था। 120 डिग्री गर्मी से पिघले हुए तारकोल के छींटे उड़-उड़ कर कार के शीशे को दागदार कर रहे थे। इस छलनी में से झाँकते हुए हमने उँगली के इशारे से प्रोफेसर को सात-आठ साल की बिल्लोच लड़की दिखाई जो सर पर खाली घड़ा रखे, सड़क पर नंगे पाँव चली जा रही थी। जैसे ही उस पर नजर पड़ी, प्रोफेसर ने बर्फ की डली जो वह चूस रहे थे, फौरन थूक दी। इस पर जिरगौस कहने लगे कि वह एक बार जनवरी में कराची से हिमपात का दृश्य देखने मरी गए। शहर के बाहरी हिस्से के आस-पास बर्फ पर पैरों के निशान नजर आए जिनमें खून जमा हुआ था। होटल गाइड ने बताया कि यह पहाड़ियों और उनके बच्चों के पैरों के निशान हैं। प्रोफेसर के चेहरे पर दर्द की लहर देख कर जिरगौस तसल्ली देने लगे कि यह लोग तो 'लैंड-स्केप' ही का हिस्सा होते हैं। इनमें अहसास नहीं होता। प्रोफेसर ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है?' हार्न बजाते हुए बोले, 'अहसास होता तो नंगे पाँव क्यों चलते?'

रास्ते की कथा जो रास्ते ही की तरह लंबी और दिलचस्प है, हम अलग रिपोर्ट के लिए उठा रखते हैं कि हर मील के पत्थर से एक यादगार मूर्खता जुड़ी है। चलते-चलते इतना इशारा पर्याप्त है कि प्रोफेसर और मिर्जा के साथ के मजे ने छह सौ मील के सफर और थकन को महसूस न होने दिया। पहाड़ी रास्तों के उतार-चढ़ाव प्रोफेसर के लिए नई चीज थे। विशेष रूप से हमें संबोधित करके बोले, खुदा की कसम यह सड़क तो हार्ट-अटैक के कार्डियोग्राम की तरह है। हर तीखे मोड़ पर उन्हें बेगम की माँग उजड़ती दिखाई देती और वह मुड़-मुड़ कर सड़क को देखते जो पहाड़ के गिर्द साँप की तरह लिपटती बल खाती चली गई थी। जिरगौस ने कार को एक सुरंग में से पिरो कर निकाला तो मिर्जा अंग्रेज इंजीनियरों को याद करके एकदम भावुक हो गए। दोनों हाथ फैलाकर कहने लगे, 'यह हिल स्टेशन अंग्रेजों की देन है। यह पहाड़ अंग्रेज की खोज है।' प्रोफेसर कुदूस ने दाईं कनपटी खुजाते हुए फौरन बात काटी की। बोले, 'इतिहास कहता है कि इन पहाड़ों पर अंग्रेजों से पहले भी लोग रहते थे।' मिर्जा ने कहा, 'बजा! मगर उन्हें यह नहीं मालूम था कि हम पहाड़ पर रह रहे हैं।' अंत में नोक-झोंक और पहाड़ी सिलसिला खत्म हुआ और साँप के फन पर एक हीरा दमकता हुआ दिखाई दिया। 'Eureka! Eureka!'

शहर में घुसते ही हम तो अपने-आप को स्थानीय हवा-पानी के हवाले करके ठीक हो गए लेकिन मिर्जा की बाँछें कानों तक खिल गईं और ऐसी खिलीं कि मुँह में तरबूज की काश फिट आ जाए। सड़क के दोनों तरफ बहुत ऊँचे चिनार देख कर उन्हीं की तरह झूमने लगे। बोले, 'इसको कहते हैं दुनिया भर की सजावट। एक पेड़ के नीचे पूरी बरात सो जाए। यूँ होने को लाहौर में भी पेड़ हैं। एक से एक ऊँचे, एक से एक छतनार मगर जून-जुलाई में पत्ता तक नहीं हिलता मालूम होता है। साँस रोके फोटो खिंचवाने खड़े हैं।' हम बढ़कर बोले, 'लेकिन कराची में तो चौबीस घंटे ताजगी देने वाली समंदरी हवा चलती रहती है।' फरमाया, 'हाँ! कराची में पीपल का पत्ता भी हिलने लगे तो

हम उसे प्रकृति का एक चमत्कार जानकर म्यूनिंसिपल कार्पोरेशन का धन्यवाद करते हैं, जिसने यह बेल-बूटे उगाए, मगर यहाँ इस नेचुरल-ब्यूटी की दाद देने वाला कोई नहीं। हाय! यह दृश्य तो बिल्कुल क्रिसमस कार्ड की तरह है।'

हम तीनों यह क्रिसमस कार्ड देखने के बजाय प्रोफेसर को देख रहे थे और वह 'जिंदा' पेड़ों को उँगलियों से छू-छू कर अपनी नजर की पुष्टि कर रहे थे। दरअसल वह खुबानियों को फल वालों की दुकानों में रंगीन कागजों और गोटे के तारों से सजा-सजाया देखने के इस कदर आदी हो गए थे कि अब किसी तरह यकीन नहीं आता था कि खुबानियाँ पेड़ों पर भी लग सकती हैं।

विद्वान प्रोफेसर देर तक उस आत्मा को तृप्त कर देने वाले दृश्य से आनंदित होते रहे बल्कि इसके कुछ हिस्सों का स्वाद भी लिया।

3

पहली समस्या रहने की थी। इसका चयन और इंतजाम प्रोफेसर की तुच्छ राय पर छोड़ दिया गया मगर उनकी नजर में कोई होटल नहीं जंचता था। एक अल्ट्रामॉडर्न होटल को इसलिए नापसंद किया कि उसके बाथरूम बड़े खुले थे मगर कमरे शरारती व्यक्ति की कब्र की तरह तंग। दूसरे होटल को इसलिए कि वहाँ मामला बिल्कुल उलट था। तीसरे को इसलिए कि वहाँ दोनों चीजें एक ही डिजाइन पर बनाई गई थीं यानी - आप समझ ही गए होंगे। चौथे आलीशान होटल से इस कारण पर भाग लिए कि बंदा किसी ऐसे होटल का कायल नहीं जहाँ के बैरे मुसाफिरों से अधिक स्मार्ट हों। फिर कार पाँचवें होटल के पोर्च में जाकर रुकी, जहाँ एक साइनबोर्ड दो-दो फीट लंबे अक्षरों में शयन व भोजन की दावत दे रहा था।

घर का रहना और खाना

अबकी बार मिर्जा बिदक गए। कहने लगे, 'साहब मैं एक मिनट भी ऐसी जगह नहीं रह सकता', जहाँ फिर वही...'

वाक्य पूरा होने से पहले हम उनका मतलब समझकर आगे बढ़ गए।

छठा नंबर 'जंतान' होटल का था। अंग्रेजों के वक्त की यह तरशी तरशाई-सी इमारत सफेदे के चिकने-चिकने तनों की ओट से यूँ झिलमिला रही थी जैसे सालगिरह का केक! देखते ही सब लहालोट हो गए। प्रोफेसर ने आगे बढ़ कर उसके बीते युग की यादगार ऐंग्लो-इंडियन मैनेजर से हाथ मिलाने के बाद किराया पूछा। जवाब मिला, सिंगिल-रूम पचपन रुपए रोज, डबल रूम मियाँ-बीवी के लिए - पिचहत्तर रुपए। सब सन्नाटे में आ गए। जरा होश ठिकाने आए हुए तो मिर्जा ने सूखे मुँह से पूछा, 'क्या अपनी निजी बीवी के साथ भी पिचहत्तर रुपए होंगे?'

खैर, रहने का ठिकाना हुआ तो सैर-सपाटे की सूझी। प्रोफेसर को कोयटा कुल मिलाकर बहुत पसंद आया। यह 'कुल मिलाकर' की पख हमारी नहीं, उन्हीं की लगाई हुई है। दिल में वह इस सुंदरियों के शहर, इस इतराते हुए सौंदर्य के शहर की एक-एक अदा, बल्कि एक-एक ईंट पर न्योछावर थे लेकिन महफिल में खुल कर तारीफ नहीं करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि लोग उन्हें टूरिस्ट ब्यूरो का अफसर समझने लगें। चार-पाँच दिन बाद हमने एकांत में पूछा, 'कहो! हिल स्टेशन पसंद आया?' बोले, 'हाँ! अगर यह पहाड़ न हों तो अच्छी जगह है।' पूछा, 'पहाड़ों से

क्या हरज है?' बोले, 'किसी के कथनानुसार दूसरी तरफ का दृश्य दिखाई नहीं पड़ता।' दरअस्तल उन्हें बिना घास-पात के पहाड़ देखकर थोड़ी मायूसी हुई। इसलिए एक दिन कहने लगे,

'मिर्जा! यह पहाड़ तुम्हारे सर की तरह क्यों हैं?'

'एक जमाने में यह भी देवदारों और सनोबरों से ढके हुए थे। पर्वत-पर्वत हरियाली ही हरियाली थी मगर बकरियाँ सब चट कर गईं। इसीलिए शासन ने बकरियों के दलन के लिए एक मोर्चा बनाया है और पूरा समाज हाथों में खंजर लिए शासन के साथ है।'

'मगर हमें तो यहाँ कहीं बकरियाँ नजर नहीं आईं।'

'उन्हें यहाँ के लोग चट कर गए।'

'मगर मुझे तो गली-कूचों में यहाँ के अस्ली बाशिंदे भी दिखाई नहीं देते?'

'हाँ, वह अब सब्बी में रहते हैं।'

हर रह जो उधर को जाती है सब्बी से गुजर कर जाती है

हमने दोनों को समझाया, 'आज पेड़ नहीं हैं तो क्या? वन-विभाग सुरक्षित है तो क्या नहीं हो सकता।' बोले, 'साहब! वन-विभाग है तो हुआ करे। इन 'क्लीन-शेव' पहाड़ों में उसके शायद वही दायित्व होंगे जो अफगानिस्तान में समुद्री बेड़े के।'

प्रोफेसर यह ठोस पत्थर के पहाड़ देखकर कहा करते थे, 'ऐसे खालिस पहाड़, जिनमें पहाड़ के अलावा कुछ न हो, दुनिया में बहुत कम पाए जाते हैं।' मिर्जा ने बहुतेरा समझाया कि पहाड़ और अंधेड़ औरत दरअस्तल आयल पेंटिंग की तरह होते हैं - इन्हें जरा दूर से देखना चाहिए। मगर प्रोफेसर दूर के जलवे के कायल नहीं। बिन-पेड़ पहाड़ों से उनकी बेजारी कम करने की गरज से मिर्जा ने एक दिन सूरज डूबने के समय मुर्दा पहाड़ की श्रृंखला की वह मशहूर सुरमई पहाड़ी दिखाई जिसके स्लॉट को देखने वाला अगर नजर जमाकर देखे तो ऐसा मालूम होता है जैसे एक सुंदरी मुर्दा पड़ी है। उसके पीछे को फैले हुए बाल, चौड़ा माथा, चेहरे का तीखा-तीखा प्रोफाइल और सीने के तिकोन गौर से देखने पर एक-एक करके उभरते चले जाते हैं। मिर्जा उँगली पकड़कर इस तस्वीर के टुकड़े कंठस्थ कराते गए। वह अपनी आँखों पर दाएँ हाथ का छज्जा बनाकर गौर से देखते रहे और उस हसीन मंजर से न सिर्फ प्रभावित हुए बल्कि मुआइने के बाद एलान किया कि सुंदरी मरी नहीं, सिर्फ बेहोश है।

पहाड़ों के खाली आँचल का शिकवा दो दिन बाद दूर हुआ जब सब मंजिलें मारते मुहम्मद अली जिनाह के प्रिय हिल स्टेशन 'जियारत' (आठ हजार फीट) पहुँचे। जहाँ तक प्रोफेसर की ऐनक काम करती थी, हरा ही हरा नजर आ रहा था। बिस्तरबंद खुलने से पहले योग्य प्रोफेसर ने एक पहाड़ जीत लिया और उसकी चोटी पर पहुँचकर तस्वीरें भी उतरवाईं। जिनमें उनके होटों पर वह विजयी मुस्कुराहट खेल रही थी, जो नवाबों और महाराजों के चेहरों पर मुर्दा शेर के सर पर रायफल का कुंदा रखकर फोटो खिंचवाते समय होती थी। वह इस घमंडी चोटी की ऊँचाई आठ हजार पचास फीट बताते थे और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी इसलिए कि समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई इतनी ही थी, वैसे जमीन की सतह से सिर्फ पचास फीट ऊँची हो पाई थी। झूठ-सच का हाल अल्लाह जाने, मगर मिर्जा

का हल्फिया बयान है कि विजित पहाड़ की चोटी पर कदम रखने के पाँच मिनट बाद तक विजयी प्रोफेसर की आवाज पचास फिट नीचे 'बेस-कैम्प' में साफ सुनाई दी थी, जहाँ जिरगौस मूवी कैमरा लिए शाम की नारंगी रोशनी में इस ऐतिहासिक दृश्य को फिल्मा रहे थे। इस मुहिम के आखिरी चरण में प्रोफेसर ने यह विचार भी प्रकट किया कि ऐसे पहाड़ों पर शासन बिजली की लिफ्ट लगा दे तो देशवासियों में पर्वतारोहण का शौक पैदा हो जाए। इस आरामतलबी पर मिर्जा ने ताना दिया कि हमारी ही जाति का एक व्यक्ति 'जहीरुद्दीन बाबर' जिसके घोड़ों की टापों से यह पहाड़, यह घाटियाँ और यह रेगिस्तान गुँजे थे, दो मजबूत-बदन मुगल सिपाहियों को बगल में दबा कर किले की दीवार पर बेथकान दौड़ता था। यह सुनते ही प्रोफेसर सोते के पास सुस्ताने बैठ गए। उसके साफ पानी से हाथ-पाँव धोए और गले में लटकी हुई छागल से मरी बीयर उड़ेलते हुए बोले, 'मगर हमारा इतिहास बाबर पर खत्म नहीं होता सरकार! आप यह कैसे भूल गए कि वाजिद अली शाह, अवध के नवाब जब जीने पर लड़खड़ाते हुए चढ़ते तो सहारे के लिए (उस जमाने में लकड़ी की रेलिंग का आविष्कार नहीं हुआ था) हर सीढ़ी पर, जी हाँ! हर सीढ़ी पर दोनों तरफ नवयौवना कनीजें खड़ी रहती थीं, मुगलों की तलवार की तरह झुकी हुई और बिना म्यान।'

प्रोफेसर ने भौगोलिक कठिनाइयों पर इस तरह काबू पाने के और भी कई ऐतिहासिक ढंग बयान किए। जिनके विश्वसनीय होने में शक हो तो हो, नएपन में कोई शक नहीं, लेकिन चोटी को जीतने के बाद जब वह सँभल-सँभल कर घुटनियों उतर रहे थे तो बराबर की चोटी पर एक डरावनी परछाईं नजर आई। पहाड़ों पर सूरज जल्दी डूब जाता है और उस समय दृश्य की बारीक चीजों पर रात का काजल फैलता जा रहा था। सन्नाटा ऐसा गहरा साफ और ऐसा आर-पार कि कलाई अपने कान से लगाकर सुनें तो नब्ज की धक-धक साफ सुनाई दे। अचानक उस भेद-भरी परछाईं ने हरकत की। प्रोफेसर के मुँह से अनायास एक चीख निकली और निकलती चली गई और जब वह निकल चुकी तो, 'रीछ' कह कर वहीं सजदे में चले गए। मिर्जा को भी हिदायत की कि जहाँ हो वहीं बैठ जाओ और सिगरेट बुझा दो। मिर्जा पहले ही बरफानी रीछों के किस्से सुन चुके थे। यूँ भी सीधे-सादे मुसलमान हैं, लिहाजा हिदायत पर आँख बंद करके अमल किया बल्कि अमल के बाद भी आँखें बंद रखीं लेकिन कुछ देर बाद जी कड़ा करके उन्हें खोला तो पूछने लगे, 'मगर यह में-में क्यों कर रहा है?' प्रोफेसर ने सजदे ही में जरा देर कान लगाकर सुना और फिर उछल कर खड़े हो गए। फरमाया, 'अरे साहब! आवाज पर न जाइए। यह बड़ा मक्कार जानवर होता है।'

4

जिरगौस जिस व्यवस्था और उपयुक्तता से सफर करते हैं वह देखने योग्य है। मुहम्मद शाह रंगीले के बारे तो सुना ही था कि जब उसकी जीतती रहने वाली सेना (???) नादिर शाह दुर्रानी से लड़ने निकली तो जनरल अपने स्तर के हिसाब से पालकियों में सवार आदेश देते जा रहे थे और आगे-आगे उनके सेवक उनकी चमकदार तलवारें उठाए चल रहे थे। युद्ध के दूसरे सामान के साथ-साथ कई छकड़े मेहँदी से लदे बराबर में थे ताकि सिपाही और सेनापति अपने हाथ-पैरों और बालों को रण में जाने से पहले बादशाह के प्रिय रंग में रँग सकें। मिर्जा की कही है कि सफर तो खैर सफर है, जिरगौस शहर में भी इतना रख-रखाव बरतते हैं कि उनका बड़ा लड़का जब क्रिकेट खेलता है तो चपरासी छतरी लगाए साथ-साथ दौड़ता है। 'गालिब' की तरह जिरगौस तलवार और कफन ही नहीं, शवस्नान का तख्ता और काफूर तक बाँधकर ले जाने वालों में से है। लिहाफ और मलमल का कुर्ता, नमक और कोका-कोला, ताश और कैसानोवा (उनका काला कुत्ता), डिनर जैकेट और 'पिक-विक पेपर्स', बंदूक और फर्स्ट-एड-बाक्स - गरज कि कौन-सी बेकार चीज है जो यात्रा के समय उनके सामान में नहीं होती? अलबत्ता इस बार

वापसी पर उन्हें यह दुख रहा कि सफर यूँ तो हर तरह से कामयाब रहा मगर फर्स्ट-एड का सामान इस्तेमाल करने का कोई अवसर नहीं मिला।

उनके अंदर वो शहरी बसा हुआ है वह किसी क्षण उनका पीछा नहीं छोड़ता और उनका हाथ पकड़ कर कभी बादाम के तने पर चाकू की नोक से अपना नाम और आने की तारीख लिखवाता है और कभी पहाड़ी चकोर के चटख रंगों की प्रशंसा बाईस बोर की गोली से करवा है। कभी गूँजते गरजते झरनों के दामन में 'रॉक एंड रोल' और 'ट्विस्ट' के रिकार्ड बजा कर सीटियों से संगत करता है और कभी जंगलों की सैर को यूँ निकलता है गोया 'ऐल्फी' या 'माल' पर शाम के शिकार को निकला है। मिर्जा ने कई बार समझाया कि देखो पहाड़ों, जंगलों और देहातों में जाना हो तो यूँ न निकला करो - इ यू डी कोलोन लगाए, सिगार मुँह में, हर साँस बियर में बसा हुआ, बातों में ड्राइंग रूम की महक - इससे देहात की भीनी-भीनी खुशबुएँ दब जाती हैं। वह सहमी-सहमी खुशबुएँ जो याद दिलाती हैं कि यहाँ से देहात की सीमा शुरू होती है। वह सीमा जहाँ सदा खुशबुओं का इंद्रधनुष निकला रहता है - कच्चे दूध और ताजा कटी हुई घास की मीठी-मीठी बास, छप्परों-खपरैलों से छन-छन कर निकलता हुआ उपलों का कड़वा-कड़वा धुआँ, घुमर-घुमर चलती चक्की से फिसलते हुए मकई के आटे की गर्म-गर्म सुगंध के साथ 'कुँवारपने की तेज महक', जोहड़ की काई का भीगा छिछलांदा झाँका, सरसों की बालियों की कंटिली महकार, भेड़-बकरियों के रेवड़ का भभका, अंगारों पर सिकती हुई रोटी की सीधी पेट में घुस जाने वाली लपट और उनमें रची हुई, उन सब में पिघली हुई खेतों और खलियानों में ताँबे से तपते हुए जिस्मों की हजारों साल पुरानी महक - यह जमीन की वहशी साँस की खुशबू है। जमीन को साँस लेने दो। उसकी खुशबू के सोते खून से जा मिलते हैं। उसे पसीने के छेदों में सहज-सहज घुलने दो। उसे हवाना के सिगार और डियोडरेंट से न मारो कि यह एक बार जिस बस्ती से रूठ जाती है, फिर लौट कर नहीं आती। तुमने देखा होगा, छोटे बच्चों के जिस्म से एक भेद भरी महक आती है। कच्ची-कच्ची, कोरी-कोरी, जो बड़े होकर अचानक गायब हो जाती है। यही हाल बस्तियों का है। शहर अब बूढ़े हो चुके हैं। उनमें अपनी कोई खुशबू बाकी नहीं रही।

प्रोफेसर कुदूस को ऐसी बातों में 'ला दे इक जंगल मुझे बाजार से' वाली फिलास्फी दिखाई पड़ती है। जो सफेद कालर वालों के सुगंधित पलायन की पैदावार है। कहते हैं कि शहरी हिरनों की नाभि उनके सर में होती है। हमने देखा है कि बहस में चारों तरफ से शह पड़ने लगे तो वह मिर्जा के किसी अर्धदार्शनिक वाक्य की दीवारों के पीछे दुबक जाते हैं और इस दृष्टि से उनका रवैया ठेठ प्रोफेसराना होता है। यानी मूल विषय के बजाय फुटनोट्स पढ़ना पुण्य समझते हैं। वह इस तरह कि वो प्राकृतिक दृश्यों की दाद अपने पेट से देते हैं, जहाँ मौसम अच्छा और दृश्य सुंदर हुए, उनकी समझ में उसका आनंद उठाने का एक यही ढंग आया कि डटकर खाया जाए और बार-बार खाया जाए और इस अच्छे कार्य से जो थोड़ा सा समय बच रहे, उसमें रमी खेली जाए। दुर्भाग्य से मौसम हमेशा अच्छा रहता था। इसलिए रोज खाने के बीच के अंतरालों में रमी की बाजी जमती। घनिष्ट मित्रों ने इस तरह पूरे छह हफ्ते एक दूसरे को कंगाल बनाने की घनिष्ट कोशिशों में बिता दिए। जिरगौस तो आँख बचाकर पत्ता बदलने को भी गलत नहीं समझते। इसलिए कि यह न करें तब भी प्रोफेसर हर जीतने वाले को बेईमान समझते हैं। बहरहाल हमने तो यह देखा कि अनगिनत अच्छे क्षण जो चीड़ और चिनार के दृश्यों में बिताए जा सकते थे, वह दोनों ने चिड़िया के गुलाम और पान के चौक्के पर नजरें जमाए बिता दिए और कभी पलट कर बड़े-बड़े पहाड़ों पर डूबते सूरज और चढ़ते चाँद का प्रताप नहीं देखा और न आँख उठा कर इस रूपनगर की आन देखी जिसके सर से भूकंप की प्रलय बीत गई मगर जहाँ आज भी गुलाब दहकते हैं। रास्तों पर भी, गालों पर भी। इनकी कनपटियों पर अब रुपहले तार झिलमिलाने लगे हैं मगर वह अभी उस आवारगी के आनंद से परिचित नहीं हुए जो एक पल में एक

युग का रस भर देती है। अभी उन्होंने हर फूल, हर चेहरे को यूँ जी भर के देखना नहीं सीखा जैसे आखिरी बार देख रहे हों, फिर देखना नसीब न होगा। ऐसे पहाड़ों और घाटियों से गुजरते हुए बाबर ने अपनी आत्मकथा में कितनी मायूसी के साथ लिखा है कि जब हम किसी दरिया के किनारे पड़ाव डालते हैं तो हम और हमारी मुगल फौज अपने तंबुओं की दिशा नदी के सुंदर दृश्यों की तरफ रखती है लेकिन हमारी हिंदी फौज अपने खेमों की पीठ नदी की तरफ कर लेती है।

यहाँ जिरगौस की कम-निगाही दिखाना उद्देश्य नहीं, इमान की बात यह है कि कराची पहुँच कर उन्होंने अपनी खींची हुई रंगीन फिल्में स्क्रीन पर देखीं तो दंग रह गए। कहने लगे, 'यार! कमाल है, इनसे तो मालूम होता है कि कोयटा खूबसूरत जगह है।'

5

जिरगौस खुद को हवेन सांग और एडमंड हिलेरी से कम नहीं समझते। इस यायावरी की इच्छा का विस्तार यह है कि एक दिन मिर्जा ने पूछा, 'यार कंचनजंघा भी देखी?' बोले, 'नहीं हम चीनी फिल्में नहीं देखते। मगर कौन सी फिल्म में काम कर रही है?'

मिर्जा भी उनके साथ दूसरी बार अपने देश की खोज में निकले थे, मगर जहाँ गए, जिधर गए, खुद को ही सामने पाया। आखिर दो महीने भूगोल में आत्मकथा का रंग भर के लौट आए। कहना पड़ेगा कि एक का दिल और दूसरे की आँखें शहरी हैं और उसकी पुष्टि पग-पग पर पिछली यात्रा के वृत्तांत से होती है। आप भी सुनिए, कभी इनकी कभी उनकी जुबानी। जिरगौस का बयान है कि तयोरस्साल मिर्जा कागान घाटी में ग्यारह हजार फिट की ऊँचाई पर फीरोजी रंग की जमी हुई झील, मीलों तक फैले हुए ग्लेशियर और बर्फ से ढके पहाड़ देखकर बहुत हैरान हुए। वह सोच भी नहीं सकते थे कि मलाई की बर्फ के अलावा कोई और भी बर्फ हो सकती है और वह भी मुफ्त! न्यूनाधिक इतनी ही तीव्रता की आत्मलीनता की स्थिति कनहार नदी देखकर उन्होंने अपने ऊपर हावी कर ली। इस तिलमिलाती, झाग उड़ाती, पहाड़ी नदी के पुल पर देर तक दम साधे आश्चर्य की लहरों में गोते खाते रहे। आखिर एक चमकदार मोती लेकर उभरे। बोले, 'किस कदर खूबसूरत झाग हैं। बिलकुल लक्स साबुन जैसे।' उपस्थित लोगों ने इस विज्ञापनी उपमा का मजाक उड़ाया तो तुनक कर बोले, 'साहब! मैं तो जब जानूँ कि वर्ड्सवर्थ को बीच में डाले बगैर आप नेचर पर दो वाक्य बोलकर दिखा दें।'

मिर्जा इस 'गजल' के जवाब के रूप में, इसी जगह और इसी घड़ी का एक और समझाँ खींचते हैं, जिससे पता चलता है कि समय का सदुपयोग करने वाले किस-किस तरह प्राकृतिक सौंदर्य की ऊँचाई बढ़ाते हैं। (तस्वीर में जगह-जगह जिरगौस ने भी शोख रंग लगा दिए हैं।) यह जगह बालाकोट के दामन में इस किनारे पर है, जहाँ नदी दो भारी पहाड़ों के बीच नर्तकी की कमर की तरह बल खा गई है। इससे यह करिश्मा जुड़ा हुआ है कि जहाँगीर के साथ इस रास्ते से कश्मीर जाते हुए नूरजहाँ की आँखों में जलन हुई। जहाँगीर को रात-भर नींद न आई। शाही हकीम के कुहल, सुर्मा और जमाद से कोई लाभ नहीं हुआ। अचानक एक दरवेश उधर से निकला। उसने कहा, जैसे ही चाँद इस सनोबर के ऊपर आए, मलिका नदी का पानी अंजुलि में भर कर उसमें अपना चेहरा देखे और उसी से सात बार अपना चेहरा धोए। मौला अपनी कृपा करेगा। नूरजहाँ ने ऐसा ही किया और आँखें तारा सी हो गईं। उसी दिन से उस जगह का नाम नैन-सुख हो गया और इधर से निकलते हुए आज भी बहुत से हाथ मोती-सा पानी चुल्हू में भर के उस अलबेली मलिका की याद ताजा कर जाते हैं।

हाँ! तो यह जगह थी और शुरू बरसात की रात। सुबह इसी जगह एक ऐतिहासिक फिल्म की शूटिंग के समय हीरोइन के पैर में मोच आ गई थी और दिया जलने तक बालाकोट की घाटी का हर वह निवासी जो उस दिन तक संन्यासी नहीं हुआ था, उस घोड़े को देखने आया जिससे हीरोइन गिरी या गिराई गई थी। इस पल रात की जवानी अभी ढली नहीं थी। यहाँ इस फिल्म के प्रोड्यूसर (जिन का मुकदमा मजिस्ट्रेट से सेशन जजी, सेशन जजी से हाईकोर्ट और हाईकोर्ट से सुप्रीम कोर्ट तक जिरगौस ने बिना पारिश्रमिक और परिश्रम लड़ा और हारा था) जिरगौस के आतिथ्य में बिछे जा रहे थे। साथ में शहद जैसी रंगत के बालों वाली हीरोइन थी जो ट्रांजिस्टर रेडियो पर 'चा चा चा' की धुन पर बैठे ही बैठे अपनी बेजान न हुई टॉग थिरका रही थी और मिर्जा के शब्दों में 'ओपन एयरहोस्टेस' के कर्तव्य बड़ी लगन से पूरे कर रही थी। जिरगौस फीरोजे की अँगूठी से 'पिक विक पेपर्स' की जिल्द पर ताल दे रहे थे। रेडियो पर कोई गर्म गीत आता तो सब के सब सुर मिलाकर इतने जोर से डकराने लगते कि अस्ल गाना बिल्कुल न सुनाई देता। सिर्फ नापसंदीदा गाने खामोशी और ध्यान से सुने गए। अलबत्ता मिर्जा शाम ही से संजीदगी व सर्दी के कारण चुप थे। उन्हें जब अधिक सर्दी लगने लगती तो टूट कर उन डरावनी मशालों को टकटकी बाँध कर देखने लगते, जो बीस मील दूर पहाड़ों पर एक महीने से रात होते ही रोशन हो जाती थीं। एक महीने से कागान के जंगल धड़-धड़ जल रहे थे और दूर-दूर से यात्री सनोबरों की आग देखने लाए जा रहे थे लेकिन यहाँ चारों तरफ अँधेरा था, जिसमें पहाड़ी जुगनू जगह-जगह मुसलमानों की उम्मीदों की तरह टिमटिमा रहे थे। मिर्जा नजरें नीची किए रस भरी गँडेरियाँ चूसते रहे। थोड़ी-थोड़ी देर में जिरगौस अपनी कार की हैडलाइट जला देते और साँवली रात अपने भेद सौंप कर चंद पीछे हट जाती। उनके सोने के दाँत से किरनें फूटने लगतीं और कैसानोवा की काली-काली आँखों के चराग जल उठते। कुछ और स्वरूप भी जिन्हें रोशनी ने रात की चट्टान चीरकर तराशा था, आँखों के सामने कौंध जाते।

इस कौंधे में नदी झमाझम करने लगती, जैसे टिशू की साड़ी। (माफ कीजिए, यह तीर भी इसी तरकश का है।)

सामने मिर्जा चुपचाप पालथी मारे बैठे हुए थे। कुछ बर्फीली हवा, कुछ गँडैरी का असर। उनका हाथ अपनी नाक पर पड़ा तो ऐसा लगा कि जैसे किसी दूसरे की है। फिर नदी के पानी में हाथ डाला तो लगा जैसे पिघली हुई बर्फ है और यह इसलिए महसूस हुआ कि वह वाकई पिघली हुई बर्फ थी। इससे फायदा उठाने के लिए ब्लैक एंड व्हाइट की दूसरी बोटल की गरदन मिर्जा की टाई से बाँधकर नदी में डाल दी गई। अभी कुछ देर पहले प्रोड्यूसर साहब को एक शैंपेन ग्लास के किनारे पर लिपस्टिक का भ्रम हुआ तो उतना हिस्सा अपने दाँतों से तोड़ कर कटर-कटर चबाने लगे और अब वह अँधेरे में सिगरेट का कश लेते तो मुँह के दोनों कोनों पर जीते-जीते खून की धारें चमक उठती थीं। गँडेरियों से निवृत्त होकर मिर्जा इस दृश्य को अपनी आँखों से पिए जा रहे थे जिनमें गुलाबी डोरे उभर आए थे, जो शायद नींद के होंगे। इसलिए कि गँडैरी में अगर नशा होता तो मौलवी गन्ने लेकर गँडैरी खाने वालों के पीछे पड़ जाते। उनके ढंग बेढंगे होते देखे तो जिरगौस ने कंधे झिंझोड़ कर पूछा, 'मिर्जा! तुमने कभी व्हिस्की पी है?' नशीली आँखें खोलते हुए बोले, 'पी तो नहीं, मगर बोटल से ऐसी बू आती है, जैसी उनके मुँह से। बिल्कुल टिंकचर आयोडीन जैसी।' यह कहकर पुष्टि चाहने वाली नजरों से प्रोड्यूसर को देखने लगे, जो इस टिंकचर आयोडीन से अपने मुँह और दिल के जख्मों को डिसइन्फैक्ट कर रहे थे। यह कार्य उस समय तक चलता रहा, जब तक न पीने वालों ने नींद से बेहाल होकर ऑल फौल बकना शुरू न कर दिया और महीने के आखिर की चाँदनी में बालाकोट की ऊँचाई पर उस मकबरे के किनारे दमकने लगे, जहाँ सवा सौ साल पहले इसी घाटी, इसी रुत और उतरते चाँद की इन्हीं तिथियों में एक जियाले ने अपने खून से अपनी जाति के दागों को धोया था और जहाँ आज भी खुदा के सादादिल बंदे नसवार की भेंट चढ़ा कर मुरादेँ माँगते नजर आ जाते हैं।

बात एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ जा पहुँची। दिखाना सिर्फ यह था कि पहाड़ पर जिंदगी हर ढंग और हर ढब से बिताई जा सकती है। हँस कर, रो कर या अधिसंख्या की तरह सो कर। मिर्जा किसी घर बंद नहीं। कुछ नहीं तो, चोरी-चोरी बेगम जिरगौस के मुहब्बत और इमला की गलतियों से भरे हुए खत ही पढ़ते रहते मगर एक दिन एक अजीब रंग में पाए, बल्कि पकड़े गए। देखा कि विभिन्न रंगों और खुशबुओं के टूथपेस्ट से कैरम बोर्ड पर कुछ पेंट कर रहे हैं। खैर टूथपेस्ट के इस्तेमाल पर तो हमें कोई अचंभा नहीं हुआ। इसलिए कि सुन चुके थे कि एब्सट्रेक्ट आर्टिस्ट तस्वीर पर नेलपॉलिश और फिनाइल तक लगाने से नहीं चूकते। एक साहब तो ऐसे गुजरे हैं, जिन्होंने कैनवस पर घोड़े का नाल, अपने कटे हुए नाखून और इकलौती पतलनू के सातों बटन मॉडल की चूसी हुई गम से चिपका कर बगदादी जिमखाना में प्राइज हासिल किया था। कहने का मतलब यह है कि आर्टिस्टों की सुहबत में रहते-रहते हम ऐसी बातों के आदी हो चुके हैं। ठठेरे का कबूतर तालियों से नहीं उड़ता लेकिन इस वक्त परेशानी जो हुई तो इस बात से कि हमारी तारीफ को सच समझ कर वह हमसे इस स्वादिष्ट तस्वीर का शीर्षक पूछने लगे।

'शीर्षक में क्या रखा है। अस्ल चीज तो तस्वीर होती है, तस्वीर!', हमने टालना चाहा।

'फिर भी, क्या नजर आता है तुम्हें?' वह भला कब छोड़ने वाले थे।

'नजर तो आता है, मगर समझ में नहीं आता।'

'पिकासो से भी कभी किसी ने कहा था कि साहब! आपकी तस्वीरें समझ में नहीं आतीं। उसने बड़ा प्यारा जवाब दिया, कहने लगे, चीनी भाषा आपकी समझ में नहीं आती मगर पचास करोड़ आदमी उसे बोलते हैं। क्या समझे?'

'लेकिन यह तस्वीर तो पिकासो की भी समझ में नहीं आ सकती।' हमने कहा।

'बला से न आए। एक तवायफ अपने हुस्न और कमाल की दाद लेने दूसरी तवायफ के पास नहीं जाती। दाद तो दर्शकों से मिलती है।' मिर्जा ने कहा।

जिरगौस की तरह मिर्जा भी हिल-स्टेशन को एक पैदाइशी शहरी की प्यार भरी नजर से देखते हैं और नजर भी ऐसे शहरी की, जिसकी पैदाइश और पहली बीमारी की तारीख एक ही हो। खैर मिर्जा तो हमारे साथ उठने-बैठने वाले और दम बढ़ाने वाले ठठेरे, जिनके स्वभाव से हम इस तरह परिचित हैं जैसे अपनी हथेली से। लेकिन इस बार हमें जिरगौस और हिल-स्टेशन दोनों को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला और हम इस नतीजे पर पहुँचे कि खुदा अगर आँखें दे तो उन्हें इस्तेमाल करने के मौके भी दे, वरना लानत ऐसी जिंदगी पर। मगर हिल-स्टेशन पर - चाहे वह मरी हो या मसूरी, उटाकमंड हो या कोयटा - जिंदगी हमारी आपकी तरह व्यर्थ नहीं होती। उसका एक उद्देश्य, दृष्टि का एक केंद्र होता है। वह यह कि सदा सुहागिन सड़कों पर वह फैशन परेड देखी जाए, जिसमें हर साल चैन से भरे घरानों की बेचैन बेटियाँ धन और तन की बाजी लगा देती हैं। इन्हीं सड़कों पर काली काफी और आलू की हवाइयों पर गुजारा करने वाले साहित्यकार स्ट्रैण भाषा में एक दूसरे को रक्तम क्रांति पर उकसाते हैं। इन्हीं सड़कों पर अपने गमलों में बरगद उगाने वाले इंटेलेक्चुअल किसी खूबसूरत लड़की को पत्नी का रूतबा देने की घात में लगे रहते हैं। उधर खूबसूरत लड़की अपने सुंदर मुखड़े का दिया लिए इस तलाश में लगी हुई कि जल्दी-से-जल्दी किसी बूढ़े लखपति की विधवा बन जाए। यह स्वयंवर, यह सुहाग-रूत हर हिल-स्टेशन पर हर साल

मनाई जाती है और इससे पहले कि दमकती हरियाली बर्फ का कफन पहन कर सो जाए, चिनारों की आग ठंडी और काफी हाउस वीरान हो जाएँ, मवेशी मैदानों में उतरने लगे और सड़कों पर कोई जानदार नजर न आए, सिवाय टूरिस्ट के - इससे पहले कि फूलों का मौसम बीत जाए, बहुत से हाथों की तीसरी उँगली में अँगूठियाँ जगमगाने लगती हैं। अगरचे जिरगौस के सेहरे के फूल दो बार खिले क्या, मुरझा चुके हैं मगर अब भी सड़क पर ढेर सारे हसीन चेहरे देखकर उनका हाल ऐसा होता है जैसे खिलौनों की दुकान में अनाथ बच्चे का।

इस स्वयंवर के साथ हिल स्टेशन पर सारे देश के लाइलाज रईसों और खाते-पीते कमजोरों का एक विराटकाय सालाना मेला लगता है। इसमें बड़े पैमाने पर बीमारियों का आपसी आदान-प्रदान होता है। आपने शायद सुना हो कि बनारस में, जो अपनी सुबह और साड़ियों के बावजूद एक पवित्र स्थान की हैसियत से प्रसिद्ध है, सारे हिंदुस्तान के आस्थावान बूढ़े मरने के लिए खिंच कर चले आते हैं और बहुत जल्द दिली मुराद पाते हैं। जो बीमार अपनी इच्छाशक्ति की कमजोरी के कारण खुद को मरने के लिए तैयार नहीं कर पाते, वह निकटतम हिल-स्टेशन की दिशा पकड़ते हैं। हमारे मिर्जा साहब का बाद वाली चीज से कितना पुराना संबंध है, इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि बीस बरस पहले आई.सी.एस. की परीक्षा में प्रथम आने के बाद उनकी डॉक्टरी जाँच हुई तो पता चला, दाँतों के अलावा और कोई चीज ठीक नहीं। वैसे बिरादरी के एक मेंबर होने के नाते हम खुद भी अपने स्वास्थ्य की तरफ से एक क्षण भी बेध्यान नहीं, फिर भी अभी यह नौबत नहीं आई कि विटामिन की गोली हल्क से उतरते ही अपनी बाँहों की मछलियाँ फुला-फुलाकर देखें, लेकिन मिर्जा का वह दैनंदिन कार्य हो गया कि दवाएँ हज्म करने के लिए शाम को माँगे-ताँगे की छड़ी घुमाते हुए निकल जाते। दस्तानों की तरह यह सुडौल छड़ी भी प्रोफेसर के दोस्त पेरिस से लाए थे। उस पर फ्रेंच ऐक्ट्रेस बरजेत बारदो की टाँग का ऊपरी हिस्सा बतौर दस्ता लगा हुआ था। इसी के सहारे प्रोफेसर ने वह टीला 'फल्ह' किया जिसकी विजय का हाल पहले सुनाया जा चुका है। इसी के जरिये वह अँधेरी रातों में अपने और अशिष्ट कुत्तों के बीच एक गर्वीली दूरी कायम रखते हैं और अब इसी को हिलाते, सहलाते हुए मिर्जा जिनाह रोड की हर तीसरी दुकान में (जो दवाओं की होती है) धड़धड़ाते घुसते चले जाते हैं। काउंटर के पास लगी मशीन में खोटी इकन्नी डालकर अपना वजन लेते और अगर औंस दो औंस बढ़ जाता तो स्थानीय हवा-पानी की शान में कसीदे पढ़ते लौटते हैं। एक दिन हमने कहा, 'देखो! दवाओं की यह दुकान कितनी चलती है मगर तुम्हें यहाँ तुलते कभी नहीं देखा।' कहने लगे, 'तौबा कीजिए साहब! मालूम हुआ है कि उसकी मशीन खास तौर पर औरतों के लिए बनाई गई है। एक दिन तुला तो कुल चालीस पौंड उतरा। धक से रह गया। सेठ से जाकर शिकायत की', तो जवाब मिला कि यह दुश्मनी थोड़े ही है। सभी को पचास पौंड कम बताती है। उस के बाद उस बेईमान ने खोटी इकन्नियों की ढेरी में से मिर्जा को एक इकन्नी वापस करनी चाही, जिसे उन्होंने शालीनता के कारण स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

भला मिर्जा ऐसी दुकान में जाकर सेरों बल्कि मनो मायूसियाँ क्यों मोल लेने लगे। वह तो उन स्वस्थ लोगों में से हैं, जो टहलने निकलें तो कदमों की गिनती रखते हैं और ताकत देने वाला कौर लेने से पहले उस खून की एक-एक बूँद का हिसाब लगा लेते हैं, जो उससे बननी चाहिए - मगर नहीं बनती। उनके खाने के पैमाने के हिसाब से काले हिरन की कलेजी में एक पूरे ऊँट की पौष्टिकता होती है और एक पहाड़ी चकोर में एक हिरन के बराबर लेकिन कोयटा की एक खुबानी पूरे तीन चकोरों के बराबर होती है, बाकी अंदाजे पर। एक दिन अपने हिसाब से डेढ़ दो दर्जन साबुत ऊँट पेड़ से तोड़ कर कचर-कचर खाए और झूमते-झामते हमारे पास आए। कहने लगे, 'साहब! यह शहर तो इतना बढ़िया है कि खा-खा के अपना तो दिवाला निकला जा रहा है। खाना हल्क से उतरा नहीं कि हज्म।' हमने कहा, 'इससे लाभ?' बोले, 'देखते नहीं?' टूरिस्ट बीबियाँ बेकारी से बचने के लिए जो स्वेटर सटासट बुनती

रहती हैं, वह तैयार होने से पहले तंग हो जाते हैं। शाम को चाय और चिलगोजे के साथ दूसरों की बुराई बड़ा मजा देती है। फिर हर चीज सस्ती, हर चीज शुद्ध। हद यह कि स्कैंडल में भी झूठ की मिलावट नहीं। कराची में शुद्ध दूध तो बड़ी बात है, पानी भी शुद्ध नहीं मिलता। उसमें भी दूध की मिलावट होती है मगर यहाँ दुकानदार आदतन सच बोलते हैं और सस्ता बेचते हैं। इसी लिए कई टूरिस्ट समझते हैं कि छोटा शहर है।'

फिर वह कोयटा की बेहतरी एक के बाद एक दुनिया के दूसरे शहरों पर साबित करने लगे।

'लाहौर?'

'कलेंडर से अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर के महीने हमेशा के लिए निकाल दिए जाएँ तो वल्लाह! लाहौर का जवाब नहीं।'

'रोम?'

'एक हसीन कब्रिस्तान। जमीन के नीचे की आबादी, ऊपर की आबादी से कहीं अधिक है। रहे ऐतिहासिक खंडहर, सो उनमें चिमगादड़ें और अमरीकी टूरिस्ट बसेरा करते हैं। जेम्स ज्वायस ने झूठ नहीं कहा था कि रोम की मिसाल एक ऐसे व्यक्ति की सी है जो अपनी नानी की लाश की नुमायश करके रोजी कमाता है।'

'मरी, पहाड़ों की रानी मरी?'

'साहब! दृश्यों में कोयटा से कम नहीं, वही नक्शा है भले इस कदर आबाद नहीं।'

'और दिल्ली?'

'शहर बुरा नहीं, मगर गलत देश में बसा है।'

'जिनेवा - दुनिया के लोगों की सेहत बनाने वाला शहर?'

'साहब मरने के लिए उससे बढ़िया जगह इस धरती पर कहीं नहीं।'

'कराची के बारे में क्या राय है हुजूर की?'

'बहुत अच्छी! अगर आप सर के बल खड़े हो कर देखें तो कराची की हर चीज सीधी नजर आएगी।'

'यार! तुम कराची के साथ तो बिल्कुल जियादती कर रहे हो।'

'हरगिज नहीं। मैं कराची के अधिकारों के लिए हमेशा लड़ता रहूँगा। इसीलिए मैं कराची वालों की इस माँग की बड़ी दृढ़ता से हिमायत करता हूँ कि मलेर के पुल और सड़क की मरम्मत होनी चाहिए, जरूर होनी चाहिए और जल्द होनी चाहिए ताकि कराची से निकलने में आसानी रहे।'

'यही बात है तो तुम वापस क्यों जा रहे हो?'

'मगर (तर्जनी उठाते हुए) एक बात है। कराची वाले आगे होकर कराची की बुराई करते हैं लेकिन कोई और उनकी हाँ में हाँ मिला दे तो बुरा मान जाते हैं। बस इसी अदा पर प्यार आता है।'

फिर कोयटा की श्रेष्ठता साबित करते-करते बेध्यानी में कहने लगे, 'हाय! यह महान शहर अगर कराची में होता तो क्या बात थी।'

मिर्जा ने इतना कहा और दायों हाथ फैलाकर अपना सीना फुलाया और छाती पीटने लगे। फिर एक ठंडी आह भरी और चुप हो गए।

उनके गालों पर पवित्र रक्त की वह बूँदें चमक रही थीं, जिन्हें हालात की आग ने बहुत जल्द सुखा दिया।

(अप्रैल - 1963)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

चार महीने होने आए थे। शहर का कोई लायक डॉक्टर बचा होगा जिसने हमारी आर्थिक परेशानियों में अपनी योग्यता के हिसाब से बढ़ोत्तरी न की लेकिन बाई कोहनी का दर्द किसी तरह कम होने का नाम नहीं लेता था। इलाज ने जब तेजी पकड़ी और बीमारी ने पेचीदा होकर गरीबी की शकल अपना ली तो लखनऊ के एक लायक हकीम से संपर्क किया जो सिर्फ मायूस और कब्र में पैर लटकाए रोगियों का इलाज करते थे। रोगी के अच्छा होने की जरा भी संभावना दिखाई पड़े तो बिगड़ जाते और दुत्कार कर निकलवा देते कि जाओ अभी कुछ और दिन डॉक्टर का इलाज करो। अल्लाह ने उनके हाथ में कुछ ऐसा करिश्मा दिया था कि एक बार उनसे इलाज कराके कोई बीमार, चाहे मौत के बिस्तर पर ही क्यों न हो, रोग से नहीं मर सकता था, दवा से मरता था। रोग के कीटाणु के लिए तो उनकी दवा गोया अमृत का दर्जा रखती थी। गरीबों का इलाज मुफ्त करते, मगर पैसे वालों को फीस लिए बगैर नहीं मारते थे। हकीम साहब ऊँचा सुनते ही नहीं, ऊँचा समझते भी थे यानी सिर्फ मतलब की बात। शायरी भी करते थे। हम इस पर एतराज करने वाले कौन? लेकिन मुसीबत यह थी कि शायरी में हकीमी और हकीमी में शायरी के हाथ दिखा जाते थे। मतलब यह कि दोनों में नियमों के पाबंद न थे। हकीमों में अपने अलावा उस्ताद इब्राहीम 'जौक' को मानते थे। वह भी सिर्फ इस आधार पर कि बकौल 'आजाद', उस्ताद ने संगीत और ज्योतिष सीखने की कृतघ्न कोशिश के बाद कुछ दिन हकीमी की। मगर उसमें लगा कि लोग अकारण मर रहे हैं, इसलिए अपनी योग्यता की दिशा उर्दू शायरी की तरफ मोड़ दी। हकीम साहब कबला अपनी जात और डायरी पर पूरा भरोसा रखते थे, हाँ कभी अपनी ही खोज से बनाई माजून, जिसे खाकर आसमान की सैर की जा सकती थी, के असर से अगर दिल बड़ा और मिजाज शिष्ट हो जाए तो, शायरी समझने वाले मरीज के सामने यहाँ तक स्वीकार कर लेते थे कि एक लिहाज से 'ग़ालिब' उनसे बेहतर था। खत अच्छे-खासे लिख लेता था। मगर वह लोग कहाँ जिसे कोई ऐसे खत लिखे।

खानदानी हकीम थे। और खानदान भी ऐसा वैसा! उनके परदादा कस्बा संडीला के जालीनूस (प्रसिद्ध यूनानी हकीम) थे, बल्कि उससे भी बढ़कर। हकीम जालीनूस अंधे और कई बीबियों वाले न थे, यह थे। नब्ज देखने में संडीला के चारों खूँट उनका कोई मुकाबिल न था। रंगी-बयान कहानी सुनाने वाले कहते हैं कि उनकी खानदानी हवेली में चार बेगमें, जिनमें हर एक चौथी थी और हरम में दर्जनों लौडियाँ रूली फिरती थी। आधी रात की नमाज

के समय वुजू कराने की हर एक की बारी तय थी मगर आधी रात गए आवाज देकर सबकी नींद खराब नहीं करते थे। हौले से नब्ज छूकर बारी वाली को जगा देते थे और ऐसा कभी नहीं हुआ कि गलत नब्ज पर हाथ पड़ा हो।

जालीनूस के पोते ने हमारी नब्ज, जुबान, जिगर, पेट, नाखून, पेशाब, पपोटे - सार-संक्षेप यह कि सिवाय कोहनी के हर चीज का मुआयना किया। फीस तय करने से पहले हमारी कार का इंजन भी स्टार्ट करवा के अपने चश्मे से देखा और फीस माफ कर दी। फिर भी एहतियातन पूछ लिया कि महीने की आखिरी तारीखों में आँखों के सामने तिरे-मिरे नाचते हैं? हमने सर हिलाकर स्वीकार कर लिया तो मरज और उर्दू जुबान के मजे लूटते हुए बोले कि हाथ ठीक है, कोहनी पर जो दर्द है, दर्द में जो चपक है, चपक में जो टीस है, और टीस में जो कसक रह-रह कर महसूस होती है, वह गैस की है। बकौल मिर्जा, यह जाँच न थी, हमारी बीमारी की तौहीन थी। हमारे अपने रोगाणुओं के मुँह पर तमाचा था। चुनांचे यूनानी हकीमी से रहा-सहा भरोसा चौबीस घंटे के लिए बिल्कुल उठ गया। इन चौबीस घंटों में हमने कोहनी का हर कोण से एक्सरे कराया लेकिन इससे मायूसी और बढ़ी। इसलिए कि कोहनी में कोई खराबी नहीं निकली।

पूरे दो महीने मरज में हिंदू योग आसन और मेथी के साग की बढ़ोत्तरी करने के बाद हमने मिर्जा से जाकर समस्या बताई। हमारा हाल सुनने के बाद दाईं कलाई पर दो उँगलियाँ रखकर उन्होंने नब्ज देखी। हमने हैरत से उनकी तरफ देखा तो बोले, 'चालीस साल बाद मर्द का दिल नीचे उतर आता है।' फिर बोले, 'तुम्हारा इलाज यह है कि फौरन बाइफोकल बनवा लो।' हमने कहा, 'मिर्जा! तुम तो शराब भी नहीं पीते। कोहनी का आँख से क्या संबंध?' बोले, 'चार पाँच महीने से देख रहा हूँ कि तुम्हारी पास की नजर भी खराब हो गई है। किताब नजदीक हो तो तुम पढ़ नहीं सकते। उम्र का तकाजा ही कहना चाहिए। तुम अखबार और किताब को आँख से तीन फिट दूर बाएँ हाथ में पकड़ कर पढ़ते हो। इसी लिए हाथ के पुट्टे अकड़ गए हैं। चुनांचे कोहनी में जो दर्द है, दर्द में जो...'

माना कि मिर्जा हमारे साथी और हमदर्द हैं लेकिन उनके सामने बीमारी को खोलते हुए हमें हौल आता है। इसलिए कि अपने फकीरी चुटकुलों से अस्ल मरज को तो जड़-बुनियाद से उखाड़ कर फेंक देते हैं, लेकिन तीन चार नए मरज गले पड़ जाते हैं, जिनके लिए फिर उन्हीं से सलाह लेना पड़ती है और वह हर बार अपने इलाज से हर मरज को चार से गुणा करते चले जाते हैं। इस ढंग से इलाज करने का फायदा यह है कि कुछ हिस्सा फायदे के बाद दिल फिर अस्ल बीमारी के रात-दिन ढूँढ़ता है और मरीज को अपनी उस बीमारी के स्वर्गीय रोगाणु बहुत याद आते हैं और वह उनकी मेहरबानियों को याद करके रोता है। कुछ दिनों की बात है। हमने कहा, 'मिर्जा! तीन-चार महीने से हमें तकिए पर सुबह दर्जनों सफेद बाल पड़े मिलते हैं।' पूछा, 'अपने तकिए पर?' निवेदन किया, 'हाँ!', शरलक होम्ज के विशिष्ट जासूसी अंदाज में चंद मिनट गहरी जाँच-पड़ताल के बाद बोले, 'संभवतः तुम्हारे होंगे।' हमने कहा, 'हमें भी यही शक था।' बोले, 'भाई मेरे! तुमने तमाम उम्र जब्त और एहतियात से काम लिया है। अपनी निजी भावनाओं को हमेशा नियंत्रण-सीमा में रखा है। इसलिए तुम अड़तीस साल की उम्र में गंजे हो गए हो।' इस खोज के बाद उन्होंने हमें एक तरल खिजाब का नाम बताया, जिससे बाल काले और मजबूत हो जाते हैं। चलते समय उन्होंने हमें कड़ाई से सावधान किया कि तेल ब्रश से लगाया जाए वरना हथेली पर भी बाल निकल आएँगे। जिसके लिए वह और दवा कंपनी हरगिज जिम्मेदार न होंगे। वापसी में हमने बड़ी आतुरता की हालत में सबसे बड़े साइज की शीशी खरीदी और दुकानदार से रेजगारी भी वापस न ली कि इसमें सरासर समय की बर्बादी थी। चालीस दिन के लगातार इस्तेमाल से यह असर हुआ कि सर पर जितने भी काले बाल थे, वह तो एक-एक करके झड़ गए,

अलबत्ता जितने सफेद बाल थे वह बिल्कुल मजबूत हो गए, इसलिए नहीं गिरे। बल्कि जहाँ पहले एक सफेद बाल था, वहाँ अब तीन निकल आए हैं।

बाइफोकल का नाम आते ही हम सँभल कर बैठ गए। हमने कहा, 'मिर्जा! मगर हम तो अभी चालीस साल के नहीं हुए।' बोले, 'मरज के रोगाणु पढ़े-लिखे नहीं होते कि कैलेंडर देखकर हमला करें। जरा हाल देखो अपना। सेहत ऐसी कि बीमा कंपनियों के एजेंट नाम से भागते हैं। सूरत ऐसी जैसे, माफ करना, रेडियो फोटो और रंग भी अब गेहुआँ नहीं रहा। अल्लाह और बीवी के डर से पीला हो गया है। अगर कभी यारों की बात मान लेते तो जिंदगी सँवर जाती।' हमने कहा, 'हमारा जो हाल है वह तन्हा किसी एक आदमी के गलत फैसलों से हरगिज नहीं हो सकता। हमें तो इसमें पूरी कौम का हाथ नजर आता है।' बोले, 'जापान में बागबानी की कला के एक विशेष विभाग बोन्साई को बड़ी ऊँची निगाह से देखा जाता है। इसके माहिर पीढ़ी-दर-पीढ़ी पेड़ों को इस चाव-चाँचले से उगाते और सींचते हैं और उनकी उठान को इस तरह काबू में रखते हैं कि तीन-तीन सौ साल पुराने पेड़ में फल-फूल भी आते हैं, पतझड़ भी होता है, मगर एक बालिशत से ऊँचा नहीं हो पाता। तुमने अपने व्यक्तित्व को इसी तरह पाला-पोसा है।'

हमने आँखों में आँसू भर कर कहा, 'मिर्जा हम ऐसे न होते तो तुम नसीहत किसे करते?' कुछ नर्म पड़े। बोले, 'नसीहत कौन मसखरा करना चाहता है? मगर तुमने दिमाग से कभी काम नहीं लिया। खाली चाल-चलन के बिरते पर जीवन बिता दिया।' हमने कहा, 'मिर्जा तुम यह न कहो। हम सारा जीवन अपनी इच्छाओं से गुरिल्ला युद्ध करते रहे हैं। तुम हमारे दिल के खोट से परिचित हो, यह आग - पूरी बुझी नहीं, ये बुझाई हुई सी है'

'जहाँ तक हमारे किए-धरे का सवाल है, खुदा जानता है कि हमारा कोई काम, कोई काज गुनाह के घेरे में नहीं लेकिन स्वर्ग-नर्क का फैसला केवल नीयत के आधार पर हुआ तो हमारे नर्क में जाने में खुद हमें कोई संदेह नहीं।' मुस्कुरा दिए। बोले, 'जिन सुंदरियों ने अपनी सुंदरता से तुम्हारे ज्ञान-ध्यान में विघ्न डाला, उनकी संख्या, कुछ नहीं तो, कराची की आधी जनसंख्या के बराबर तो होगी?'

हमने मिर्जा को याद दिलाया कि लड़कपन से ही हम शांत जीवन बसर करने के विरोधी रहे हैं। मार-धाड़ से भरपूर जेम्स बांड जैसा जीवन जीने के लिए कैसे-कैसे जतन किए। उन्हें तो क्या याद होगा, काजी अब्दुल कुदूस उन दिनों हमें Bull Fighting की ट्रेनिंग दिया करते थे और एक दाढ़ीदार बोक बकरे को सुर्ख तुर्की टोपी पहनाकर, हमें उसके खिलाफ भड़काते थे। मिडिल में 33 नंबर से हिसाब में फेल होने के बाद हमने धनार्जन के बारे में यह निर्णय किया कि अगर माँ इजाजत दें तो Pirate बन जाएँ। लेकिन जब समझदारी आई और अंग्रेज शासकों से नफरत के साथ-साथ अच्छाई-बुराई की समझ भी पैदा हुई तो जीवन के लक्ष्य में मिर्जा ही के मशवरे से इतना करेक्शन करना पड़ा कि सिर्फ अंग्रेजों के जहाजों को लूटेंगे मगर उनकी मेमों के साथ अत्याचार नहीं करेंगे। शादी करेंगे।

बोले, 'यह सब समस्याएँ मिडिल एज की हैं, जो तुम्हारे केस में जरा सवरे ही आ गई हैं। एक रूसी एनारकिस्ट ने एक बार क्या अच्छा सुझाव दिया कि पच्चीस साल से अधिक आयु वालों को फाँसी दे दी जाए लेकिन फाँसी से अधिक कठोर यातना तुम जैसा के लिए यह होगी कि तुम्हें जीवित रहने दिया जाए। मिडिल एज का बुढ़ापे के सिवा कोई इलाज नहीं है। हाँ गरीबी और रूहानियत से थोड़ा बहुत आराम आता है। हमारे यहाँ अभाव के जीवन के, ले दे के, दो ही काम हैं। अय्याशी - और अगर इसका बूता न हो तो रूहानियत (दर्शन) और कव्वाली इन दोनों का निचोड़ है।

'और तुम्हारा इलाज है, एक अदद बाइफोकल और वृहस्पतिवार की वृहस्पतिवार कव्वाली। दो दिन से साईं गुलंबर शाह का उर्स हो रहा है। आज रात भी हमारे पीर साहब ने कव्वाली की महफिल रखी है। मटके वाले कव्वालों की चौकी के अलावा हैदराबाद की एक तवायफ भी काव्य प्रस्तुत करेंगी।' हमने पूछा, 'जिंदा तवायफ?' बोले, 'हाँ, सचमुच की। मरे क्यों जा रहे हो? उच्चारण के अलावा नख-शिख से भी अच्छी। हजरत से दीक्षित होने के बाद उसने शादी-ब्याह के मुजरों से तौबा कर ली है। अब सिर्फ मजारों पर गाती है या रेडियो पाकिस्तान से और साहब, ऐसा गाती है, ऐसा गाती है कि घंटों देखते रहो। हँसते क्या हो, एक नुक्ता आज बताए देते हैं - गाने वाली की सूरत अच्छी हो तो ऊटपटाँग शेर का मतलब भी समझ में आ जाता है।'

शाम की नमाज के बाद हमने कव्वाली की तैयारियाँ शुरू की। ईद का कढ़ा हुआ कुर्ता पहना, जुमे की नमाज वाले खास जूते निकाले। (मस्जिद में हम कभी आम जूते पहन कर नहीं जाते। इसलिए कि जूते अगर साबित हों तो सजदे में भी दिल उन्हीं में पड़ा रहता है) मिर्जा हमें लेने आए तो नथुने फड़काते हुए पूछा कि आज तुममें से जनाजे की सी बू क्यों आ रही है? हमने घबरा कर अपनी नब्ज देखी। दिल तो अभी धड़क रहा था। कुछ देर बाद बात समझ में आई तो हमने स्वीकार किया कि गर्म शेरवानी दो साल बाद निकाली है। कपूरी गोलियों की गंध बुरी तरह बस गई थी। उसे दबाने के लिए थोड़ा-सा हिना का इत्र लगाया है। कहने लगे, 'जहाँ महफिल के नियमों का इतना ध्यान रखा है वहाँ इतना और करो कि एक-एक रुपए के नोट अंदर की जेब में डाल लो।' हमने पूछा, 'क्यों?' बोले, 'जो शेर तुम्हारी या मेरी समझ में आ जाए, उस पर एक नोट सम्मान के साथ पेश करना।' चुनांचे सारी रात हमारी यह झूटी रही कि सुनने का जाल बिछाए बैठे रहें और उस रात के दौरान मिर्जा के चेहरे पर भी नजरें जमाए रहें कि ज्यों ही उनके नथुनों से जाहिर हो कि शेर समझ में आ गया है, अपनी हथेली पर नोट रखकर पीर साहब को पेश करें और वह उसे छूकर कव्वालों को बख्श दें।

अपने अस्तित्व से मायूस लोगों का इससे अधिक बड़ा जमघट हमने अपने चालीस साला अनुभव में नहीं देखा। शहर के चोटी के अधेड़ यहाँ मौजूद थे। जरा देर बाद पीर साहब पधारे। भारी बदन, नौद से भरी हुई आँखें। छाज-सी दाढ़ी। कतरवाँ लबें। टखनों तक गेरुआ कुर्ता। सर पर काले मखमल की चौकोनी टोपी जिसके नीचे रुपहले बालों की कगर। हाथों में हरी माला। साज मिलाए गए। यानी हारमोनियम को तालियों और तालियों को मटके से मिलाया गया और जब शायर के कलाम को इन सबसे ढेर कर लिया गया तो कव्वाली का रंग जमा। हमारा तो विचार है कि इस पाए के गायकों को तो मुगलों के जमाने में पैदा होना चाहिए था, ताकि कोई बादशाह उन्हें हाथी के पाँव तले रौंदवा डालता। उन्होंने मौलाना जामी के शेरों में मीरा बाई के दोहों को इस तरह मथ दिया कि फारसी भाषा सरासर मारवाड़ी बोली की बिगड़ी हुई शकल मालूम होने लगी और हम जैसे अज्ञानी को तो अस्ल पर नक्ल का धोखा होने लगा।

कव्वाली शुरू हुई तो हम पाँचवीं पंक्ति में वज्रासन में बैठे थे। नहीं, केवल वज्रासन में नहीं, उस तरह बैठे थे जैसे अलहैय्यात पढ़ते वक्त बैठते हैं लेकिन जैसे ही महफिल रंग पर आई, हम हाल (भावावेश में आकर नृत्य करना) खेलने वालों के धक्के खाते-खाते इतने आगे निकल गए कि रात भर टाँगें गुलेल की तरह फैलाए एक हारमोनियम को गोद में लिए बैठे रहे। एक नवागंतुक ने हमें एक रुपया भी दिया। हमारा अंत यानी चाय-पानी भी कव्वालों के साथ हुआ। धक्कों के रेले में हम कव्वालों की टोली को चीरते हुए दूसरे दरवाजे से कभी के बाहर निकल पड़े होते मगर खैरियत गुजरी कि एक क्लैरेनेट ने हमें मजबूती से रोके रखा। यह यंत्र कोई सवा गज लंबा होगा। इसका

अहानिकारक सिरा तो वादक के मुँह में था लेकिन फन हमारे कान में ऐसा फिट हो गया था कि जोर के धक्कों के बावजूद हम एक इंच आगे नहीं बढ़ सकते थे।

रात के उतरते के समय पीर साहब ने खास तौर से फरमाइश करके तवाइफ से अपनी एक 'छंदहीन' गजल गवाई जिसे उस सितारों से भी ऊँची गायिका ने सुर-ताल से भी बाहर करके तिगुना-तीखा कर दिया। अपना काव्य सुनकर हजरत की आँखें ऐसी छलकीं कि छपा हुआ रुमाल (जिसके हाशिए पर कुछ शेर पकवानों के गुणगान के छपे थे) तर हो गया। अंतिम शेर जी तोड़ कर गया और 'खुदा-खुदा करके' शायर का नाम आया तो नाचते हुए जाकर सर सामने कर दिया। हजरत ने 'पालन-हारा' अंदाज में अस्ली छुहारे की हजार दाना माला अपने हाथ से उसके गले में डाल दी और अपनी चरण-धूलि और कक्ष-विशेष की झाड़ू भी अता की। चार बजे जब सबकी जेबें खाली हो गईं तो अधिकतर को उन्माद आ गया और ऐसा धमाल मचा कि तकिए के गुंबद की सारी चिमगादड़ें उड़ गईं। किसी के पाँव की मस्ताना ठोकर से पीर साहब के उत्तराधिकारी की घड़ी का शीशा चूर-चूर हो गया और अब वह भी अपनी पगड़ी, जुब्बा, बाइफोकल और चाँदी के बटन उतारकर मैदान में कूद पड़े, सिर्फ अँगूठी और मोजे नहीं उतारे। सो वह भी मस्ती की हालत में किसी ने उतार लिए। नोटों की बौछार बंद हुई और अब हर शेर पर जजाक-अल्लाह, जजाक-अल्लाह का शोर बुलंद होने लगा। उस भागभरी (तवायफ) ने जो देखा कि बंदों ने अपना हाथ खेंचकर मामला अब अल्लाह के सुपुर्द कर दिया है तो झट आखिरी गिलौरी कल्ले में दबा के कहरवे पर महफिल खत्म कर दी।

पाँच बजे सुबह हम कान सहलाते कानफोड़ महफिल से लौटे। कुछ बकवास कलाम का, कुछ रात के अपने में डूब जाने का खुमार, हमने ऐसी सुध-खोई कि सुबह दस बजे तक सन्नाटे रहे और बेगम हमारे पलंग के चारों तरफ मँडराते हुए बच्चों को समझाती रहीं, 'कमबख्तो! आहिस्ता-आहिस्ता शोर मचाओ, अब्बा सो रहे हैं। रात भर उस मनहूस मिर्जा की संगत की है। आज दफ्तर नहीं जाएँगे। अरी ओ नबीली की बच्ची। घड़ी-घड़ी दरवाजा मत खोल। मक्खियों के साथ उनके मुलाकाती भी घुस आएँगे।'

शाम को मिर्जा चलते-फिरते इधर आ निकले और वह आध्यात्मिक तेज और जगमगाहट देखकर, जो दफ्तरी काम न करने से हमारे मुँह पर आ जाती है; कहने लगे, 'देखा! हम न कहते थे, एक ही सुहबत में रंग निखर आया। रात हजरत ने ध्यान दिया? दिल पर कोई असर पड़ा हुआ? रोया हुआ? हमने कहा, 'रोया-वोया तो हम जानते नहीं। अलबत्ता सुबह एक अजीबो-गरीब सपना देखा कि बगदाद में सफेद संगेमरमर का एक आलीशान महल है जिसके मुख्य द्वार पर राष्ट्रीय झंडे की जगह 'बिकनी' लहरा रही है। छत वीनस डी मैलो की मूर्तियों पर रुकी हुई है। हम्माम की दीवारें साफ काँच की हैं। बीच में कालीन के चारों तरफ असुरक्षित दूरी से मखमली गाव-तकियों की जगह कम कपड़े पहने दासियाँ आड़ी लेटी हैं और शेख उनकी मुलायम टेक लगाए, एक दूसरे के गाव-तकियों को आँख मार रहे हैं। सामने एक नर्तकी नक्कारों पर, अपनी आँखें अंजीर से पत्ते से ढाँपे, नग्न नृत्य कर रही है और पाँव से नक्कारों पर ताल देती जाती हैं। दिल भी उसी ताल के मुताबिक धड़क रहे हैं। गरज कि एक आलम है, अमीरों के आजू-बाजू दासियों और सेवकों के झुंड के झुंड की प्रतीक्षा में हैं कि इच्छा-पलक के संकेत पर अपने सारे रस उस पर लुटा दें। यह थोड़े-थोड़े से अंतराल पर शराब, कबाब और अपने-आप को पेश करती हैं। इसी कालीन के काले किनारे पर चालीस गुलाम हाथ बांधे नजरें झुकाए खड़े हैं और मैं उनमें से एक हूँ।'

इतने में क्या देखता हूँ कि एक बुजुर्ग भारी बदन, नींद में भरी हुई आँखें, दाढ़ी इतनी लंबी कि अगर टाई लगाएँ तो नजर न आए, हरी माला टेकते चले आ रहे हैं। हमने अपनी हथेली पर सौ रुपए का नोट रखकर पेश किया। हजरत ने नोट उठाकर वो जगह चूमी जहाँ नोट रखा था और भविष्यवाणी कि बारह बरस बाद तेरे भी दिन फिर जाएँगे। तू बावन साल की उम्र में एक भरे-पूरे हरम का मालिक...'

मिर्जा का चेहरा लाल अंगारा हो गया। बात काटते हुए बोले, 'तुम जिस्म शायर का मगर भावनाएँ घोड़े की रखते हो।'

फिर उन्होंने तिरस्कार और उलाहने का ऐसा द्वारा खोला कि इस असहाय ने (मैंने) खड़े-खड़े सारे वासियों को मय कम कपड़ों के हरम से निकाल बाहर किया।

तीन आगंतुक गीशाएँ (बहुत महँगी जापानी वेश्या) थीं जिनके वीजे का अभी आधा समय भी खत्म नहीं हुआ था, कैसे कहूँ कि उन्हें भी इस हड़बोंग में यात्राभत्ता दिए बिना निकाल दिया।

और उनके साथ-साथ तसव्वुफ (दर्शन) का विचार भी हमेशा-हमेशा के लिए दिल से निकाल दिया।

हमारे काले दिल पर कव्वालों के प्रभाव आपने देख लिए। अब बाइफोकल का हाल सुनिए। चश्मा हमारे लिए नई चीज नहीं। इसलिए कि पाँचवीं क्लास में कदम रखने से पहले हमारे चश्मे का नंबर सात हो गया था। जो पाठक naked eye (अंग्रेजी जोड़ा है मगर बढ़िया है) से देखने के आदी हैं उन्हें शायद अनुमान न लगे कि सात नंबर चश्मा क्या अर्थ रखता है। उनकी सेवा में निवेदन है कि अंधा-भैंसा खेलते समय बच्चे हमारी आँख पर पट्टी नहीं बाँधते थे। हमारी मान्यता थी अल्लाह ने नाक केवल इसलिए बनाई है कि चश्मा टिक सके और जो बेचारे चश्मे से वंचित हैं उनकी नाक बस जुकाम के लिए है। ...दादाजान का मानना था कि अरबी न पढ़ने के कारण हम आधे दृष्टिहीन हो गए हैं। वरना इस प्रतिष्ठित परिवार, जिसकी पितावलि डेढ़-दो लाख संबंधों से आदम से जा मिलती है, के इतिहास में डेढ़ सौ साल से किसी बुजुर्ग ने चश्मा नहीं लगाया। अल्लाह! अल्लाह, कैसा सस्ता समाँ और कैसे सीधे बुजुर्ग थे कि गर्ल्स प्राइमरी स्कूल की बस का रास्ता काटने को ताक-झाँक में गिनते थे। आज हमें इसका मलाल नहीं कि वह ऐसा क्यों समझते थे बल्कि इसका है कि हम खुद यही समझ कर जाया करते थे और जब हम चोरी की चवन्नी से बाइस्कोप देखकर रात के दस बजे पंजों के बल घर में घुसते तो ड्योढ़ी में हमें खानदान के तमाम बुद्धे न केवल खुद गाई ऑफ ऑनर देते बल्कि अपनी सहायक-टुकड़ी के रूप में बाहरी बुद्धों को भी बुला लेते थे कि सामना हमारे पापों और दुष्कर्मों से था।

चश्मे पर व्यंग्य सुनते-सुनते हमारा कमसिन कलेजा छलनी हो गया था। इसलिए दो साल बाद जब दादाजान का मोतियाबिंद का ऑपेशन हुआ तो हमने इस खुशी में बच्चों को लेमन-ड्राप्स बाँटीं। दरअस्त हम सब बच्चे उन्हें 'प्रॉब्लम बुजुर्ग' समझा करते थे। वहम के मरीज थे। ऑपेशन से पहले नकली बत्तीसी के एक अगले दाँत में दर्द महसूस कर रहे थे जिसका इलाज एक होम्योपैथिक डॉक्टर से कराने के बाद उन्होंने वह दाँत ही उखड़वा दिया और अब उसकी खुड्डी में हुक्के की चाँदी की महनाल फिट करके घंटों हमारे अँधेरे भविष्य के बारे में सोचा करते थे। हाँ! तो हम कह रहे थे कि ऑपेशन के बाद वह आधे इंच मोटे शीशे का चश्मा लगाने लगे थे जिससे उनकी गुस्सैली आँखें हम बच्चों को तिगुनी बड़ी दिखाई देती थीं। अल्लाह जाने खुद उन्हें भी उससे कुछ दिखाई देता था या नहीं। उसका कुछ अंदाजा इससे होता था कि उसी जमाने में अब्बाजान चौकीदारी के लिए एक सुनहरे रंग का

बूढ़ा कुत्ता ले आए थे जिसे कम नजर आता था। बल्कि यूँ कहना चाहिए कि दादाजान को कुत्ता और कुत्ते को वह नजर नहीं आते थे। हमारी यह झूठी लगी हुई थी कि हम दोनों पक्षों को एक दूसरे के हानिकर-क्षेत्र से दूर रखें। विशेषकर साँयकालीन नमाज के समय कभी-कभार ऐसा भी होता कि हमारी चूक से वह हाथ-पैर धोकर हिरन की खाल के बजाय कुत्ते पर बैठ जाते और उत्तरोक्त पूर्वोक्त पर भौंकने लगता तो वह लेखक पर चीखते कि अंधा हो गया है क्या। चश्मा लगा के भी इतना बड़ा कुत्ता नजर नहीं आता।

दावा तो मिर्जा और चश्मा बनाने वाले ने यही किया था कि ऊपरी हिस्से से दूर की और निचले से पास की चीजें साफ नजर आ जाएँगी। प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स ने तो यहाँ तक उम्मीद बंधाई कि दूर के शीशे से अपनी बीवी और पास के शीशे से दूसरे की बीवी का चेहरा निहायत भला मालूम होगा।

मस्त ने इधर देखा, जानी ने उधर देखा लेकिन पग-पग पर ठोकरें खाने के बाद खुला कि बाइफोकल से न दूर का दृश्य दिखाई पड़ता है, न पास का। अलबत्ता सब्र आ जाता है। यहाँ तक तो पर्याप्त गनीमत है कि हम बंदूक का घोड़ा निचले शीशे और मक्खी ऊपर वाले शीशे से देखें और अगर तीतर बंदूक की नाल में चोंच डाले कारतूस का निरीक्षण कर रहा है तो फिर बच के नहीं जा सकता। खैर शिकार को जाने दीजिए कि यूँ भी हम जीव-हत्या के खिलाफ हो गए हैं (बौद्ध मत और अहिंसा के उपदेशों से दिल ऐसा मुलायम हुआ है कि जान से मारे बगैर उसका गोश्त न खा सकें) लेकिन जीने से उतरते समय -

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है

और जहाँ पाँव पड़ता है वहाँ सीढ़ी नहीं होती। मिर्जा से इस स्थिति-विशेष का उल्लेख किया तो कहने लगे कि चश्मा हर समय लगाए रखो लेकिन जहाँ नजर का काम हो वहाँ एक सुंदर-सी छड़ी हाथ में रखा करो। लाहौर में हर जगह मिलती हैं। हमने कहा, 'लाहौर में जो खूबसूरत छड़ियाँ आम मिलती हैं, वह हमारे कंधे तक आती हैं। हम उन्हें हाथ में नहीं रख सकते, बगल में बैसाखी की तरह दबाए फिर सकते हैं मगर लाहौर की सुंदरियाँ अपने दिल में क्या कहेंगी।' बोले, 'तो फिर एक कुत्ता साथ रखा करो। तुम्हारी तरह वफादार न हो तो कोई हरज नहीं लेकिन सूरदास न हो।'

हम तो अब इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि अतीत के बादशाह विशेषकर कई मुगल शासक अपने उदंड सूबेदारों, अवज्ञाकारी शहजादों और तख्तो-ताज के दावेदारों, भाइयों की जल्लाद से आँखें निकलवा कर स्वयं को भारत का इतिहास, ईश्वरी प्रसाद लिखित, में खुद को अकारण बदनाम कर गए। उन सबको (ईश्वरी प्रसाद सहित) बाइफोकल लगवा देते तो औरों को सबक मिल जाता और यह दुखियारे भीख माँगने के लायक भी न रहते। हमारा विचार है कि न देखने का इससे अधिक साइंटिफिक यंत्र आज तक नहीं खोजा गया। जरा खुलकर बात करने की अनुमति हो तो हम यहाँ तक कह दें कि बाइफोकल पावन दृष्टि की गारंटी है। मसलन चश्मे के ऊपरी हिस्से से सामने बैठी हुई सुंदरी के सरताज की धाँसू मूँछ का एक-एक बाल गिना जा सकता है लेकिन जब रेशमी साड़ी हमारी ही तरफ से सरक कर पिंडली से ऊपर यूँ चढ़ जाए कि -

न देखे अब तो न देखे कभी तो देखेगा

तो साहब! इस बेहयाई का अवलोकन एकाग्रता से न ऊपर के शीशे से किया जा सकता है, न नीचे के शीशे से और यूँ गृहस्थ आदमी एक गुनाह से बच जाता है -

वो इक गुनह जो बजाहिर गुनाह से कम है

इतना जरूर है कि इसे लगाने के बाद और तीन चश्मों की व्यवस्था करनी अनिवार्य हो जाती है। एक दूर की, दूसरी पास की और तीसरी बगैर शीशों वाली - देखने के लिए। यह विलासिता के यंत्र इसलिए भी जरूरी हैं कि यूँ दिखाने को अर्धे आदमी के मुँह पर आँख, आँख में पुतली, पुतली में तिल और तिल में शायद दृष्टि भी होती है लेकिन तीन से पाँच फिट दूर की चीज किसी तरह बाइफोकल के फोकस में नहीं आती। एक दुर्घटना हो तो बयान करें। परसों रात शादी की दावत में जिस चीज को डोंगा समझकर हमने झपाझप उसमें से पुलाव की सारी बोटियाँ गिरा लीं, वह एक मौलवी साहब की प्लेट निकली जो खुद उस वक्त खीर की कश्ती पर बुरी नजर डाल रहे थे या कल रात घुप्प अँधेरे सिनेमाहाल में इंटरवल (जिसे मिर्जा मध्यांतर ताक-झाँक कहते हैं) के बाद कंधे पर हाथ रखे जिस सीट तक पहुँचने की कोशिश की, वह सीट हमारी नहीं निकली और न वह कंधा हमारी श्रीमती जी का। इनसान का कोई अभाव अकारण नहीं। जैसे-जैसे कुछ दर्द हमारी सहनशीलता और धैर्य के सामर्थ्यानुसार हमें प्रदान किया जाता है, मन अंतर्दृष्टि से निर्मल होते चले जाते हैं। इनसान जब आँख-कान का मुहताज न रहे और उसे अटकल से जीवन बिताने का हुनर आ जाए तो सही अर्थों में अनुशासन और व्यवस्था का प्रारंभ होता है। मिर्जा के अलावा भला यह किसका कथन हो सकता है कि काया का सुख चाहो तो जवानी में बहरे बन जाओ और बुढ़ापे में अंधे। सैर-तमाशे की हवस तो खैर पुरानी बात हुई। हमको तो अब दृष्टि का भी हुड़का नहीं। हो हो, न हो न हो। अब तो हर चीज को अपनी जगह रखने की आदत पड़ गई है। अलमारी में दाईं तरफ पतलूनें, बाईं तरफ पुरानी कमीजें जिन्हें अब हम सिर्फ बंद गले के स्वेटर के नीचे पहन सकते हैं। दूसरे खाने में सलीके से तह किया हुआ बंद गले का स्वेटर, जो अब सिर्फ बंद गले के कोट के नीचे पहना जा सकता है। आँख बंद करके जो चाहो निकाल लो। गरज कि हर चीज की अपनी जगह बन जाती है। नमाज की चटाई की जगह नमाज की चटाई, रुलाने वाले नाविल की जगह आँसुओं से भीगी चैकबुक, महबूबा की जगह बीवी, तकिए की जगह गाव-तकिया।

जरा क्रम बिगड़ा और नजर रखने वालों के कर्म का मान गया लेकिन जिस घर में खुदा के करम से बच्चे हों वहाँ यह रखरखाव मुमकिन नहीं और रखरखाव तो हमने शिष्टतावश कह दिया वरना सच पूछिए, कुछ भी मुमकिन नहीं।

दिल साहिबे-औलाद से इंसाफ तलब है

एक दिन हमने झुँझलाकर बेगम से कहा, यह क्या अंधेर है; तुम्हारे लाइले हर चीज जगह से बेजगह कर देते हैं। कल से चाकू गायब था। अभी भेद खुला कि उससे गुड़िया का अपेंडिक्स निकाला गया था। तुनक कर बोलीं, 'और क्या कुल्हाड़ी से गुड़िया का पेट चीरा जाता?' हमने झट उनके मत से सहमत होते हुए कहा, 'हाँ! यह कैसे मुमकिन है। इसलिए कि कुल्हाड़ी के डंडे से तो इस घर में कपड़े धोए जाते हैं। तुम ही बताओ, सुबह नए लेख की नाव बल्कि पूरा बेड़ा टब में पन्नेवार नहीं चल रहा था? तुम्हारे घर में हर चीज का एक नया उपयोग, एक नए फायदे की खोज होती है - सिवाय मेरे। तुम्हारे सामने की बात है, कह दो यह भी झूठ है। परसों दोपहर अखबार पढ़ते-पढ़ते जरा देर को आँख लग गई। खुली तो चश्मा गायब। तुमसे पूछा तो उल्टी डाँट पड़ी कि अभी से काहे को उठ बैठे, कुछ देर और सो रहो। अभी तो गुड्डू मियाँ तुम्हारा बाइफोकल लगाए अंधा-भैंसा खेल रहे हैं। बिल्कुल अपने बाप पर पड़े हैं। बच्चे तो सभी के होते हैं मगर घर का घरवाया कहीं नहीं होता। सुबह देखो तो सिगरेट लाइटर की लौ पर

हंडकुलिया पकाई जा रही है। शाम को स्वयं बेगम साहब, गीले बाल बिखरे, पंद्रह गज घर की शलवार में हमारी पेन्सिल से सटासट कमरबंद डाल रही हैं।'

सुर्ख चूड़ियाँ छनका कर सुहाग राग छेड़ते हुए बोलीं, 'हाय अल्लाह। दफ्तर का गुस्सा घर वालों पर क्यों उतार रहे हो? किसी ने तुम्हारी पेन्सिल से कमरबंद डाला हो तो उसके हाथ टूटें। मैंने तो तुम्हारे 'पारकर' से डाला था। चाहे जिसकी कसम ले लो। रहे बच्चे, तो उनके नसीब में तुम्हारी प्रयोग की हुई चीजें ही लिखी है, फिर भी आज तक ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने चीजें वापस वहीं न रखी हों।' हमने कहा, 'यकीन न हो तो खुद जाकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से देख लो। सेफ्टी-रेजर का ब्लेड गायब है।' बोलीं, 'कम से कम खुदा से तो डरो। अभी-अभी नबीला ने मेरे सामने पेन्सिल छीलकर वापस रेजर में लगाया है। वो बेचारी खुद ध्यान रखती है।'

मिर्जा ने गाँव चाकसू (छोटे-बड़े दोनों) के अधेड़ों की संस्था की दागबेल डाली तो हफ्तों इस ऊहापोह में रहे कि नाम क्या रखा जाए। प्रोफेसर काजी अब्दुल कुदूस, एम.ए. (गोल्ड मेडलिस्ट) ने 'संस्था - उदास मन, चाकसू, रजिस्टर्ड' प्रस्तावित किया जो इस कारण रद्द कर दिया गया कि अगर सदस्यता का आधार सिर्फ उदास मन होने को रखा तो चाकसू के सारे शायर अनछपे दीवान समेत घुस आएँगे। अच्छे-खासे वाद-विवाद के बाद तय पाया कि इस अधेड़ों के झुंड का नाम 'बाइफोकल-क्लब' सर्वोचित रहेगा क्योंकि बाइफोकल एक लिहाज से दुनिया के सारे अधेड़ों का राष्ट्रीय झंडा है।

मानव प्रकृति भी एक अजीब तमाशा है। बूढ़ा हो या बच्चा, नौजवान हो या अधेड़, आदमी हर स्तर पर अपने वय के विषय में झूठ ही को प्राथमिकता देता है। लड़के अपनी उम्र के दो-चार साल जियादा बताकर रौब जमाते हैं। जब यही लड़के खुदा की मेहरबानी से जवान हो जाते हैं तो नौजवान कहलाना पसंद करते हैं। जो अधेड़-वय के थोड़ा सच बोलने वाले होते हैं, वह अपनी उम्र दस बरस कम बताते हैं। औरतें अलबत्ता हमेशा सच बोलती हैं - वह एक-दूसरे की उम्र हमेशा सही बताती हैं। वास्तविकता यह है कि खून, खुशबू, इश्क और नाजायज दौलत छुपाए नहीं छुपती। बाइफोकल, अल्सर, बुरी नजर, गोल्फ, नई नस्ल से बेजारी, जल्दी दिल भर आना और आर्थिक समृद्धि - यह अधेड़-उम्र की जानी-पहचानी निशानियाँ हैं। इन सात विशेषताओं में से छह के आधार पर (यानी समृद्धि को छोड़ कर) जो हमारे व्यक्तित्व की गागर में समा गई थीं, हमें बगैर चुनाव लड़े, बाइफोकल क्लब का जनरल सेक्रेट्री चुन लिया गया।

क्लब की सदस्यता की आधारभूत शर्त यह है कि आदमी चालीस साल का हो और अगर खुद को इस से भी जियादा महसूस करता हो तो क्या कहना। हजरत हफीज जालंधरी के शब्दों में यह उम्र की वह स्थिति है कि आदमी को - हर बुरी बात, बुरी बात नजर आती है!

यह वह शांति का युग है कि आदमी चाहे भी तो पुण्य के अलावा और कुछ नहीं कर सकता। इंडोनेशिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्णो का कथन है कि तीस बहारों के बाद रबर का पेड़ और पार्वती-पुत्री (औरत) किसी उपयोग के नहीं रहते। जब कि मर्द किसी उम्र में सौंदर्य से सुरक्षित नहीं। ऐसे लोक-कथन मानना या दरकिनार करना हमारे बस की बात नहीं, सुकर्णो तो मर्दों को बरते हुए, नारी-दंशित और राष्ट्रायक्षी का कष्ट भोगे हुए हैं। हम तो इनसे भी वंचित हैं। फिर यह कि छोटे मुँह पर बुरी बात नहीं फबती। रबर के बारे में हम अभी इतना ही जान पाए हैं कि गलतियों को मिटाने की काफी काम की चीज है। रहीं महिलाएँ, सो अपने सावधानीपूर्ण और सीमित अध्ययन के

आधार पर हम कोई सुंदर झूठ नहीं बोल सकते। शेरनी को कछार में कुलेलें भरते देखना और बात है और सर्कस के पिंजरे में बंड की धुन पर लोटें लगाते देखना और बात।

अलबत्ता, हम अपने जैसों के बारे में बहुत से बहुत कह सकते हैं तो यह कह सकते हैं कि साँय-साँय करता मरुस्थल, जो रातों-रात जीती-जागती धरती को निगलता चला जाता है, वह विस्तृत-विशाल रेत का महाद्वीप जो बूढ़े सीनों में दमादम फैलता रहता है वह किसी भी क्षण प्रकट हो सकता है कि दिल आँख से पहले भी बूढ़े हो जाया करते हैं। इस निर्जन रेगिस्तान में गूँज के सिवा कोई आवाज, कोई पुकार नहीं सुनाई देती और कैक्टस के सिवा कुछ नहीं उगता। मिर्जा इस बंजर, बे-रस, बे-रंग, बे-उमंग धरती को No Woman's Land कहते हैं जिसकी मिली-जुली सीमाएँ सिर्फ बाइफोकल से देखी जा सकती हैं। यह फैलती हुई छायाओं और भीनी-भीनी यादों की धरती है जिसके वासी प्यास को तरसते हैं और बिना प्यास पीते हैं कि उन्हें -

इसका भी मजा याद है उसका भी मजा याद

एक दिन हमें ऊपर के शीशे से पृष्ठ संख्या और निचले से फुटनोट पढ़ते देखकर मिर्जा मुँह ऊपर-नीचे करके हमारी नकल उतारने लगे। उपस्थितजन को हमारे हाल पर खूब हँसा चुके तो हमने जलकर कहा, 'अच्छा, हम तो सिर्फ नेकचलनी के कारण समय से पहले अंधे हो गए लेकिन तुम किस खुशी में यह बोतल के पेंदे जितना मोटा चश्मा चढ़ाए फिरते हो?' फरमाया, 'मगर यह बाइफोकल नहीं है।' हमने कहा, 'तो क्या हुआ?' जिस चश्मे से तुम हिल-हिल कर कुरआन का पाठ करते हो, उसी से रात ढले आँखें फाड़-फाड़ कर निर्वस्त्र होने वाली कैबरेडांसर को देखते हो!' बोले, 'बरखुरदार! इसी लिए हमारा दिल आज तक साबित है।'

और यह बड़ी बात है। इसलिए कि मिर्जा (चौबीस साल से खुद को स्वर्गीय लिखते और कहते आए हैं) अब तक छोटे-बड़े मिलाकर 37 प्रेम संबंध बना चुके हैं। हर प्रेयसी की याद को लेबिल लगाकर इस तरह रख छोड़ा है जैसे फुटपाथ पर मजमा लगाकर दवाएँ बेचने वाले जहरीले साँपों और बिच्छुओं को स्प्रिट की बोतलों में लिए फिरते हैं। इन प्रेम संबंधों का अंत वही हुआ जो होना चाहिए, यानी नाकामी और यह अल्लाह ने बड़ी कृपा की, क्योंकि खुदान-ख्वास्ता वह कामयाब हो जाते तो आज मिर्जा के फ्लैट में 37 अदद दुल्हनें बैठीं बल्कि खड़ी होतीं लेकिन एक के बाद एक नाकामियों से मिर्जा का मूर्खतापूर्ण संकल्प नहीं डिगा। दो-चार टाँगें टूटने से कहीं कनखजूरा लंगड़ा होता है? 32वीं नाकामी का अलबत्ता मन ने बड़ा असर लिया। उन्होंने निर्णय किया कि रावी के रेलवे पुल से छलाँग लगाकर आत्महत्या कर लें लेकिन उसमें यह आशंका थी कि कहीं पहले ही ट्रेन से न कट जाएँ। लगातार तीन-चार रात दूसरा सिनेमा शो भी इसी सोचे-समझे मंसूबे के तहत देखने गए कि वापसी में मालरोड पर कोई बेदर्दी से कत्ल कर दे लेकिन किसी गुंडे ने जागती-जगमगाती सड़क पर उनके खराब खून से अपने हाथ नहीं रंगे। अन्याय यह कि किसी ने वह जब तक न काटी जिसमें वह सुरक्षा के लिए पिस्तौल छुपा कर ले जाते थे। सब तरफ से निराश होकर उन्होंने हजरत दाता गंजबखश की दरगाह को कूच किया कि उसी का मीनार सब से ऊँचा और पास पड़ता था मगर वहाँ देखा कि उर्स हो रहा है आदमियों पर आदमी टूटे पड़ते हैं। मौसम भी कुछ प्रतिकूल-सा है, चुनांचे दृढ़ संकल्प टाल दिया और बानो बाजार से चाट खाकर वापस आ गए।

जरा इत्तिफाक तो देखिए कि दो दिन बाद वह मीनार ही गिर गई। मिर्जा ने अखबार में यह खबर देखी तो सिर पकड़ कर बैठ गए। बड़ी हसरत से कहने लगे, 'अजीब इत्तिफाक है कि मैं उस वक्त मीनार पर नहीं था।' बरसों इसी का दुख रहा।

अपनी-अपनी सोच और अपनी-अपनी हिम्मत की बात है। एक हम हैं कि जो रातें गुनाहों से तौबा में बीतनी चाहिए थीं, वह अब उल्टी उनकी हसरत में तरसते, फड़कते गुजर रही हैं। नैन-कमल खिले भी तो बीतती रात की चाँदनी में और एक मिर्जा हैं कि नजर हमेशा नीची रखते हैं लेकिन नगर की सुंदरियों में से आज भी कोई व्यवहार करे तो उससे इनकार नहीं। उन्हीं का कथन है कि अगर आदमी कामना करने में कमजोरी या काहिली दिखाए तो मात्र आशिकी रह जाती है। हमने देखा कि स्थितियाँ कैसी ही प्रतिकूल हों, बल्कि अगर बिल्कुल कुछ न हो लेकिन मूड है तो मिर्जा पथरीली चट्टानों से दूध की नहर ही नहीं, स्वयं शीरी को प्रकट करा लेने का सलीका रखते हैं। बल्कि एक आध बार तो यह चोट भी हुई कि पहाड़ काटा - पहाड़ निकला। 1958 की घटना है। हमारे अनुरोध पर एक बेबी-शो (दूध पीते बच्चों की प्रदर्शनी) में जज बनना स्वीकार किया और वहाँ एक माँ पर आशिक हो गए। पहला पुरस्कार उसी को दिया।

4 अगस्त, 66 - दोपहर का वक्त - दिन पहले प्यार की तरह गर्म। बदन कोरी सुराही की तरह रिस रहा था। हम धूल उड़ाते, मिट्टी फाँकते, मिर्जा को इकतालीसवीं सालगिरह की बधाई देने गुलबर्ग पहुँचे। मिर्जा कराची से नए-नए लाहौर आए थे और स्थानीय कलर स्कीम से इतने असहमत थे कि सफेदे के तनों को नीला पेंट करवा दिया था। उनके बेयरे ने बरामदे से ही हाँक लगाई कि साहिब जी! वह जो मोटर-साइकिल-रिक्शा के आगे एक चीज लगी हुई है, सिर्फ उस पे बैठ के एक साहिब मिलने आए हैं लेकिन मिर्जा ने न यह ऐलान सुना और न हमारी मोटरसाइकिल की फटफट। इसलिए कि वह सालगिरह के भारी लंच के बाद आराम कुर्सी पर आँखें बंद किए, केस नंबर 29 को अपने ध्यान-अंक में लिए बैठे थे। हमने कंधा झिंझोड़ कर आवश्यक हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'मिर्जा! अजीब बात है। हर सालगिरह हमारे चश्मे के नंबर और बेदिली में बढ़ोत्तरी कर जाती है और हमें हर चीज में एक ताजा दरार पड़ी नजर आती है मगर तुम हो कि आज भी सितारों पर कर्मंड डालने का हौसला रखते हो।' बोले, 'शुक्रिया! नीत्शे की कृपा है।' हमने कहा, 'मगर हमारा मतलब फिल्मी सितारों से था।' फौरन शुक्रिया वापस लेते हुए फरमाया, 'ET TU BRUTUS?'

दो चार बरस की बात नहीं, हमने मिर्जा का वह जमाना भी देखा है जब -

घनघोर घटा तुली खड़ी थी

पर बूँद अभी नहीं पड़ी थी

अभी वह इस लायक भी नहीं थे कि अपने टुड़ियाँ तोते की देखरेख कर सकें लेकिन बेसब्रे दिल का यह रंग था कि अलजेबरा के घंटे में बड़े ध्यान से अपने हाथ की रेखाओं का अध्ययन करते रहते। आयुरेखा उनकी निजी आवश्यकता से कुछ लंबी ही थी मगर शादी की सिर्फ एक ही लाइन थी जिसे रगड़-रगड़ कर देखते थे कि शायद पिछले चौबीस घंटे में कोई शाख फूटी हो। उनकी आयु के लंबे समय तक बहुत से खानदानी बुजुर्ग उनकी जवानी पर छाया डालते रहे और जब अंतर से उनके घने-घने साये सर से उठे तो पता चला कि दुनिया इतनी बुरी जगह नहीं, लेकिन एक मुद्दत तक आर्थिक परिस्थितियों ने आवारगी का अवकाश नहीं दिया। मन मसोस कर रह गए, वरना उनका बस चलता तो बची-खुची आयु-संपत्ति को इस तरह ठिकाने लगा देते, जैसे दिल्ली के बादशाह लदे-फदे बाग लौंडियों से लुटवा दिया करते थे। मिर्जा 1948 तक मिर्जायाना जीवन जीते रहे यानी मिजाज रईसाना और आमदनी फकीराना रखते थे। शादी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। खुदा भला करे प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस का जिन्होंने एक दिन अपनी हथेली पर कलम से गुणा-भाग करके संख्यात्मक रूप से कायल कर दिया कि

जितनी रकम वह सिगरेटों पर फूँक चुके हैं, उससे सुघड़ शौहर चार बार मेहर की रकम अदा कर सकता था। आखिर हम सबने लग-लिपट कर उनकी शादी करवा दी। दो-चार दिन तो मेहर की रकम के आतंक से सहमे-सहमे फिरे और जैसे-तैसे अपने आप को सँभाले रखा लेकिन हनीमून का सप्ताह पूरा होने से पहले इस हद तक नार्मल हो गए कि बेतकुल्लफ दोस्तों को छोड़िए, खुद नई नवेली दुल्हन की जुबान पर भी यूँ ही कोई जनाना नाम आ गया तो मिर्जा तड़प कर साक्षात प्रश्नपत्र बन गए - कहाँ है? किस तरफ को है? किधर है?

उन्हीं के एक साले से सुनी किंवदंती है कि ठीक आरसी-मुसहफ (एक रस्म) के समय भी आईने में अपनी दुल्हन का मुँह देखने के बजाय मिर्जा की निगाहें उसकी एक सहेली के चेहरे पर जमी हुई थीं। दुनिया गवाह है (दुनिया का अर्थ यहाँ वही है जो मिर्जा का यानी नारी-जगत) कि मिर्जा ने जिस पर नजर डाली, बुरी डाली, सिवाय अपनी बीवी के। स्वयं उन्हीं का बयान है 'बंदा दुधमुँहेपन की आयु में भी बीस साल से जियादा उम्र की आया की गोद में नहीं जाता था। कभी-कभी अपनी लालच भरी आँखों से खुद भी पनाह माँगने लगते हैं, जुकाम के तिमाही हमले के दौरान हमारा हाथ अपने हाथ में लेकर कई बार यह वसीयत कर चुके हैं कि मैं मरने लगूँ तो लिल्लाह एक घंटे पहले मेरा चश्मा उतार देना वरना मेरा दम नहीं निकलेगा। हमने एक बार पूछा, 'मिर्जा, हमें यह कैसे पता चलेगा कि तुम्हारे दुश्मनों के मरने में अब एक घंटा रह गया है?' बोले, 'जब मैं नर्स से ड्यूटी के बाद का फोन नंबर पूछने के बजाय अपना टेंप्रेचर पूछने लगूँ तो समझ लेना कि तुम्हारे यारे-जानी का वक्त आन लगा है।'

मगर मिर्जा की बातें ही बातें हैं। वरना कौन नहीं जानता कि उनके सीने में जो बाँका-सजीला डॉन जुवान धूमें मचाया करता था, वह अब पिछले पहर दोहरा हो-हो कर खाँसने लगा है। अब वह अतिशदान के सामने कंबल का घूँघट निकाले, कँपकँपाती आवाज में अपने पास बैठने वालों को उस सुंदर युग की दास्तानें सुनाते हैं जब वह तड़के जमे हुए पानी से नहाया करते थे। वह तो यहाँ तक शेखी मारते हैं कि आज कल के मुकाबले में उस जमाने की तवायफें कहीं अधिक बदचलन हुआ करती थीं।

मिर्जा का जिक्र और फिर हमारा अंदाज! समझ में नहीं आता किस दिल से खत्म करें लेकिन क्लब के वरिष्ठतम संरक्षक फहीमुल्ला खाँ का परिचय रहा जाता है। यह उन्हीं के व्यक्तित्व बल्कि जेब का प्रताप है जिसने चाकसू (छोटा-बड़ा) के तमाम अधेड़ों को निरुद्देश्य एक प्लेटफार्म पर जमा कर दिया। खाँ साहब हर नस्ल की अमरीकी कार और घोड़ों के प्रेमी हैं। बाद वालों की गति और चरित्र से इतने प्रभावित हैं कि किसी सुंदरी की बहुत तारीफ करनी हो तो उसे घोड़ी की उपमा देते हैं और लोगों पर बहुत हुआ तो खुदा जीवन का एक द्वार खोल देता है, उन पर तो पूरी बारहदरी खुली हुई है और वह भी पहले दिन से वरना होने को तो समृद्धि हमें भी नसीब हुई मगर जैसा कि एक शायर ने कहा है -

अब मिरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो

हम जब चौथी क्लास में पहुँचे तो उनके बड़े सुपुत्र मैट्रिक में दूसरी बार फेल हो चुके थे लेकिन बुढ़ापे का अहसास तो दूर, जब से हमने बाइफोकल लगाया है, हमें अपनी नवीनतम, चालू माह की प्रेयसी से 'अंकल' कहलवा कर हसीनों की निगाह में हमारी इज्जत और उम्र बढ़ाते रहते हैं। जिस जगह पर अब हम लाहौल पढ़ने लग गए हैं, वहाँ उनकी जुबान सुब्हान-अल्लाह, सुब्हान-अल्लाह कहते सूखी जाती है। हमने उनकी जवानी की गर्मियाँ नहीं देखीं। हाँ, बड़े बूढ़ों से सुना है कि जब खाँ साहब की जवानी मुहल्ले की नवयौवनाओं के माँ-बाप पर बोझ बनने लगी तो उन्होंने पड़ोसियों के दरो-दीवार पर हसरत से नजर करके चाकसू खुर्द को अलविदा कहा और बंबई कूच कर गए,

जहाँ ऊन की आढ़त के साथ-साथ 1947 तक कई ऊँचे घरानों के आधुनिक विचारों से लाभ उठाते रहे। मिर्जा का कहना है कि उनका दिल शुरू से ही बहुत बड़ा था। उनका मतलब है कि उसमें एक ही समय में कई महिलाओं की समाई हो सकती थी। सुंदर से सुंदरतर की तलाश उन्हें कई बार काजी के सामने भी ले गई और हर निकाह पर फिर-फिर के जवानी आई कि यह -

असा है पीर को और सैफ है जवाँ के लिए

उनके अट्टहास में जो गूँज और गमक है वह सिंध क्लब के अंग्रेजों की संगत और वहीं की व्हिस्की से खींची गई है। रहने-सहने का बढ़िया ढंग, सुंदर परिधान, शाहखर्ची। नाजायज आमदनी को उन्होंने हमेशा नाजायज मद में खर्च किया। तबीअत धूपघड़ी की तरह जो सिर्फ चमकीले पलों की गिनती रखती है। सुदृढ़ डील-डौल, चौड़ी छाती, खड़ी कमर, कंधे जैसे खरबूजे की फाँक, खुलती बरसती जवानी और आँखें? इधर दो-तीन साल से चश्मा लगाने लगे हैं मगर धूप का। वह भी उस वक्त जब सैंडज-पिट के परिधान-बैरी किनारे पर सूर्य-स्नान के दृश्य से उनकी गँदली-गँदली आँखों में एक हजार 'स्कैंडल पावर' की चमक पैदा हो जाती है और वह घंटों किसी को आँखों से नहलाते रहते हैं। पास की नजर ऐसी कि अब तक अपनी जवान-जहान पोतियों के नाम खत खोल कर बगैर चश्मे के पढ़ लेते हैं। रही दूर की नजर, सो जितनी दूर नार्मल आदमी की नजर जा सकती है उतनी दूर बुरी नजर से देखते हैं।

(1965 - 1968)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

चाँद-चेहरों के लिए सीखे हैं

सुप्रसिद्ध शायर मौलाना हसरत मोहानी ने अपनी शायरी के तीन रंग बताए हैं। पाप-पूर्ण, श्रृंगार-पूर्ण और आध्यात्म-पूर्ण। मौलाना की तरह चक्की की मेहनत तो बड़ी बात है, मिर्जा अब्दुल वदूद बेग ने तो काव्याभ्यास से भी मन पर बोझ नहीं डाला फिर भी वह अपनी कला (फोटोग्राफी) को इन्हीं तीन जानलेवा युगों में बाँटते हैं। यह और बात है कि उनके यहाँ यह क्रम बिल्कुल उल्टा है। रहे हम तो हम अभी रूसो की तरह इतने बड़े आदमी नहीं हुए कि अपने ऊपर सार्वजनिक रूप से पाप और बदचलनी का इल्जाम लगाने के बाद भी अपने और पुलिस के बीच एक सम्मानित दूरी बनाए रख सकें लेकिन वास्तविकता यह है कि मिर्जा की तरह हम भी कला के मारे हुए हैं और हमारा नाता भी इस कला से उतना ही पुराना है। जहाँ तक याद पड़ता है स्लेट पर 'कलम गोयद कि मन शाहे-जहानम' (लेखनी ने कहा कि मैं संसार का शासक हूँ) लिख-लिख कर खुद को गुमराह करने से पहले हम कोडक ब्राउन कैमरे का बटन दबाना सीख चुके थे लेकिन जिस दिन से मिर्जा की खींची एक नंगी खुली तस्वीर (जिसे वह फिगर स्टडी कहते हैं) को लंदन की एक पत्रिका ने मुद्रण के जेवरों से सजाया, हमारी अकुशलता के नए-नए पहलू उन पर उजागर होते रहते हैं।

मिर्जा जब से बोलना सीखे हैं अपनी जुबान को हम पर अभ्यास कराते रहते हैं और अक्सर उपमा और यमक अलंकार से मामूली गाली-गलौज में एक साहित्यिक मान पैदा कर देते हैं। अभी कल की बात है कहने लगे, 'यार बुरा मत मानना, तुम्हारी कला में कोई प्लॉट - कोई पेंच, मेरा मतलब है, कोई मोड़ नजर नहीं आता।' हमने कहा, 'प्लॉट तो उर्दू नाविलों में होता है, जिंदगी में कहाँ?' बोले, 'हाँ! ठीक कहते हो, तुम्हारा छायांकन भी तुम्हारी जिंदगी ही की छाया है। यानी एक सिरे से जलील होने की अनुसरण न हो सकने वाली शैली।'

हरचंद कि यह बीन बजाना हमारे काम न आया लेकिन यही क्या कम है कि मिर्जा जैसे बुद्धिमान कान पकड़ते हैं और हमारे तुच्छ जीवन को उच्च शैक्षिक उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करते हैं। यानी उसे सामने रख कर अपनी संतान को उपदेश देते हैं, शिक्षा देते हैं और चेतावनी देते तथा डाँट-डपट करते हैं। इन पन्नों में हम अपनी जीवन-शैली के कारक और व्याख्या देकर पाठकों के हाथ में नाकामी की कुंजी नहीं देना चाहते। अलबत्ता इतना जरूर निवेदन करेंगे कि मिर्जा की तरह हम अपनी नालायकी को क्रमिक विकास के युगों में नहीं बाँट सकते, लेकिन जो

सज्जन हमारी लज्जित हुई रुचि की कथा पढ़ने का कलेजा रखते हैं वो देखेंगे कि हम सदा से हाजिओं के पासपोर्ट, फोटो और ऐतिहासिक खंडहरों के चित्र ही नहीं उतारते रहे हैं।

गुजर चुकी है ये फस्ले-बहार हम पर भी

लेकिन हम किस गिनती में हैं। मिर्जा अपने आगे बड़े-बड़े फोटोग्राफरों को तुच्छ समझते हैं। एक दिन हमने पूछा, 'मिर्जा! दुनिया में सबसे बड़ा फोटोग्राफर कौन है? यूसुफ कार्श या सिसिल बेटन?' मुस्कराते हुए बोले, 'तुमने वह दंत-कथा नहीं सुनी? किसी नादान ने मजनुँ से पूछा, खिलाफत पर हक हुसैन का है या यजीद का? बोला, अगर सच पूछो तो लैला का है।'

इधर चंद साल से हमने यह परिपाटी बना ली है कि हफ्ते भर शारीरिक और मानसिक टूट-फूट के बाद इतवार को मुकम्मल SABATH (यहूदी और ईसाई ग्रंथों के अनुसार आराम का दिन) मनाते हैं और सनीचर की मनौतियों भरी शाम से सोमवार की अशुभ सुबह तक हर वह क्रिया अपने ऊपर हराम कर लेते हैं जिसमें कार्य का मामूली सा शक या आशंका हो। छह दिन दुनिया के, एक दिन अपना (मिर्जा तो इतवार के दिन इतना आजाद और खुला-खुला महसूस करते हैं कि सुबह की नमाज के बाद दुआ नहीं माँगते और सोमवार की कल्पना से ही उनका जी इतना उलझता है कि एक दिन कहने लगे, इतवार अगर सोमवार के दिन हुआ करता, तो क्या ही अच्छा होता।) यह बात नहीं कि हम मेहनत से जी चुराते हैं। जिस व्यस्तता में (फोटोग्राफी) इतवार गुजरता है, उसमें मेहनत तो उतनी ही पड़ती है जितनी दफ्तरी काम में लेकिन फोटोग्राफी में भेजा भी इस्तेमाल करना पड़ता है और मॉडल अगर सीधे न बैठने वाले बच्चे हों तो न केवल अधिक बल्कि बार-बार इस्तेमाल करना पड़ता है। इससे बचने के लिए मिर्जा ने अब हमें कुछ उस्तादों के गुर सिखा दिए हैं। मसलन एक तो यही कि पक्षियों और बच्चों का चित्र खींचते समय केवल आँख पर फोकस करना चाहिए कि उनका सारा व्यक्तित्व खिंचकर आँख में आ जाता है और जिस दिन उनकी आँख में ये चमक न रही, दुनिया अंधेर हो जाएगी। दूसरे यह कि जिस बच्चे पर तुम्हें प्यार न आए, उसकी तस्वीर हरगिज न खींचियो। फ्रांस में एक स्तर-प्रेमी चित्रकार गुजरा है जो असील घोड़ों के चित्रांकन में सिद्धहस्त था। कला की उत्कृष्टता उसे इतनी प्यारी थी कि जो घोड़ा दोगला या बीस हजार फ्रैंक से कम कीमत का हो उसकी तस्वीर हरगिज नहीं बनाता था। चाहे उसका मालिक बीस हजार मेहनताना ही क्यों न पेश करे।

महीना याद नहीं रहा। शायद दिसंबर था। दिन अलबत्ता याद है इसलिए कि इतवार था और उपरोक्त उल्लिखित नियमों से लैस। हम स्वयं पर साप्ताहिक बेध्यानी लादे हुए थे। घर में हमारे प्रिय पड़ोसी की बच्ची नाजिया, अपनी सैफू (सियामी) बिल्ली की मानवाकार तस्वीर खिंचवाने आई हुई थी। मानवाकार से तात्पर्य शेर के बराबर था। कहने लगी, 'अंकल! जल्दी से हमारी बिल्ली का फोटो खींच दीजिए। हम अपनी गुड़िया को अकेला छोड़ आए हैं। कल सुबह से बिचारी के पेट में दर्द है। जभी तो कल हम स्कूल नहीं गए।' हमने झटपट कैमरे में तेज-रफ्तार फिल्म डाली। तीनों फ्लड लेंप ठिकाने से अपनी जगह रखे। फिर बिल्ली को दबोच-दबोच के मेज पर बैठाया और उसके मुँह पर मुस्कराहट लाने के लिए नाजिया प्लास्टिक का चूहा हाथ में पकड़े सामने खड़ी हो गई। हम बटन दबाकर 1/100 सेकेंड में उस मुस्कराहट को अमरत्व प्रदान करने वाले थे कि फाटक की घंटी इस जोर से बजी के सैफू उछलकर कैमरे पर गिरी और कैमरा कालीन पर। दोनों को इसी हालत में छोड़ कर हम असमय आने वालों के स्वागत को दौड़े।

अर्पित करूँगा आपको हज का सवाब में

फाटक पर शेख मुहम्मद शम्सुल हक खड़े मुस्कुरा रहे थे। उनकी ओट से रुई के दगले में लिपटे एक और बुजुर्ग प्रकट हुए जिन पर नजर पड़ते ही नाजिया ताली बजा के कहने लगी:

'हाय! कैसा क्यूट सेंटाक्लाज है।'

यह शेख मुहम्मद शम्सुल हक के श्रद्धेय मामूजान निकले जो हज को तशरीफ ले जा रहे थे और हम दोनों जन को पुण्य में शरीक करने के लिए ग्राम चाकसू से अपना पासपोर्ट फोटो खिंचवाने आए थे।

'मामूजान तो हठ कर रहे थे कि फोटोग्राफर के पास ले चलो, बला से पैसे लग जाएँ, तस्वीर तो ढंग की आएगी। बड़ी मुश्किलों से यहाँ आने के लिए माने हैं।' उन्होंने अपने अवतरित होने का कारण बताया।

ड्राइंग रूम में घुसते ही शेख मुहम्मद शम्सुल हक के मामूजान किबला दीवारों पर पंक्तिबद्ध सजे सुंदरियों के चित्रों को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। हर तस्वीर देखने के बाद मुड़कर एक बार हमारी सूरत जरूर देखते। फिर दूसरी तस्वीर की बारी आती और एक बार फिर वह हम पर निगाह डालते जो किसी तरह कुत्सित न थी। जिन नजरों से वे ये तस्वीरें देख रहे थे उन से स्पष्ट था कि इस दृष्टि के मालिक का संबंध उस नस्ल से है जिसने रुपए पर बनी रानी विक्टोरिया के बाद किसी औरत की तस्वीर नहीं देखी। एक बाँकी-सी तस्वीर को जरा पास जाकर देखा। लाहौल पढ़ी और पूछा, 'ये आपके लड़के ने खींची है?' निवेदन किया, 'जी नहीं, वो तो तीन साल से सातवीं में पढ़ रहा है।' बोले, 'हमारा भी यही विचार था, एहतियातन पूछ लिया।'

शेख मुहम्मद शम्सुल हक के मामूजान किबला (अपनी और कंपोजीटर की आसानी के लिए आगे उन्हें सिर्फ मामू लिखा जाएगा। जिन पाठकों को बुरा लगे वो हर बार मामू की जगह, शेख मुहम्मद शम्सुल हक के मामूजान किबला, पढ़ें) हमारे मार्ग-दर्शन के लिए अपने स्वर्गीय ताया की एक मिटी-मिटाई तस्वीर साथ लाए थे। शीशम के फ्रेम को मेंहदी रचे अँगोछे से झाड़ते हुए बोले, 'ऐसी खींच दीजिए।' हमने तस्वीर को गौर से देखा तो पता चला कि मामू के बुढ़ऊ-ताऊ भी वही रुई का दगला पहने खड़े हैं जिस पर उल्टी कैरियाँ बनी हुई हैं। तलवार को बड़ी मजबूती से पकड़ रखा है - झाड़ू की तरह। निवेदन किया, 'श्रद्धेय पासपोर्ट फोटो में तलवार की इजाजत नहीं।' फरमाया, 'आपको हमारे हाथ में तलवार नजर आ रही है?' हम बहुत कटे, इसलिए कि मामू के हाथ में वाकई कुछ भी नहीं था सिवाय एक हानिरहित गुलाब के, जिसे सूँघते हुए वह पासपोर्ट फोटो खिंचवाना चाहते थे।

मामू के कान 'ट' की तरह थे, बाहर को निकले हुए। इससे यह न समझा जाए कि हम शारीरिक विकार का उपहास कर रहे हैं। अस्ल में इस उपमा से हम कानों की लाभदायकता प्रदर्शित करना चाहते हैं क्योंकि ईश्वर न करे कानों की बनावट ऐसी न होती तो उनकी तुर्की टोपी सारे चेहरे को ढक लेती, प्रारंभिक तैयारियों के बाद बड़ी खुशामद करके उन्हें फोटो के लिए कुर्सी पर बिठाया। किसी तरह नहीं बैठते थे। कहते थे, 'भला यह कैसे हो सकता है कि आप खड़े रहें और मैं बैठ जाऊँ।' खुदा-खुदा करके वह बैठे तो हमने देखा कि उनकी गरदन हिलती है। स्पष्ट है हमें इस प्राकृतिक कंपन पर क्या आपत्ति हो सकती थी। अस्ल मुसीबत यह थी कि गरदन अगर दो सेकेंड हिलती तो टोपी का फुंदना दो मिनट तक हिलता रहता। इन दोनों कार्यक्रमों के एक अद्वितीय अंतराल में हमने 'रेडी' कहा तो दृश्य ही कुछ और था। एकदम अकड़ गए और ऐसे अकड़े कि बदन पर कहीं भी हथौड़ी मार कर देखें तो टन-टन आवाज निकले। डेढ़-दो मिनट बाद तीसरी बार रेडी कह कर कैमरे के छेद से देखा तो चेहरे से डर लगने लगा। गरदन पर एक रस्सी जैसी नस न जाने कहाँ से उभर आई थी। चेहरा लाल, आँखें उस से अधिक लाल। अचानक

एक अजीब आवाज आई अगर हम उनके मुँह की तरफ न देख रहे होते तो यकीनन यही समझते कि किसी ने साइकिल की हवा निकाल दी है।

'अब तो साँस ले लूँ?', सारे कमरे की हवा अपनी नाक से पंप करते हुए पूछने लगे। अब सवाल यह नहीं था कि तस्वीर कैसी और किस पोज में खींची जाए। सवाल यह था कि उनकी श्वसन-क्रिया को कैसे जारी रखा जाए कि तस्वीर भी खिंच जाए और हम इरादतन कत्ल से भी बच जाएँ। अपनी निगरानी में उन्हें दो-चार साँस ही लिवा पाए थे कि मस्जिद से अजान की आवाज बुलंद हुई और पहली 'अल्लाहो-अकबर' के बाद, मगर दूसरी से पहले मामू कुर्सी से हड़बड़ा के उठ खड़े हुए। शीशे के जग से वुजू किया। पूछा, 'मक्का किस तरफ है?' हमारे मुँह से निकल गया, 'पश्चिम की तरफ।' बोले, 'हमारा भी यही विचार था मगर एहतियातन पूछ लिया।' इसके बाद नमाज की चटाई माँगी।

मामू ने पलंगपोश पर दोपहर की नमाज पढ़ी। आखिर में ऊँची आवाज में दुआ माँगी, जिसे वह लोग जिनका विश्वास थोड़ा कमजोर है, इच्छाओं की सूची कह सकते हैं। नमाज से निवृत्त हुए तो हमें संबोधित करके बड़ी नमी से बोले, 'चार फर्जों के बाद दो सुन्नतें पढ़ी जाती हैं। तीन सुन्नतें किसी नमाज में नहीं पढ़ी जातीं। कम-से-कम मुसलमानों में।'

दूसरे कमरे में खाने और आराम के बाद चाँदी की खिलाल से प्राचीन आदत के अनुसार अपने नकली दाँतों की रेखें कुरेदते हुए बोले, 'बेटा, तुम्हारी बीवी बहुत सुघड़ है। घर बहुत ही साफ-सुथरा रखती है। बिल्कुल अस्पताल लगता है।' इसके बाद उनकी और हमारी संयुक्त जान फिर निकलना शुरू हुई। हमने कहा, 'अब थोड़ा रिलैक्स कीजिए।' बोले, 'कहाँ करूँ?' कहा, 'मेरा मतलब है जरा बदन ढीला छोड़ दीजिए और यह भूल जाइए कि आप कैमरे के सामने बैठे हैं।' बोले, 'अच्छा, ये बात है! फौरन बँधी हुई मुट्टियाँ खोल दीं। आँखें झपकाईं और फेफड़ों को अपनी प्राकृतिक क्रिया फिर शुरू करने की इजाजत दी। हमने इस 'नेचुरल पोज' से फायदा उठाने की गरज से दौड़-दौड़ कर हर चीज को आखिरी 'टच' दिया जिसमें यह लगा बँधा वाक्य भी शामिल था, 'इधर देखिए, मेरी तरफ, जरा मुस्कराइए।' बटन दबाकर हम शुक्रिया कहने ही वाले थे कि ये देखकर ईरानी कालीन पैरों तले से निकल गया कि वह हमारे कहने से पहले ही खुदा जाने कब से रिलैक्स करने के लिए अपनी बत्तीसी हाथ में लिए हँसे चले जा रहे थे। हमने कहा, 'साहब। अब न हँसिए।' बोले, 'तो फिर आप सामने से हट जाइए।' हमें उनके सामने से हटने में जियादा सोच विचार नहीं करना पड़ा। इसलिए कि उसी वक्त नन्हें नाजिया दौड़ी-दौड़ी आई और हमारी आस्तीन का कोना खींचते हुए कहने लगी, 'अंकल! हरी अप! प्लीज! नमाज की चटाई पर बिल्ली पंजों से, वुजू कर रही है। हाय अल्लाह! बड़ी क्यूट लग रही है।'

फिर हम इस दृश्य की तस्वीर खींचने और मामू लाहौल पढ़ने लगे।

अगले इतवार को हम प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स के फोटो की रीटचिंग में जुटे हुए थे। पतलून की पंद्रहवीं सिलवट पर कलफ - इस्त्री करके हम अब हॉठ का मस्सा छुपाने के लिए जीरो नंबर के ब्रश से मूँछ बनाने वाले थे कि इतने में मामू अपनी तस्वीर लेने आ धमके। तस्वीरें कैसी आई, इसके बारे में हम अपने मुँह से कुछ कहना नहीं चाहते। संवाद खुद चटाख-पटाख बोल उठेगा :

'हम ऐसे हैं?'

'क्या निवेदन करूँ।'

'तुम्हें किसने सिखाया तस्वीर खींचना?'

'जी! खुद ही खींचने लग गया।'

'हमारा भी यही विचार था मगर एहतियातन पूछ लिया।'

'आखिर तस्वीर में क्या खराबी है?'

'हमारे विचार में यह नाक हमारी नहीं है।'

हमने उन्हें सूचित किया कि उनके विचार और उनकी नाक में कोई साम्य नहीं है। इस पर उन्होंने ये जानना चाहा कि अगर तस्वीर को खूब बड़ा किया जाए, तब भी नाक छोटी नजर आएगी क्या?

लाभकारी उपदेश

दूसरे दिन मिर्जा एक नए ढंग से होटल 'मॉंटीकार्लो' के बॉलरूम में उतारी हुई तस्वीरें दिखाने आए और हर तस्वीर पर हमसे इस तरह दाद वसूल की जैसे मराठे 'चौथ' वसूल किया करते थे। यह स्पेन की एक स्ट्रिप्टीज डांसर (जिसे मिर्जा सिसली की नर्तकी कहे चले जा रहे थे) की तस्वीरें थीं जिन्हें नग्न तो नहीं कहा जा सकता था, इसलिए कि सफेद दस्ताने पहने हुए थी। गर्म काफी और अज्ञानपूर्ण प्रशंसा से जब वह मूड में आ गए तो मौका गनीमत जानकर हमने मामू की अन्यायपूर्ण बातें उन्हें बताईं और सलाह माँगी। अब मिर्जा में बड़ी पुरानी कमजोरी यह है कि उनसे कोई मशवरा माँगे तो हाँ में हाँ मिलाने के बजाय सचमुच मशवरा ही देने लग जाते हैं फिर यह भी है कि हमारी सूरत में कोई ऐसी बात जरूर है कि हर शख्स का अचानक सीख देने का जी चाहता है। चुनांचे फिर शुरू हो गए।

'साहब! आपको फोटो खींचना आता है, फोटो खिंचवाने वालों से निपटना नहीं आता। सलामती चाहते हो तो कभी अपने सामने फोटो देखने का मौका मत दो। बस मोटे लिफाफे में बंद करके हाथ में थमा दो और चलता करो। विकटोरिया रोड के चौराहे पर जो फोटोग्राफर है - लहसुनिया दाढ़ी वाला अरे भई। वही जिसकी नाक पर चाकू का निशान है। आगे का दाँत टूटा हुआ है। अब उसने बड़ा प्यारा नियम बना लिया है। जो ग्राहक दुकान पर अपनी तस्वीर न देखे उसे बिल में 25 प्रतिशत कैश छूट देता है और एक तुम हो कि मुफ्त तस्वीर खींचते हो और शहर भर के बदसूरतों की गालियाँ खाते फिरते हो। आज तक ऐसा नहीं हुआ कि तुमने किसी की तस्वीर खींची हो और वह हमेशा के लिए तुम्हारा जानी दुश्मन न बन गया हो।'

बहुसंतति और हम नख-शिख विकार भरे

सीख देने की धुन में मिर्जा भूल गए कि दुश्मनों की सूची में बढ़ोत्तरी करने में खुद उन्होंने हमारा काफी हाथ बँटाया है। जिसका अंदाजा अगर आप को नहीं है तो आने वाली घटनाओं से हो जाएगा। हमसे कुछ दूर पी.डब्ल्यू.डी. के एक नामी-गिरामी ठेकेदार तीन कोठियों में रहते हैं। मार्शल-लॉ के बाद से बेचारे इतने कमजोर दिल हो गए हैं कि बरसात में कहीं से भी छत गिरने की खबर आए, उनका कलेजा धक से रह जाता है। हुलिया हम

इसलिए नहीं बताएँगे कि इसी बात पर मिर्जा से बुरी तरह डाँट खा चुके हैं - 'नाक फिलिप्स के बल्ब जैसी, आवाज में बैंक-बैलेंस की खनक, जिस्म खूबसूरत सुराही की तरह - यानी बीच से फैला हुआ।' हमने आउट लाइन ही बनाई थी कि मिर्जा घायल लहजे में बोले, 'बड़े हास्यकार बने फिरते हो। तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि शारीरिक विकृतियों का उपहास करना हास्य-व्यंग्य नहीं।' करोड़पति हैं मगर इन्कमटैक्स के डर से अपने को लखपति लिखवाते हैं। दाता ने उनकी तबीयत में कंजूसी कूट-कूट कर भर दी है। रुपया कमाने को तो सभी कमाते हैं, वह रखना भी जानते हैं। कहते हैं कि आमदनी बढ़ाने की आसान तरकीब यह है कि खर्च घटा दो। मिर्जा से किंवदंती है कि उन्होंने अपनी बड़ी बेटी को इस कारण से स्त्री-धन नहीं दिया कि उसकी शादी एक ऐसे शख्स से हुई थी जो खुद लखपति था और दूसरी बेटी को इसलिए नहीं दिया कि वह दिवालिया था। साल छह महीने में नाक की कील भी बेच खाता। बहरहाल लक्ष्मी घर में ही रही।

हाँ! तो इन्हीं ठेकेदार साहब का जिक्र है जिनकी जायदाद लिखित-अलिखित, ब्याहता और अनब्याहता का चित्र एक मानसिकता बयान करने वाले शायर ने एक पंक्ति में खींच कर रख दिया है -

इक-इक घर में सौ-सौ कमरे, हर कमरे में नार

इस सुंदर परिस्थिति के नतीजे अक्सर हमें भुगतने पड़ते हैं। वह इस तरह कि हर नए पैदा होने वाले बच्चे के अकीके और पहली सालगिरह पर हम ही से यादगार तस्वीर खिंचवाते हैं और यही क्या कम है कि हमसे कुछ नहीं लेते। इधर ढाई तीन साल से इतनी कृपा और करने लगे हैं कि जैसे ही परिवार-अनियोजन की शुभ-घड़ी आती है तो एक नौकर दाई को और दूसरा हमें बुलाने दौड़ता है। बल्कि एक-आध बार तो ऐसा हुआ कि 'वो जाती थी कि हम निकले।' जिन साहब को इस बयान में पड़ोसी की शरारत नजर आए, वह ठेकेदार साहब के एलबम को देख सकते हैं। हमारे हाथ की एक नहीं दर्जनों तस्वीरें मिलेंगी जिनमें श्रीमान कैमरे की आँख में आँख डाल कर नवजात के कान में अजान देते हुए नजर आते हैं।

आए दिन की जच्चगियाँ झेलते-झेलते हमारी जान साँसत में आ गई थी मगर लाज और शिष्टतावश खामोश थे। अकल काम नहीं करती थी कि इस 'शौक के काम' को कैसे बंद किया जाए। मजबूरन (अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार) मिर्जा को अपने विश्वास में लेना पड़ा। मलाल भरा हाल सुनकर बोले, 'साहब इन सब परेशानियों का हल एक फूलदार फ्रॉक है।' हमने कहा, 'मिर्जा! हम पहले से ही सताए हुए हैं। हम से यह एब्सट्रैक्ट बातचीत तो न करो। बोले, 'तुम्हारी ढलती जवानी की कसम! मजाक नहीं करता। तुम्हारी तरह पड़ोसियों के दिल के टुकड़ों की तस्वीरें खींचते-खींचते अपना भी भुरकस निकल गया था। फिर मैंने तो यह किया कि एक फूलदार फ्रॉक खरीदी और उसमें एक नवजात शिशु की तस्वीर खींची और उसकी तीन दर्जन कॉपियाँ बनाकर अपने पास रख लीं। अब जो कोई अपने नवजात की तस्वीर की फरमायश करता है तो यह शर्त लगा देता हूँ कि अच्छी तस्वीर चाहिए तो यह खूबसूरत फूलदार फ्रॉक पहना कर खिंचवाओ। फिर कैमरे में फिल्म डाले बगैर बटन दबाता हूँ और दो तीन दिन का भुलावा देकर उसी चित्र की एक कॉपी पकड़ा देता हूँ। हर बाप को उसमें अपना साम्य दिखाई पड़ता है।'

घटनाएँ और प्राथमिक कानूनी सहायता

हमारे पुराने जानने वालों में आगा इकलौते आदमी हैं जिनसे अभी तक हमारी बोलचाल है। इसका इकलौता कारण मिर्जा यह बताते हैं कि हमने कभी उनकी तस्वीर नहीं खींची। हालाँकि हमारी कलागत योग्यता से वह भी

अपने तौर पर लाभान्वित हो चुके हैं। फायदे की स्थिति यह थी कि एक इतवार को हम अपने 'डार्करूम' (जिसे सोमवार से शनिवार घर वाले टायलेट कहते हैं) में अँधेरा किए एक मारपीट से भरपूर राजनीतिक सभा के प्रिंट बना रहे थे। घुप्प अँधेरे में एक मुन्ना-सा लाल बल्ब जल रहा था, जिस से बस इतनी रोशनी निकल रही थी कि वो स्वयं नजर आ जाता था। पहले प्रिंट पर काली झंडियाँ साफ नजर आने लगी थीं लेकिन लीडर का चेहरा किसी तरह उभर के नहीं आता था। लिहाजा हम इसे बार-बार चिमटी से तेजाबी घोल में गोते दिए जा रहे थे। इतने में किसी ने फाटक की घंटी बजाई और बजाता चला गया। हम जिस समय चिमटी हाथ में लिए पहुँचे हैं, तो घर वाले ही नहीं, पड़ोसी भी दौड़ कर आ गए थे। आगा ने हथेली से घंटी का बटन दबा रखा था और लरजती काँपती आवाज में उपस्थितों को बता रहे थे कि वह किस तरह अपनी सधी-सधाई पुरानी कार में अपनी राह चले जा रहे थे कि एक ट्राम दनदनाती हुई 'राँग साइड' से आई और उनकी कार से टकरा गई। हमारे मुँह से कहीं निकल गया, 'मगर थी तो अपनी ही पटरी पर?' तिनतिनाते हुए बोले, 'जी नहीं, टेक ऑफ करके आई थी?' यह मौका उनसे उलझने का नहीं था, इसलिए कि वह जल्दी मचा रहे थे। उनके अनुसार रहा-सहा सम्मान कराची की मिट्टी में मिला जा रहा था और इसी कारण टक्कर होने के एक दो सेकेंड पहले ही वह कार से कूद कर गरीबखाने की तरफ रवाना हो गए थे ताकि चालान होते ही अपनी सफाई में बतौर तर्क नंबर दो घटना का फोटो मय फोटोग्राफर पेश कर सकें। तर्क नंबर एक यह था कि जिस पल कार ट्राम से टकराई, वह कार में मौजूद ही नहीं थे।

हम जिस हाल में थे, उसी तरह कैमरा लेकर आगा के साथ हो लिए और हाँफते-काँपते मौका-ए-वारदात पर पहुँचे। देखा कि आगा की कार का बंपर ट्राम के बंपर पर चढ़ा हुआ है। अगला हिस्सा हवा में लटका हुआ है और एक लौंडा पहिया घुमा-घुमा कर दूसरे से कह रहा है, 'अबे फजलू! इसके तो पहिए भी हैं।'

आगा का आग्रह था कि तस्वीरें ऐसे कोण से ली जाएँ जिससे साबित हो पहले गुस्सैल ट्राम ने कार के टक्कर मारी। इसके बाद कार टकराई। वह भी सिर्फ अपने बचाव के लिए। हमने एहतियातन अपराधिन के हर पोज की तीन-तीन तस्वीरें ले लीं, ताकि उसमें वर्णित कोण भी, अगर कहीं हो तो आ जाए। दुर्घटना को फिल्माते समय हम इस नतीजे पर पहुँचे कि इस पेशबंदी की बिल्कुल जरूरत न थी। इसलिए कि जिस कोण से चुटैल अपराधिन पर चढ़ी थी और जिस पैतरे से आगा ने ट्राम और कानून से टक्कर ली थी, उसे देखते हुए उनका चालान आत्महत्या की कोशिश में भले ही हो जाए, ट्राम को नुकसान पहुँचाने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। इधर हम क्लिक-क्लिक तस्वीर पर तस्वीर लिए जा रहे थे उधर सड़क पर तमाशा देखने वालों की भीड़ का हुजूम था कि बढ़ता जा रहा था। हमने कैमरे में दूसरी फिल्म डाली और कार का 'क्लोजअप' लेने की खातिर मिर्जा हमें सहारा देकर छत पर चढ़ाने लगे। इतने में एक गबरू पुलिस सार्जेंट भीड़ को चीरता हुआ आया। आकर हमें उतारा और नीचे उतार कर चालान कर दिया -सार्वजनिक स्थल पर मजमा लगा कर जानबूझ कर रुकावट पैदा करने के आरोप में और मिर्जा के अनुसार, वह तो बड़ी खैरियत हुई कि वो वहाँ मौजूद थे, वरना हमें तो कोई जमानत देने वाला न मिलता, खिंचे-खिंचे फिरते।

दूसरा निकाह और हम बेचारे

यह पहला अवसर नहीं था कि हमने अपनी तुच्छ योग्यता से कानून और इंसाफ के हाथों को मजबूत किया (क्षमा कीजिए, हम फिर अंग्रेजी मुहावरा इस्तेमाल कर गए, मगर क्या किया जाए, अंग्रेजों से पहले ऐसा बिजोग भी तो नहीं पड़ता था) अपने बेगानों ने कई बार यह सेवा निःशुल्क हम से ली है। तीन साल पहले का जिक्र है, वह कानून

अभी लागू नहीं हुआ था जिसे मिर्जा निकाह-नियोजन कानून कहते हैं मगर प्रेस में इसके समर्थन में लेख और भाषण धड़ाधड़ छप रहे थे जिनके गुजराती अनुवादों से घबराकर 'बिनौला-किंग' सेठ अब्दुल गफूर इब्राहीम हाजी मुहम्मद इस्माईल यूनुस छाबड़ी वाला एक लड़की से चोरी छुपे निकाह कर बैठे थे। हुलिया न पूछें तो बेहतर है। आँख वालों को इतना इशारा काफी होगा कि अगर हम उनका हुलिया ठीक-ठीक बताने लगे तो मिर्जा चीख उठेंगे, 'साहब! यह हास्य-व्यंग्य नहीं है।' इससे यह न समझा जाए कि हम उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। अनुभवी हैं। हमने कुछ असें से यह नियम बना लिया है कि किसी इन्सान को उपेक्षा से नहीं देखना चाहिए। इसलिए कि हमने देखा कि जिस किसी को हमने तुच्छ समझा, वह तुरंत उन्नति कर गया। हाँ, तो हम कह रहे थे कि जिस दिन से बीबियों की संख्या का कानून लागू होने वाला था, उसकी 'चाँद रात' को सेठ साहब बहुत घबराए हुए घर पधारे थे। उनके साथ घबराहट का कारण भी थी जो काले बुरके में थी और बहुत खूब थी।

रात के दस बज रहे थे और कैमरा, स्क्रीन और रोशनियाँ ठीक करते-करते ग्यारह बज गए। घंटे भर तक सेठ साहब हमारी CANDID FIGURE STUDIES को इस तरह घूरते रहे कि पहली बार हमें अपनी कला से शर्म आने लगी। बोले, 'अजुन बिगडैली बाइयों की फोटोग्राफी लेने में तो तुम एक नंबर उस्ताद हो। पन कोई भैन बेटी कपड़े पहन कर फोटो खिंचवाए तो क्या तुम्हारा कैमरा काम करिगा?' हमने कैमरे के सचचरित्र होने की जमानत दी और तिपाई रखी। तिपाई पर सेठ साहब को खड़ा किया और उनके बाईं तरफ दुल्हन को (सैंडिल उतरवा कर) खड़ा करके फोकस कर रहे थे कि वह तिपाई से छलाँग लगाकर हमारे पास आए और टूटी-फूटी उर्दू में जिसमें गुजराती से जियादा घबराहट की मिलावट थी, निवेदन किया कि सुरमई पर्दे पर आज की तारीख कोयले से लिख दी जाए और फोटो इस तरह लिया जाए कि तारीख साफ पढ़ी जा सके। हमने कहा, 'सेठ! उसकी क्या तुक है?' तिपाई पर वापस चढ़ के उन्होंने जोर से हमें आँख मारी और अपनी टोपी की तरफ ऐसी दीनता से इशारा किया कि हमें उनके साथ अपनी इज्जत आबरू भी मिट्टी में मिलती नजर आई। फिर सेठ साहब अपना बायाँ हाथ दुल्हन के कंधे पर मालिकाना अंदाज में रख कर खड़े हो गए। दायाँ हाथ अगर और लंबा होता तो खुदा की कसम उसे भी वहीं रख देते। फिलहाल उसमें जलता हुआ सिगरेट पकड़े थे। हमारा रेडी कहना था कि फिर छलाँग लगाकर हमसे लिपट गए। या अल्लाह! खैर! अब क्या लफड़ा है? मालूम हुआ, इस बार वह खुद अपनी आँख से यह देखना चाहते थे कि वह कैमरे में कैसे नजर आ रहे हैं। खुशामद-दरामद करके फिर तिपाई पर चढ़ाया और इससे पहले कि घड़ियाल रात के बारह बजा कर नई सुबह और निकाह पर रोक के कानून के लागू होने का ऐलान करता, हमने उनके निकाह के गुप्त रिश्ते का दस्तावेजी सुबूत कोडक फिल्म पर सुरक्षित कर लिया।

अस्ल कठिनाई यह थी कि तस्वीर खींचने और खिंचवाने के नियमों से बारे में जो निर्देश सेठ साहब गुजराती भाषा या इशारों से देते रहे, उनका उद्देश्य हमारी नाकारा समझ में यह आया कि दुल्हन सिर्फ उसी लम्हे नकाब उलटे, जब हम बटन दबाएँ और जब हम बटन दबाएँ तो चश्मा उतार दें। उनका बस चलता तो वह कैमरे का भी लेंस उतरवा कर तस्वीर खिंचवाते।

रात की जगार से तबीयत सारे दिन सुस्त रही इसलिए दफ्तर से दो घंटे पहले ही उठ गए। घर पहुँचे तो सेठ साहब और ब्याहता को बरामदे में टहलता हुआ पाया। गरदन झुकाए, हाथ पीछे को बाँधे, बेचैनी की हालत में टहले चले जा रहे थे। हमने कहा, 'सेठ अस्सलामुअलैकुम!' बोले, 'वालैकुम, पन फिल्म को गुस्ल कब देगा?' हमने कहा, 'अभी सेठ!' फिर उन्होंने इच्छा जाहिर की कि उनकी जीवन-संगिनी की तस्वीर को उनकी उपस्थिति में 'स्नान' कराया जाए। हमने जगह की तंगी का बहाना लिया जिसके जवाब में सेठ साहब ने हमें बिनौले की एक बोरी का

लालच दिया। जितनी देर फिल्म डेवलप होती रही, वह फ्लश की जंजीर से लटके, इस दोषी के क्रिया-कलाप की कड़ी निगरानी करते रहे।

हम फिक्सर में आखिरी डोब दे चुके तो उन्होंने पूछा, 'क्विलर आई है?' अर्ज किया, बिल्कुल साफ, लकड़ी की चिमटी से टपकती हुई फिल्म पकड़ कर हमने उन्हें भी देखने का मौका दिया। शार्क-स्कन का कोट ही नहीं, ब्रेस्ट पाकेट के बटुए का उभार भी साफ नजर आ रहा था। तारीख निगेटिव में उल्टी थी मगर साफ पढ़ी जा सकती थी। चेहरे पर भी उनके अनुसार, बड़ी रोशनाई थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी दुल्हन की अँगूठी के नग गिने और उन्हें पूरे पाकर ऐसे संतुष्ट हुए कि चुटकी बजा कर सिगरेट छंगुलिया में दबा के पीने लगे। बोले, 'मिश्टर, यह तो सोलह आने क्विलर है। आँख, नाक, जेब पॉकेट, एक-एक नग चुगती सँभाल लो। अपने बही-खाते के माफिक। अजुन अपनी ओमेगा वॉच की सुई भी बरोबर ठीक टैम देती पड़ी है। ग्यारह क्लाक और अपुन के हाथ में जो एक ठो सिगरेट जलता पड़ा है, वह भी साला एकदम लैट मारता है।' यह कह कर वह किसी गहरी सोच में डूब गए। फिर एक झटके से चेहरा उठाकर कहने लगे, 'बड़े साहब। उस सिगरेट पे जो साला K-2 लिखैला है उसकी जगह Players No.3 बना दो नी।'

दरबारे-अकबरी में पेशी

खैर! यहाँ तो समस्या सिगरेट पर ही टल गई, वरना हमारा अनुभव है कि सौ प्रतिशत पुरुष और निन्यानवे प्रतिशत महिलाएँ तस्वीर में अपने को पहचानने से साफ इनकार कर देते हैं। बाकी रहीं एक प्रतिशत, सो उन्हें कपड़ों की वजह से अपना चेहरा स्वीकार करना पड़ता है लेकिन अगर इत्तिफाक से कपड़े भी अपने न हों तो फिर शौकिया फोटोग्राफर को चाहिए कि वक्त और रुपया बर्बाद करने का कोई और काम तलाश करे जिसमें कम-से-कम मारपीट की संभावना तो न हो। इस कला में दखल न रखने वालों की आँखों को खोलने के लिए हम सिर्फ एक घटना सुनाते हैं। पिछले साल बगदादी जिमखाना में तंबोला से तबाह होने वालों की मदद के लिए पहली अप्रैल को अकबर महान खेला जाने वाला था और पब्लिसिटी कमेटी ने हमसे निवेदन किया था कि हम ड्रेस रिहर्सल की तस्वीरें खींचें ताकि अखबारों को दो दिन पहले उपलब्ध कराई जा सकें।

हम जरा देर से पहुँचे। चौथा सीन चल रहा था। अकबरे-आजम दरबार में विराजमान थे। उस्ताद तानसेन बैजो पर हजरत फिराक गोरखपुरी का तिगजला (एक ही जमीन में तीन संयुक्त गजलें) मालकौंस में गा रहे थे। जो हजरात इस राग या किसी तिगजले की लपेट में आ चुके हैं, कुछ वही अंदाजा लगा सकते हैं कि अगर यह दोनों इकट्ठा हो जाएँ तो इनकी संगत क्या कयामत ढाती है। अकबर-महान का पार्ट जिमखाने के प्रोपेगंडा सिक्रेट्री सिबगे (शेख सिबगतुल्लाह) कर रहे थे। सर पर टीन का नकली ताज चमक रहा था, जिसमें से अब तक अस्ली घी की लपटें आ रही थीं। शाही ताज पर शीशे के पेपरवेट का कोहेनूर हीरा जगमगा रहा था। हाथ में इसी धातु यानी अस्ली टीन की तलवार जिसे घमासान का रण पड़ते ही दोनों हाथों से पकड़ के वह कुदाल की तरह चलाने लगते। आगे चल कर हल्दी घाटी की लड़ाई में यह तलवार टूट गई तो खाली मियान से जौहर दिखाते रहे। अंततः यह भी जवाब दे गई कि राणा प्रताप का सर इससे भी सख्त निकला। फिर महाबली इसकी आखिरी पच्चर तमाशाइयों को दिखाते हुए हथियारखाने के दारोगा को समसामयिक गालियाँ देने लगे। आदत के मुताबिक गुस्से में आपे से बाहर हो गए लेकिन मुहावरे को हाथ से न जाने दिया। दूसरे सीन में शहजादा सलीम को आड़े हाथों लिया। सलीम अभी अनारकली पर अपना वक्त बरबाद कर रहा था। उसका दौरे-जहाँगीरी बल्कि नूरजहाँगीरी अभी शुरू नहीं हुआ था।

डॉट-डपट के दौरान जिल्ले-सुब्हानी ने अपने निजी हाथ से एक तमाचा भी मारा जिसकी आवाज आखिरी पंक्ति तक सुनी गई। तमाचा तो अनारकली के गाल पर भी मारा था मगर इसका जिक्र हमने आवश्यक रूप से नहीं किया, क्योंकि महाबली ने कुछ इस अंदाज से मारा कि पास से तो हमें यही लगा कि वह दो मिनट तक अनारकली का मेकअप से तमतमाया हुआ गाल सहलाते रहे - पाँचों उँगलियों पर गाल के निशान बन गए थे

अकबर : शेखू! अनारकली का सर तेरे कदमों पर है मगर उसकी नजर ताज पर है।

सलीम : मुहब्बत अंधी होती है आलमपनाह!

अकबर : मगर इसका यह मतलब नहीं कि औरत भी अंधी होती है।

सलीम : लेकिन अनारकली औरत नहीं लड़की है आलमपनाह।

अकबर : (आस्तीन और त्यौरी चढ़ाकर) ऐ तैमूरी खानदान की आखिरी निशानी। ऐ कपूत मगर (कलेजा पकड़ के) इकलौते बेटे। याद रख, मैं तेरा बाप भी हूँ और वालिद भी।

इस ड्रामाई रहस्योद्घाटन को नई नस्ल की जानकारी के लिए रिकार्ड करना चूँकि बहुत आवश्यक था इसलिए हम कैमरे में 'फ्लैशगन' फिट करके आगे बढ़े। यह अहसास हमें बहुत बाद में हुआ कि जितनी देर हम फोकस करते रहे, महाबली अपनी शाही जिम्मेदारी यानी डॉट-डपट छोड़-छाड़ साँस रोके खड़े रहे। वह जो एकदम खामोश हुए तो पिछली सीटों से तरह-तरह की आवाजें आने लगीं :

'अबे! डायलॉग भूल गया क्या?'

'तमाचा मार के बेहोश हो गया है!'

'महाबली! मुँह से बोलो!'

अगले सीन में फिल्मी टैक्नीक के मुताबिक एक 'फ्लैश-बैक' था। महाबली की जवानी थी और उन पर अभी पाउडर नहीं बुरका गया था। बागी-ए-आजम, हेमू बक्काल तमाशाइयों की तरफ मुँह करके सजदे में पड़ा था और हजरत जिल्ले-सुब्हानी तलवार सूँते भुट्टा सा उस का सर उड़ाने जा रहे थे। हम भी फोटो खींचने लपके लेकिन फुट लाइट्स से कोई पाँच गज दूर होंगे कि पीछे से आवाज आई - बैठ जाओ युसूफ कार्श! और इसके फौरन बाद एक अकृपालु हाथ ने बड़ी बेदर्दी से पीछे से कोट पकड़ के खींचा। पलट के देखा तो मिर्जा निकले। बोले, 'अरे साहब, ठीक से कत्ल तो कर लेने दो। वर्ना साला उठ के भाग जाएगा और फिर विद्रोह का बिगुल बजा देगा।'

दूसरे ऐक्ट में कोई उल्लेखनीय घटना, यानी हत्या नहीं हुई। पाँचवें दृश्य में शहजादा सलीम, अनारकली को इसी तरह हाले-दिल सुनाता रहा, जैसे इमला लिखवा रहा हो। तीसरे ऐक्ट में सिबगे, हमारा मतलब है, जिल्ले-सुब्हानी, शाही पेचवान की गर्जों लंबी रबर की नाल (जिस से दिन में जिमखाने के लान को पानी दिया गया था) हाथ में थामे अनारकली पर बरस रहे थे और हम दर्शकों की हूटिंग के डर से 'विंग' में दुबके हुए इस सीन को फिल्मा रहे थे कि सामने के 'विंग' से एक दुधमुँहा स्टेज पर घुटनियों चलता हुआ आया और गला फाड़-फाड़ के रोने लगा।

अंततः ममता इश्क और एक्टिंग पर भारी पड़ी और उस लाजवंती ने तख्ते-शाही की ओट में दर्शकों से पीठ करके उसका मुँह कुदरती डाइट से बंद किया। इधर महाबली खून के से घूँट पीते रहे। हमने बढ़कर परदा गिराया।

अंतिम ऐक्ट के अंतिम सीन में अकबर-महान का जनाजा बैंड-बाजे के साथ बड़े धूम-धड़क्के से निकला जिसे फिल्माने के बाद हम ग्रीन रूम में गए और सिबगे को मुबारक बाद दी कि इससे बेहतर मुर्दे का पार्ट हमारी नजर से आज तक नहीं गुजरा। उन्होंने बतौर शुक्रिया कोरे कफन से हाथ निकालकर हम से मिलाया किया। हमने कहा, 'सिबगे! और तो जो कुछ हुआ सो हुआ मगर अकबर कोहेनूर हीरा कब लगाता था?' कहने लगे, 'तभी तो हमने नकली कोहेनूर लगाया था।'

'डेवलपर' को बर्फ से 70 डिग्री ठंडा करके हमने रातों-रात फिल्म डेवलप की। दूसरी दिन वादे के अनुसार तस्वीरों के प्रूफ दिखाने जिमखाने पहुँचे। घड़ी हमने आज तक नहीं रखी। अंदाजन रात के ग्यारह बज रहे होंगे। इसलिए कि अभी तो डिनर की टेबिलें सजाई जा रही थीं और उनकी सजावट बनने वाले सदस्य 'रेनबो रूम' (बार) में ऊँचे-ऊँचे स्टूलों पर टँगे न जाने कब से हमारी राह देख रहे थे। जैसे ही मँबर हमारी सेहत के जाम की आखिरी बूँद पी चुके, हमने अपने चमड़े के बैग से 'रश प्रिंट' निकाल कर दिखाए - और साहब! वह तो खुदा ने बड़ा करम किया कि उनमें एक भी खड़े होने के काबिल न था। वरना हर सदस्य! क्या मर्द, क्या औरत, आज हमारे कत्ल का मुलजिम होता।

जिल्ले-सुबहानी ने कहा, हमने अनारकली को उसकी गुस्ताखियों पर डाँटते वक्त आँख नहीं मारी थी। शाहजादा सलीम अपना फोटो देख कर कहने लगे कि यह तो निगेटिव है। शेख अबुल फजल ने कहा, नूरजहाँ, शेर अफगान की विधवा, तस्वीर में ऊपर से नीचे तक अफगान मर्द नजर आती है। राजा मानसिंह कड़क के बोले कि हमारे मलमल के अंगरखे में टोडरमल की पसलियाँ कैसे नजर आ रही हैं? मुल्ला दो प्याजा ने पूछा, यह मेरे हाथ में दस उँगलियाँ क्यों लगा दीं आपने। हमने कहा, आप हिल जो गए थे। बोले, बिलकुल गलत। खुद आप का हाथ हिल रहा था बल्कि मैंने हाथ से आपको इशारा भी किया था कि कैमरा मजबूती से पकड़िए। अनारकली की माँ जो कि बड़े कत्ले-ठल्ले की औरत हैं, तुनक कर बोलीं, अल्लाह न करे, मेरी चाँद-सी बन्नो ऐसी हो (उनकी बन्नो के चेहरे को अगर चाँद की उपमा दी जा सकती तो यह वह चाँद था जिसमें बुढ़िया बैठी, चरखा कातती नजर आती है।) सारांश यह कि हर शख्स को शिकायत थी, हर शख्स खफा था। अकबर-महान के नौरत्न तो नौरत्न, महल के हीजड़े तक हमारे खून के प्यासे हो रहे थे।

पैदा होना पैसा कमाने के उपाय का

हमसे जिमखाना छूट गया। औरों से क्या शिकायत, सिबगे तक खिंचे-खिंचे रहने लगे। हमने सोचा, चलो तुम रूठे, हम छूटे। दुख है कि उनकी नाराजगी और हमारा सुख थोड़े दिन का साबित हुआ क्योंकि दस पंद्रह दिन बाद उन्होंने छठे तल पर स्थिति अपने फ्लैट पर 'सिबगे एडवरटाइजर्स (पाकिस्तान) प्राइवेट लिमिटेड' का चंचल-सा सायनबोर्ड लगा दिया जिसे अगर बीच सड़क पर लेट कर देखा जाता तो साफ नजर आता। दूसरा नेक काम उन्होंने यह किया कि हमें एक नए साबुन, 'स्कैंडल सोप' के विज्ञापन के लिए तस्वीर खींचने पर नियुक्त किया। अजब इत्तिफाक है कि हम खुद कुछ अर्से से बड़ी तीव्रता से महसूस कर रहे थे कि हमारे यहाँ औरत, इबादत और शराब को अब तक क्लोरोफार्म की जगह इस्तेमाल किया जाता है, यानी दर्द और तकलीफ का अहसास मिटाने के लिए न कि सुरूर और खुशी के लिए। इसी अहसास को सुन्न कर देने वाली पिनक की तलाश में थके हारे ललित-

कलाओं तक पहुँचते हैं और यह जाहिर-सी बात है कि ऐसी अय्याशी को पेशा नहीं बनाया जा सकता। इसलिए पहली ही बोली पर हमने अपने कला-धन से पीछा छोड़ने का फैसला कर लिया। फिर पारिश्रमिक भी ठीक-ठाक था। यानी ढाई हजार रुपए जिसमें तीन रुपए नकद उन्होंने हमें उसी समय अदा कर दिए और इसी रकम से हमने गेवर्ट की 27 डिग्री की सुस्त रफ्तार फिल्म खरीदी जो त्वचा के निखार और नमी को अपने अंदर धीरे-धीरे समो लेती है। 'चेहरा' उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी स्कैंडल सोप बनाने वालों के सर थी। तस्वीर की पहली और आखिरी शर्त यह थी कि 'सेक्सी हो'। इस सु-उद्देश्य के लिए जिन महिला की सेवाएँ पेश की गईं वह बुर्के में बहुत सुंदर मालूम होती थीं। बुर्का उतरने के बाद खुला कि -

खूब था पर्दा, निहायत मसलहत की बात थी

सेक्स-अपील तो एक तरफ रही, इस दुखिया के तो मुँह में मक्खन भी नहीं पिघल सकता था। अलबत्ता दूसरी मॉडल का 'मितव्ययी लिबास' अपने को छुपाने में सकारण असमर्थ था। हमने चंद 'रंगीन शाट' तीखे-तीखे कोणों से लिए और तीन-चार दिन बाद मिर्जा को प्रोजेक्टर से TRANSPARENCIES दिखाई। कोडक के रंग दहक रहे थे। विद्रोही रेखाएँ पुकार-पुकार कर शरीर की उद्घोषणा कर रही थीं। हमने इस पहलू पर ध्यान दिलाया तो बोले, 'यह शरीर की उद्घोषणा है या कपड़े के उद्योग के खिलाफ युद्ध की घोषणा?'

तीसरी 'सिटिंग' से दस मिनट पहले मिर्जा वादे के अनुसार हमारी मदद को आ गए। सोचा था कुछ नहीं तो दुसराथ रहेगी। फिर मिर्जा का अनुभव उन सब गलतियों के कारण, जो वह करते रहे हैं, हम से कहीं जियादा विस्तृत और रंगारंग है, लेकिन उन्होंने तो आते ही आफत मचा दी। अस्ल में वह अपने नए रोल (हमारे कला-परामर्शदाता) में फूले नहीं समा रहे थे। अब समझ में आया कि नया नौकर दौड़ के हिरन के सींग क्यों उखाड़ता है और अगर हिरन भी नया हो तो - असदुल्लाह खाँ कयामत है

वैसे भी वह मेकअप वगैरह के बारे में कुछ दुर्भावनाएँ रखते हैं जिन्हें वो उस वक्त मॉडल के चेहरे पर थोपना चाहते थे मसलन काली औरतों के बारे में उनका विचार है कि उन्हें सफेद सुर्मा लगाना चाहिए। अधेड़ उम्र के मर्द के दाँत, बहुत उजले नहीं होने चाहिए वर्ना लोग समझेंगे नकली हैं वगैरह-वगैरह। बोले, 'लिपस्टिक पर वैस्लीन लगवाओ। इससे हॉट VOLUP TUOUS (मादक) लगने लगेंगे। आजकल मर्द उभरे-उभरे गुर्दे जैसे हॉठ पर मरते हैं। और हाँ, यह फटीचर चश्मा उतार के तस्वीर लो।' हमने झगड़ा मिटाने को चश्मा उतार दिया। बोले, 'साहब! अपना नहीं, उसका।' बाद में बोले, 'फोटो के लिए नई और चमकीली साड़ी मुनासिब नहीं है। खैर, मगर कम-से-कम सैंडल तो उतरवा दो। पुराना-पुराना लगता है।' हमने कहा, तस्वीर चेहरे की ही जा रही है, न कि पैरों की।' बोले, 'अपनी टाँग न अड़ाओ। जैसे उस्ताद कहता है वैसे ही करो।' हमने बेगम का शैंपेन के रंग का नया सैंडल ला दिया और यह अजीब बात है कि उसे पहन कर उसके 'एक्सप्रेसन' में एक खास दबदबा आ गया। बोले, 'साहब! यह तो जूता है अगर किसी की बनियान में छेद हो तो उसका असर भी चेहरे के एक्सप्रेसन पर पड़ता है।' यह नुक्ता बयान करके वह हमारे चेहरे की तरफ देखने लगे।

आँखें मेरी बाकी उनका

ऐड़ी से चोटी तक सौंदर्य सुधार करने के बाद उसे सामने खड़ा किया और वह प्यारी-प्यारी नजरों से कैमरे को देखने लगी। मिर्जा फिर बीन बजाने लगे, 'साहब! यह फ्रंट पोज, यह दो कानों बीच एक नाक वाला पोज सिर्फ

पासपोर्ट में चलता है। आपने यह नहीं देखा कि इसकी गरदन लंबी है और नाक का कट यूनानी, चेहरा साफ कहे देता है कि मैं सिर्फ प्रोफाइल के लिए बनाया गया हूँ।' हमने कहा, 'अच्छा, बाबा, प्रोफाइल ही सही।'

इस तकनीकी समझौते के बाद हमने तुरत-फुरत कैमरे में 'क्लोज अप लेंस' फिट किया। सुरमई पर्दे को दो कदम पीछे खिसकाया। सामने एक हरा काँटेदार कैक्टस रखा और उस पर पाँच सौ वाट की स्पॉट लाइट डाली। उसकी ओट में गाल का फूल। हलका-सा आउट ऑफ फोकस ताकि रेखाएँ और मुलायम हो जाएँ। वह दसवीं बार तनकर खड़ी हुई। सीना आसमान-सा तना हुआ। निचला होंठ सोफिया लारेन-सा आगे को निकाले। आँखों में 'इधर देखो, मिरी आँखों में क्या है?' वाली कैफियत लिए और मीठी-मीठी रोशनी में बल खाते हुए नख-शिख फिर गीत गाने लगे। रंग फिर कूकने लगे। आखिरी बार हमने छेद से और मिर्जा ने कपड़ों से पार होती हुई नजर से देखा। मुस्कुराती हुई तस्वीर लेने की गरज से हमने मॉडल को आखिरी व्यवसायिक निर्देश दिया कि जब हम बटन दबाने लगे तो तुम हौले-हौले कहती रहना, चीज, चीज, चीज, चीज।

यह सुनना था कि मिर्जा ने हमारा हाथ पकड़ लिया और इसी तरह बरामदे में ले गए। बोले, 'कितने फाकों में सीखी है यह ट्रिक? क्या रेड मारी है मुस्कुराहट की। साहब! हर चेहरा हँसने के लिए नहीं बनाया गया है। खासतौर से पूरब वालों का चेहरा। कम-से-कम यह चेहरा।' हमने कहा, 'जनाब! औरत के चेहरे पर पूरब-पश्चिम बताने वाला कुतुबनमा थोड़े ही लगा होता है। यह तो लड़की है। बुद्ध तक के होंठ मुस्कुराहट से झुके हुए हैं। लंका में नारियल और पाम के पेड़ों से घिरी हुई एक नीली झील है, जिसके बारे में यह परंपरा चली आती है कि इसके पानी में एक बार गौतमबुद्ध अपना चेहरा देखकर यँ ही मुस्करा दिए थे। अब ठीक उसी जगह एक खूबसूरत मंदिर है जो उनकी मुस्कुराहट की याद में बनाया गया है।' मिर्जा ने वहीं बात पकड़ ली। बोले, 'साहब! गौतम बुद्ध की मुस्कुराहट और है, मोनालिजा की और। बुद्ध अपने-आप पर मुस्कराए थे, मोनालिजा दूसरों पर मुस्कुराती है। शायद अपने शौहर के सीधेपन पर। बुद्ध की मूर्तियाँ देखो, मुस्कुराते वक्त उनकी आँखें झुकी हुई हैं, मोनालिजा की खुली हुई। मोनालिजा होंठों से मुस्कुराती है, उसका चेहरा नहीं हँसता। उसकी आँखें नहीं हँस सकतीं। इसके विपरीत अजंता की औरत देखो, उसके होठ बंद हैं मगर नैन-नकश खुल-खेलते हैं। वह अपने समूचे बदन से मुस्कुराना जानती है। होंठों की कली जरा नहीं खिलती, फिर भी उसका भरा-भरा बदन, उसका अंग-अंग मुस्कुराता है।' हमने कहा, 'मिर्जा! इसमें अजंता एलोरा की बपौती नहीं, बदन तो मर्लिन मुनरो का भी खिलखिलाता था।' बोले, 'कौन मसखरा कहता है? वह गरीब उम्र-भर हँसी और हँसना न आया। साहब! हँसना न आया। इसलिए कि वह जनम-जनम की निंदासी थी। उसका रुवाँ-रुवाँ बुलावे देता रहा, उसका सारा वुजूद, एक-एक पोर, एक-एक स्वेद ग्रंथि -

इंतिजारे-सेद में इक दीदा-ए-बेख्वाब था

वह अपने छतनार बदन, अपने सारे बदन से आँख मारती थी। मगर हँसी? उसकी हँसी एक मदभरी सिसकी से कभी आगे न बढ़ सकी। अच्छा आओ, अब मैं तुम्हें बताऊँ कि हँसने वालियाँ कैसे हँसा करती हैं -

जातति थी, इक नार अकेली, बीच बजार भयो गजराए

आप हँसी, कुछ नैन हँसे, कुछ नैनन बीच हँसो कजराए

हार के बीच हमैल हँसी, बाजुबंदन बीच हँसो गजराए

भावेँ मरोर के ऐसी हँसी जस चंद को दाब चलो बदराए

मिर्जा ब्रज-भाषा के इस सवैये का अंग्रेजी अनुवाद करने लगे और हम कान लटकाए सुनते रहे लेकिन अभी तीसरी पंक्ति की हत्या नहीं कर पाए थे कि सिबगे के सब्र का पैमाना छलक गया क्योंकि मॉडल सौ रुपए फी घंटा के हिसाब से आई थी और डेढ़ सौ रुपए गुजर जाने के बावजूद अभी तक पहली क्लिक की नौबत नहीं आई थी।

तस्वीरें कैसी आईं? तीन कम ढाई हजार रुपए वसूल हुए या नहीं? विज्ञापन कहाँ छपा? लड़की का फोन नंबर क्या है? स्कैंडल सोप फैक्ट्री कब नीलाम हुई? इन तमाम प्रश्नों का उत्तर हम बहुत जल्द लेख के माध्यम से देंगे। फिलहाल पाठकों को यह मालूम करके प्रसन्नता होगी कि मिर्जा के जिस पाले-पोसे कैक्टस को हमने दमकते हुए गाल के आगे रखा था, उसे फरवरी में फूलों की प्रदर्शनी में पहला पुरस्कार मिला।

(जुलाई - 1964 ई.)

>>पीछे>>



[शीर्ष पर जाएँ](#)

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

पुस्तक विक्रेता व प्रकाशक

यह उन उम्मीद भरे दिनों की बात है जब उन्हें किताबों की दुकान खोले और डेल कारनेगी पढ़े दो तीन महीने हुए होंगे और उनके होंठों पर हर समय वह धुली-मँड़ी मुस्कराहट खेलती रहती थी जो आजकल सिर्फ टूथपेस्ट के विज्ञापनों में दिखाई पड़ती है। उस जमाने में उनकी बातों में वह उड़कर लगने वाला जोश और तूफान था, जो आम तौर पर अंजाम से बेखबर सट्टेबाजों और नए मुस्लिमों में होना बताया जाता है।

दुकान क्या थी किसी बिगड़े हुए रईस की लाइब्रेरी थी। मालूम होता था कि उन्होंने चुन-चुन कर वही किताबें दुकान में रखी हैं जो खुद उनको पसंद थीं और जिनके बारे में वो हर तरह से सुनिश्चित हो गए थे कि बाजार में उनकी न कोई माँग है न खपत। हमारे दोस्त मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग ने दुकान में कदम रखते ही अपनी तमाम नापसंदीदा किताबें इतने सलीके से इकट्ठा देखीं तो एक बार अपने पुराने चश्मे पर भरोसा नहीं हुआ और जब भरोसा हो गया तो उल्टा प्यार आने लगा। अपने विशिष्ट खटमिद्वे लहजे में बोले, 'यार! अगर आम पसंद की भी दो चार किताबें रख लेते तो ग्राहक दुकान से इस तरह न जाते जैसे सिकंदर दुनिया से गया था - दोनों हाथ खाली।'

कारोबारी मुस्कराहट के साथ बोले, 'मैं केवल स्तरीय किताबें बेचता हूँ।'

पूछा, 'स्तरीय की क्या पहचान?'

बोले, 'मेरे एक निकट के पड़ोसी हैं, प्रोफेसर काजी अब्दुल कुदूस, चौबीस घंटे किताबों में जुटे रहते हैं। इसलिए मैंने किया यह कि दुकान खोलने से पहले उनसे उनकी पसंदीदा किताबों की संपूर्ण सूची बनवा ली। फिर उन किताबों को छोड़ कर उर्दू की शेष सारी किताबें खरीद कर दुकान में सजा दीं। अब इससे अच्छा चयन कोई करके दिखा दे।'

फिर एकाएकी व्यावसायिक लहजा बनाकर बहुवचन में हुंकारे, 'हमारी किताबें उर्दू साहित्य का गौरव हैं।'

'और हम यह बहुत सस्ती बेचते हैं।' मिर्जा ने उसी शैली में वाक्य पूरा किया।

मुसीबत यह थी कि हर लेखक के बारे में उनकी अपनी राय थी। बेलाग और अटल, जिसका प्रकटन बल्कि जोरदार उद्घोषणा वह मजहबी फर्ज के बराबर समझते थे। चुनांचे अनेकों बार ऐसा हुआ कि उन्होंने ग्राहक को किताब खरीदने से जबरदस्ती रोके रखा कि इससे उसकी साहित्यिक अभिरुचि के और खराब हो जाने का अंदेशा था। सच तो यह है कि वह कुतुबफरोश (पुस्तक विक्रेता) कम और कुतुबनुमा (पुस्तक की दिशा बताने वाले) अधिक थे। कभी कोई खरीदार हल्की-फुल्की किताब माँग बैठता तो बड़े प्यार से जवाब देते, 'यहाँ से दो गलियाँ छोड़ कर सीधे हाथ को मुड़ जाइए, परले नुक्कड़ पर चूड़ियों की दुकान के पास एक लेटर बक्स नजर आएगा। उसके ठीक सामने जो ऊँची-सी दुकान है, बच्चों की किताबें वहीं मिलती हैं।' एक बार की घटना अब तक याद है कि एक साहब मोमिन का संपूर्ण काव्य पूछते हुए आए और चंद्र मिनट बाद स्वर्गीय मौलवी मुहम्मद इस्माईल मेरठी की नज्मों का संकलन हाथ में लिए उनकी दुकान से निकले।

एक दिन मैंने पूछा, 'अख्तर शीरानी' (रोमांटिक शायर) की किताबें क्यों नहीं रखते?' मुस्कुराए। फरमाया, 'वह नाबालिग शायर है।' मैं समझा शायद (MINOR POET) का वह यही मतलब समझते हैं। मेरी हैरानी देखकर खुद ही स्पष्टीकरण दिया कि वह मिलन की इस ढंग से फरमायश करता है गोया कोई बच्चा टॉफी माँग रहा है। इस पर मैंने अपने एक प्रिय शायर का नाम लेकर कहा कि बेचारे होश खलीजाबादी (जोश मलीहाबादी को रगड़ रहे हैं) ने क्या खता की है? उनके संकलन भी नजर नहीं आते। फरमाया कि उस जालिम के मिलन के आग्रह में वह तेवर हैं गोया कोई काबुली पठान डॉट-डॉट कर डूबी हुई रकम वसूल कर रहा है। मैंने कहा, 'वह जुबान के बादशाह हैं।' बोले, 'ठीक कहते हो जुबान उनके घर की लौंडी है और वह उसके साथ वैसा ही सुलूक करते हैं।' तंग आकर मैंने कहा, 'अच्छा यूँ ही सही, मगर फानी बदायूनी क्यों गायब हैं?' फरमाया, 'हुश! वह निरे शोक के चितेरे हैं।' मैंने कहा, 'ठीक! मगर मेंहदी-अल-अफादी तो भरपूर निबंध लेखक हैं।' बोले, 'छोड़ो भी, फानी 'शोक के चितेरे' हैं तो मेंहदी औरतों के चितेरे हैं। वह निबंध नहीं, नारी-बंध लिखते हैं।' अंत में मैंने एक जाने-पहचाने आलोचक का नाम लिया मगर पता चला कि उन्होंने अपने कानों से इन योग्य प्रोफेसर के पिताश्री को लखनऊ को 'नखलऊ' और मिजाज शरीफ को मिजाज शरीफ कहते हुए सुना था। चुनांचे इस पैत्रिक-अयोग्यता के आधार पर उनके आलेख दुकान में कभी सम्मान न पा सके। यही नहीं स्वयं प्रोफेसर, जिनके गुणों का बखान हो रहा है, ने एक सभा में उनके सामने 'गालिब' का एक शेर गलत पढ़ा और दोहरे हो हो कर 'दाद' वसूल की सो अलग। मैंने कहा, 'इस से क्या अंतर पड़ता है?' बोले, 'अंतर की एक ही रही। मीरन साहब (गालिब के शिष्य) का किस्सा भूल गए? किसी ने उनके सामने गालिब का शेर गलत पढ़ दिया। त्योरियाँ चढ़ा कर बोले, मियाँ यह कोई कुरआन-हदीस है, जैसे चाहा पढ़ दिया?'

आपने देख लिया कि बहुत सी किताबें वह इसलिए नहीं रखते थे कि उनको सख्त नापसंद थीं और उनके लेखकों से वह किसी न किसी विषय पर निजी असहमति रखते थे, लेकिन कुछ एक लेखक जो इस दंड और गाज के अंतर्गत आने वाले घेरे से बाहर थे, उनकी किताबें दुकान में रखते जरूर थे मगर कोशिश यही होती कि किसी तरह बिक न पाएँ, क्योंकि वह उन्हें बेहद पसंद थीं और उन्हें सुँघवा-सुँघवा कर रखने में एक अजीब आध्यात्मिक आनंद महसूस करते थे। पसंद और नापसंद की इस अव्यापारिक खींच-तान का नतीजा यह निकला कि किताबें अपनी जगह से नहीं खिसकीं।

सुनी-सुनाई नहीं कहता। मैंने अपनी आँखों से देखा कि दीवाने-गालिब (सचित्र) दुकान में महीनों पड़ा रहा केवल इस कारण कि उनका विचार था कि दुकान उसके बिना सूनी-सूनी मालूम होगी। मिर्जा कहा करते थे कि उनकी

मिसाल उस बदनसीब कसाई की-सी है, जिसे बकरों से प्यार हो जाए।

किताबों से प्यार का यह हाल था कि ठीक बिक्री और बोहनी के समय में भी अध्ययन में कमर-कमर डूबे रहते। यह कमर-कमर का प्रतिबंध इस लिए लगाना पड़ा कि हमने उन्हें आज तक कोई किताब पूरी पढ़ते नहीं देखा। मिर्जा इस बात को यूँ कहते हैं कि बहुत कम किताबें ऐसी हैं जो अपने को उनसे पढ़वा सकी हैं। यही नहीं, अपने अध्ययन की तकनीक के अनुसार रोमेंटिक और जासूसी नाविलों को हमेशा उल्टा यानी आखिर से पढ़ते ताकि हीरोइन का अंत और कातिल का नाम फौरन मालूम हो जाए (उनका कथन है कि स्तरीय उपन्यास वही है जो इस तरह पढ़ने पर भी यानी अंत से आदि तक रोचक हो)। हर कहीं से दो-तीन पन्ने उलट-पलट कर पूरी किताब के बारे में बिना झिझक राय बना लेना और फिर उसे मनवा लेना उनके बाएँ हाथ का खेल था। कभी-कभी तो लिखाई-छपाई देखकर ही सारी किताब की विषय-वस्तु भाँप 'पगले यह तो खुद एक किताब है', उन्होंने तर्जनी से उन शिक्षार्थियों की तरफ इशारा किया जो उसके पीछे-पीछे विषय-सूची का अध्ययन करते चले आ रहे थे।

देखा गया है कि वही पुस्तक विक्रेता कामयाब होते हैं जो किताब के नाम और मूल्य के अलावा और कुछ जानने की कोशिश नहीं करते। क्योंकि उनके साधारण अज्ञान में जितना फैलाव होगा, जितनी गहराई और रंग-बिरंगापन होगा, उतने ही आत्मविश्वास और भोले भटकाव के साथ वह बुरी किताबों को अच्छा करके बेच सकेंगे। उसके विपरीत किताबें पढ़ते (अधूरी ही सही) हमारे हीरो को इस्लामी नाविलों के जोशीले संवाद रट गए थे और बगदादी जिमखाने में कभी देशी व्हिस्की की अधिकता से श्रीमान पर जुनून में बोलने का मूड उभर आता तो इस्लाम के दुश्मनों पर घूँसे तान-तान कर तड़ाक-पड़ाक ऐसे डायलाग बोलते जिनसे शहीद हो जाने का शौक ऐसे टपका पड़ता था कि बैरों तक का मुसलमानपन ताजा हो जाता।

लगातार पन्ने उलटते रहने के कारण नई नवेली किताबें अपनी कुँवारी, करारी महक और जिल्द का कसाव खो चुकी थीं। अधिकतर पन्नों के कोने कुत्ते के कानों की तरह मुड़ गए थे और कई पसंदीदा पन्नों की हालत यह थी कि -

जाना जाता है कि इस राह से लश्कर गुजरा

और लश्कर भी वह जो खून की जगह पीक के छींटे उड़ाता हुआ गुजर जाए। एक बार उनको भरी दुकान में अपने ही आकार के एक इस्लामी नाविल का इत्र निकालते देखा तो मिर्जा ने टोका, 'लोग अगर किसी हलवाई को मिठाई चखते देख लें तो उससे मिठाई खरीदना छोड़ देते हैं और एक तुम हो कि हर आए गए के सामने किताब चाटते रहते हो।' मुझे याद है कि उन्होंने उर्दू की एक ताजा छपी हुई किताब का कागज और रोशनाई सूँघ कर न सिर्फ उसे पढ़ने बल्कि दुकान में रखने से भी इनकार कर दिया। उनके दुश्मनों ने उड़ा रखी थी कि वह किताब का टाइटिल पेज पढ़ते-पढ़ते ऊँघने लगते हैं और इस ईश्वरीय ज्ञान प्राप्ति की स्थिति में जो कुछ बुद्धि में आता है उसको लेखक से संबद्ध करके हमेशा-हमेशा के लिए बेजार हो जाते हैं।

और लेखक बेचारा किस गिनती में है। अपने साहित्यिक विचार या अंदाजे का जिक्र करते हुए एक दिन यहाँ तक डींग मारने लगे कि मैं आदमी की चाल से बता सकता हूँ कि वह किस किस्म की किताबें पढ़ता रहा है। इत्तफाक से उस वक्त एक भरे-भरे पिछाए वाली लड़की दुकान के सामने से गुजरी। चीनी कमीज उसके बदन पर एक सटीक फब्टी की तरह कसी हुई थी। सिर पर एक रिबन सलीके से ओढ़े हुए जिसे मैं ही क्या, कोई भी शरीफ

आदमी दुपट्टा नहीं कह सकता - इसलिए कि दुपट्टा कभी इतना भला मालूम नहीं होता। तंग मोरी और उससे भी तंग घेर की शलवार की चाल अगरचे कड़ी कमान का तीर न थी, लेकिन कहीं अधिक जानलेवा। कमान कितनी भी उतरी हुई क्यों न हो, तीर हर हाल में सीधा ही आएगा। ठुमक-ठुमक नहीं, लेकिन वह संसार भर को कत्ल कर देने वाली, कदम आगे बढ़ाने से पहले एक बार जिस्म के बीच के हिस्से को घंटे के पेंडुलम की तरह दाएँ-बाएँ यूँ हिलाती कि बस छुरी-सी चल जाती। नतीजा यह कि जिस्म के संदर्भित भाग ने जितनी यात्रा उत्तर से दक्खिन की उतना ही पूरब से पश्चिम तक। संक्षेप में यूँ समझिए कि हर पग पर एक आदमकद सलीब (?) बनाती हुई आगे बढ़ रही थी।

'अच्छा बताओ, इसकी चौमुखी चाल से क्या टपकता है?' मैंने पूछा।

'इसकी चाल से तो बस इसका चाल-चलन टपके है' मुझे आँख मार कर लहकते हुए बोले।

'फिर वही बात। चाल से बताओ, कैसी किताबें पढ़ती है?' मैंने भी पीछा नहीं छोड़ा। फिर क्या था पहले ही भरे बैठे थे। फट पड़े, 'किताब बेचना एक शास्त्र है, बरखुरदार हमारे यहाँ अर्धनिरक्षर किताबें लिख सकते हैं, मगर बेचने के लिए चौकन्ना होना जरूरी है। बिल्कुल इसी तरह जैसे एक अंधा सुर्मा बना सकता है मगर बीच बाजार में खड़े हो कर बेच नहीं सकता, मियाँ। तुम क्या जानो, कैसे निपट मूर्खों से पाला पड़ता है - (अपनी प्रिय पुस्तक की ओर इशारा करते हुए) जी मैं आता है, दीवाने-गालिब (मौलाना इम्तियाज अली अर्शी के प्राक्कथन सहित) उनके सिर पर दे मारूँ। तुम्हें विश्वास नहीं होगा, दो सप्ताह होने को आए। एक दीन-हीन सूरत क्लर्क यहाँ आया और मुझे उस कोने में ले जाकर कुछ शरमाते, कुछ लजाते हुए कहने लगा किशन चंद्र एम.ए. की वो किताब चाहिए जिस में 'तेरी माँ के दूध में हुक्म का इक्का' वाली गाली है। खैर उसे जाने दो कि उस बेचारे को देख कर वाकई महसूस होता था कि यह गाली सामने रखकर ही उस की सूरत बनाई गई है मगर उन साहब को क्या कहोगे जो नए नए उर्दू के लेक्चरर नियुक्त हुए हैं। मेरे जानकार हैं। इस महीने की पहली तारीख को कालेज से पहली तनख्वाह वसूल करके सीधे यहाँ आए और फूली हुई साँसों के साथ लगे पूछने, साहब! आपके हाँ मंटो की वह किताब भी है जिसमें, 'धड़नतख्ता' के मानी हों? और अभी परसों का जिक्र है, एक आदरणीया पधारी। उम्र यही अठारह-उन्नीस की, निकलता हुआ पला-पुसा बदन। अपनी गुड़िया की चोली पहने हुए थीं। दोनों हथेलियों की रेहल बनाकर उस पर अपना किताबी चेहरा रखा और लगीं किताबों को टुकर-टुकर देखने। इसी जगह जहाँ तुम खड़े हो? फिर पूछा, 'कोई नाँविल है?' मैंने रातों की नींद हराम करने वाला एक नाँविल पेश किया। रेहल पर से बोलीं, 'यह नहीं, कोई ऐसा दिलचस्प नाँविल दीजिए कि रात को पढ़ते ही नींद आ जाए', मैंने एक ऐसा ही बेहोश कर देने वाला नाँविल निकाल कर दिया मगर वह भी नहीं जँचा। दरअस्तल उन्हें किसी गहरे हरे कवर वाली किताब की तलाश थी जो उनके बैडरूम के लाल पर्दों से 'मैच' हो जाए। इस कठिन स्तर पर सिर्फ एक किताब पूरी उतरी - वह थी 'उस्ताद मोटर झाइवरी' (पद्य) जिसको दरअस्तल उर्दू जुबान में आत्महत्या की सरल विधियों का पहला कवितामय हिदायतनामा कहना चाहिए।

मैंने उस नवयौवना की हिमायत की, 'हमारे यहाँ उर्दू में ऐसी किताबें बहुत कम हैं जो इस्ट-कवर के बगैर भी अच्छी लगें। इस्ट-कवर तो ऐसा ही है जैसे औरत के लिए कपड़े।'

'मगर हॉलीवुड में आजकल अधिकतर ऐक्ट्रेसें ऐसी हैं जो अगर कपड़े पहन लें तो जरा भी अच्छी न लगें।' मिर्जा ने बात को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया।

लेकिन नया-नया शौक था और अभी यह नौबत नहीं आई थी कि ऐसी घटनाओं से इनकी अभिरुचि मैली हो जाती। डेल कारनेगी की सलाह के अनुसार वह हर समय मुस्कराते रहते और हमने सोते में भी उनकी बाँछें सद्भावना के तौर पर खिली हुई ही देखीं। उस काल में मिर्जा के कथनानुसार, वह छोटा देखते न बड़ा हर व्यक्ति के साथ 'डेल कारनेगी' किया करते थे। हद यह कि डाकिया अगर बैरंग चिट्ठी भी लाता तो उसे इनाम-इकराम देकर भेजते। ग्राहकों को तो निजी मेहमान समझ कर बिछ-बिछ जाते और अक्सर काव्य-पूँजी के साथ और कभी इसके बिना ही खुद भी बिक जाते। सच है सद्व्यवहार कभी बेकार नहीं जाता। चुनांचे चंद ही दिनों में दुकान चल निकली, मगर दुकानदारी ठप्प हो गई, यह विरोधाभास इस तरह पैदा हुआ कि दुकान पर अब उनके कद्रदानों की रेल-पेल रहने लगी जो अस्ल में उनसे कोकाकोला पीने या फोन करने आते और मुँहदिखाई में एक आध किताब माँग कर लेने के बाद ही टलते। जिस जिस ग्राहक से विशेष व्यवहार करते, उसकी अगवानी को बेतहाशा दौड़ते हुए सड़क के उस पार जाते। फिर उसे अपने ऊँचे से स्टूल पर बिठा कर फौरन दूसरे ग्राहक को चालीस कदम तक छोड़ने चले जाते। इन दोनों परिपाटियों की शिष्ट अदायगी के दौरान दुकान किसी एक ग्राहक या गिरोह के सामुदायिक तौर पर हवाले रहती, नतीजा? किताबों की कतारों में जगह-जगह खांचे पड़ गए, जैसे दाँत टूट गए हों। उनके अपने बयान के मुताबिक एक नए ग्राहक को, जिसने अभी-अभी गुबारे-खातिर (मौलाना आजाद की किताब, जिन्हें चाय बना कर पीने का बेहद शौक था) की एक प्रति उधार खरीदी थी, पास वाले रेस्टोरेंट में लेखक की मनभाती चीनी चाय पिलाने ले गए। कसम खा कर कहते थे कि मुश्किल से एक घंटा वहाँ बैठा हूँगा, मगर वापस आकर देखा तो नूरुल्लुगात (शब्दकोष) के चौथे खंड की जगह खाली थी। स्पष्ट कि किसी बेईमान ने अवसर पाते ही हाथ साफ कर दिया। उन्हें उस की जगह फसाना-ए-आजाद का चौथा खंड रखना पड़ा और आखिर को यही सैट चाकसू कालेज लाइब्रेरी को वी.पी. के द्वारा सप्लाई किया।

चोरियाँ बढ़ती देख कर एक बुजुर्गवार ने, जो उद्घाटन के दिन से दुकान पर उठते-बैठते थे बल्कि यह कहना चाहिए कि सिर्फ बैठते थे; इसलिए कि हमने कभी उनको उठते नहीं देखा, माल की अनुचित निकासी रोकने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया कि एक शिक्षित लेकिन ईमानदार मैनेजर रख लिया जाए। हालाँकि उनका इशारा अपनी ही ओर था लेकिन एक दूसरे साहब ने जो साहिबे-दीवान थे और रोजाना अपने दीवान की बिक्री का हाल पूछने आते और उर्दू के भविष्य से मायूस होकर लौटते थे, खुद को इस पद के लिए पेश ही नहीं किया बल्कि शाम को अपने घर जाने से इनकार भी कर दिया, यही साहब दूसरे दिन से खजांची जी कहलाए जाने लगे। सूरत से सजा भुगतते हुए मालूम होते थे और अगर वाकई सजा भुगतते हुए नहीं थे तो यह पुलिस की ही भलमनसाहत थी। बहरहाल इनकी तरफ से आपराधिक बेईमानी का कोई संशय नहीं था क्योंकि दुकान की सारी बिक्री मुद्दतों से उधार पर हो रही थी। यूँ तो दुकान में पहले ही दिन से 'आज नकद कल उधार' की एक छोड़ तीन-तीन तख्तियाँ लगी थीं, मगर हम देखते चले आए थे कि वह कल का काम आज ही कर डालने के कायल हैं। फिर यह कि कर्ज पर किताबें बेचने पर ही रहते तो सब्र आ जाता लेकिन आखिर में यहाँ तक सुनने में आया कि कई ग्राहक उनसे नकद रुपए कर्ज लेकर पास वाली दुकान से किताबें खरीदने लगे हैं।

में अवसर की खोज में था, इसलिए एक दिन अकेला पाकर उन्हें समझाया कि खुदा के बंदे, कर्ज ही देना है तो बड़ी रकम कर्ज दो ताकि लेने वाले को याद रहे और तुम्हें तकाजा करने में शर्म न आए। यह छोटे-छोटे कर्ज देकर ईश्वर के बनाए लोगों के ईमान और अपनी शालीनता की परीक्षा काहे को करते हो? मेरी बात उनके दिल को लगी दूसरे ही दिन खजांची जी से न देने वाले खरीदारों की पूरी सूची अक्षरों के आधार पर बनवाई और फिर उसी क्रम से उधार वसूल करने की पाँच-दिनी योजना बना डाली लेकिन अलिफ (अ) की ही सूची में एक ऐसा नालायक आन पड़ा कि

छह महीने तक बे (ब) से शुरू होने वाले नामों की बारी नहीं आई। मैंने यह नक्शा देखा तो फिर समझाया कि जब यह लोग तुम्हारे पास ककहरे के अनुसार से कर्ज लेने नहीं आए तो तुम इस क्रम से वसूल करने पर क्यों अड़े हो। सीधी-सी बात थी मगर वह तर्क पर उतर आए। कहने लगे, 'अगर दूसरे बेउसूल हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं भी बेउसूल हो जाऊँ। देखते नहीं कि स्कूल में उपस्थिति के समय बच्चों के नाम बारह-खड़ी के हिसाब से पुकारे जाते हैं मगर बच्चों को उसी क्रम से पैदा या पास होने पर विवश नहीं किया जा सकता। बोलते क्यों नहीं?'

इसके बावजूद मेरे निवेदन का इतना प्रभाव अवश्य पड़ा कि अब किताब उधार नहीं बेचते थे, भेंट कर दिया करते थे। कहते थे कि जब पैसा डूबना ही है तो पुण्य से भी क्यों वंचित रहूँ। इधर कुछ अर्से से उन्होंने खाते लिखना भी छोड़ दिया था जिसका यह उचित औचित्य पेश करते थे कि मैं धन की हानि में जान की हानि की बढ़ोत्तरी नहीं करना चाहता। मिर्जा ने यह लुट्टस मची देखी तो एक दिन पूछा!

'आज कल तुम राज्य के कर्तव्य क्यों निभा रहे हो?'

'क्या मतलब?'

'तुमने राष्ट्र की मुफ्त शिक्षा का भार क्यों उठा रखा है?'

अब उनके चेहरे पर ज्ञान की वह आभा फूटने लगी जो आम तौर पर दिवाला निकलने के बाद उदित होती है। मिर्जा का विचार है कि जब तक दो-तीन बार दिवाला न निकले आदमी को दुकानदारी का सलीका नहीं आता। चुनांचे इस शुभ-बरबादी के बाद वह बुझ से गए और हर वस्तु में अपनी कमी महसूस करने लगे। वह चिर-मुस्कान (BUILT-IN) भी गायब हो गई और अब वह भूल कर भी किसी ग्राहक से सीधे मुँह बात नहीं करते थे कि कहीं वह उधार न माँग बैठे। अक्सर देखा कि ज्यों ही किसी ग्राहक ने दुकान में पैर रखा और उन्होंने घुड़क कर पूछा, 'क्या चाहिए?' एक दिन मैंने दड़बड़ाया, 'अंधे को भी दिखाई देता है कि किताबों की दुकान है। फिर तुम क्यों पूछते हो, क्या चाहिए?' बोले, 'क्या करूँ कड़ियों की सूरत ही ऐसी होती है कि यह पूछना पड़ता है।' किताबें रखने के गुनहगार जरूर थे। मजबूरन बेच भी लेते थे।

'उनके नकचढ़ेपन का अंदाजा इस बात से हो सकता है कि एक बार एक शख्स पूछता हुआ आया, लुगत है।' लुगत (शब्दकोष) का उच्चारण उसने लुत्फ के वज्ज पर (यानी लुगत) किया। उन्होंने नथुने फुलाकर जवाब दिया, 'स्टाक में नहीं है।' वह चला गया तो मैंने कहा 'यह सामने रखी तो है, तुमने इनकार क्यों कर दिया?' कहने लगे, 'यह? यह तो लुगत है। फिर यह भी कि उस बेचारे का काम एक लुगत से थोड़ा ही चलेगा।' हाँ, उच्चारण पर याद आया कि इस मुसीबत के दौर में उन्होंने दुकान में एक पुराने जमाने का रेडियो रख लिया था। इसी को गोद में लिए घंटों गड़गड़ाहट सुना करते थे, जिसे वह विभिन्न देशों के मौसम का हाल कहा करते थे। बाद में मिर्जा की जुबानी इस शोर मचाने का कारण यह मालूम हुआ कि इस रेडियाई दमे की बदौलत कम-से-कम ग्राहकों की गलत उर्दू तो सुनाई नहीं देती।

यह कोई छुपी बात नहीं कि पुस्तक विक्रेताओं को हर किताब पर बिना किसी मेहनत या परेशानी के औसतन तीस-चालीस प्रतिशत कमीशन मिलता है। जिस पेशे में लाभ की यह दर सामान्य हो उसमें दिवाला निकालने के लिए असाधारण दिल और दिमाग चाहिए और वो ऐसे ही दिलो-दिमाग के मालिक निकले। अपनी गणितीय योग्यता का लिखित सबूत वह उस जमाने में ही दे चुके थे। तिमाही इम्तिहान की कॉपी में वह अपना नाम

'सिबगतुल्लाह' लिखते और गैर सरकारी तौर पर केवल 'सिबगे' कहलाते थे। उसी जमाने से वह अपनी इस मान्यता पर दृढ़ता से कायम हैं कि गणित का आविष्कार किसी पूर्वाग्रही काफिर ने मुसलमानों को कष्ट पहुँचाने के लिए किया था। चुनांचे एक दिन यह खबर सुनकर बड़ी हैरत हुई कि रात इन पर गणित के ही किसी नियम के अनुसार यह बात खुली कि अगर वह किताबें न बेचें (दुकान ही में पड़ी सड़ने दें) तो नब्बे प्रतिशत लाभ होगा। फायदे की यह अंधाधुंध दर सुनकर मिर्जा के मुँह में पानी भर आया, इसलिए निकटतम गली से सिबगे के पास वह गुर मालूम करने पहुँचे जिसकी मदद से वह भी अपनी पुराने कोटों की दुकान में ताला ठोक कर तुरंत अपनी दरिद्रता दूर कर लें।

सिबगे ने कान में लगी हुई पेंसिल की मदद से अपने फार्मूले की जो व्याख्या की, उसका निचोड़ आसान भाषा में यह है कि अब तक इनका सामान्य कार्य, आचार यह रहा कि जिस दिन नई किताबें खरीद कर दुकान में लगाते, उसी दिन उन पर मिलने वाले चालीस प्रतिशत लाभ का हिसाब निकटतम पाई तक लगाकर खर्च कर डालते लेकिन जब यह किताबें साल भर तक दुकान में पड़ी भिनकती रहती तो 'क्रिसमस सेल' में इस कीमती खजाने को पचास प्रतिशत छूट पर बेच डालते और इस तरह अपने हिसाब से हर किताब पर नब्बे प्रतिशत अनुचित हानि उठाते लेकिन नया फार्मूला खोज लिए जाने पर अब वह किताबें एक सिरे से बेचेंगे ही नहीं। इसलिए अपने समझदारी भरे अनाचरण से नब्बे प्रतिशत हानि से साफ बच जाएँगे और यह लाभ नहीं तो और क्या है।

पुस्तक विक्रय के इस दौर में जब उन पर परीक्षा का युग पड़ा तो हर एक ग्राहक को अपना आर्थिक शत्रु समझते और दुकान से उसके खाली हाथ जाने को अपने हित में कल्याणकारी मानते। शनिवार को मेरा कार्यालय एक बजे बंद हो जाता है। वापसी में यूँ ही सूझा चलो आज सिबगे की दुकान में झाँकता चलूँ। देखा कि वह एक ऊँचे स्टूल पर पैर लटकाए अपने कर्जदारों की सूचियों से टेक लगाए सो रहे हैं। मैंने खखार कर कहा, 'झपकी?'

'स्टाक में नहीं है!' आँखें बंद किए-किए बोले।

यह कह कर जरा गरदन उठाई-चुंधियाई हुई आँखों से अपनी दाईं हथेली देखी और फिर सो गए।

दाईं हथेली देखना उनकी बड़ी पुरानी आदत है जिसे छात्र-जीवन की यादगार कहना चाहिए। होता यह था कि दिन भर जलील और थके-माँदे होने के बाद वह रात को हॉस्टल में किसी के सर हो जाते कि सुबह तुम्हारा मुँह देखा था। चुनांचे उनके कमरे के साथी अपनी बदनामी के डर से सुबह दस बजे तक लिहाफ ओढ़े पड़े रहते और कछुए की तरह गरदन निकाल-निकाल कर देखते रहते कि सिबगे दफा हुए कि नहीं। जब अपने बेगाने सब आए दिन की मनहूसियत की जिम्मेदारी लेने से यूँ मुँह छुपाने लगे तो सिबगे ने एक हिंदू ज्योतिषी के मशवरे से यह आदत डाली कि सुबह आँख खुलते ही सगुन के लिए अपनी दाईं हथेली देखते और दिन भर अपने आप पर लानत भेजते रहते। फिर तो यह आदत-सी हो गई कि नाजुक और फैसले की घड़ियों में, जैसे अखबार में अपना रोल नंबर तलाश करते समय, ताश फेंटने के बाद और क्रिकेट की गेंद पर हिट लगाने से पहले एक बार अपनी दाईं हथेली जरूर देख लेते थे। जिस काल की यह चर्चा है, उन दिनों उनको अपनी हथेली में एक हसीना साफ नजर आ रही थी जिसका दहेज मुश्किल से उनकी हथेली में समा सकता था।

अलमारियों के अनगिनत खाने जो कभी ठसाठस भरे रहते थे, अब खाली हो चुके थे - जैसे किसी ने भुट्टे के दाने निकाल लिए हों। मगर सिबगे हाथ पर हाथ धर कर बैठने वाले नहीं थे। चुनांचे अक्सर यह देखा कि जुहर (दोपहर

की नमाज) से अस्त्र (शाम की नमाज) तक शीशे के शो केस की फर्जी ओट में अपने मौसरे, चचेरे भाइयों के साथ सर जोड़े फ्लैश खेलते रहते। उनका विचार था कि जुआ अगर करीबी रिश्तेदारों के साथ खेला जाए तो कम गुनाह होता है। रही दुकानदारी तो वह इन हालाँ को पहुँच गई थी कि ताश के पत्तों के सिवा अब दुकान में कागज की कोई चीज नहीं बची थी। ग्राहकों की तादाद हालाँकि तिगनी-चौगुनी हो गई थी, मगर मोल-तोल की प्रकृति थोड़ी भिन्न होते हुए जब यह नौबत आ गई कि राह चलने वाले भी भाव-ताव करने लगे तो खजांची ने खाकी गत्ते पर एक नोटिस निहायत सुंदर लेख में सुशोभित कर दिया।

'यह फर्नीचर की दुकान नहीं है।'

याद रहे उनकी आधी जिंदगी उन लोगों ने कड़वी कर दी जो कर्ज पर किताबें ले जाते थे और बाकी आधी उन महानुभावों ने कड़वी कर रखी थी जिनसे वह खुद कर्ज लिए बैठे थे। इसमें शक नहीं कि उनकी तबाही में कुछ झलक सौभाग्य की भी थी। कुदरत ने उनके हाथ में कुछ ऐसा यश दिया था कि सोने को हाथ लगाएँ तो मिट्टी हो जाए लेकिन इंसान से देखा जाए तो उनकी बरबादी का सेहरा कुदरत के अलावा उन मेहरबानों के सर था जो इंतहाई मुहब्बत और ठहराव वाली प्रकृति के साथ उनको दाने, दिरमे, कदमे, सुखने (धन-धान्य, चाल और भाषा) हानि पहुँचाते रहे। दूसरी वजह जैसा कि ऊपर इशारा कर चुका हूँ, यह थी कि वह अपने खास दोस्तों से अपनी आवश्यकता और उनकी क्षमता के अनुसार कर्जा लेते रहे और कर्जे को मुनाफा समझ कर खा गए। मिर्जा के अनुसार उनका दिल बड़ा था और कर्ज लेने में उन्होंने कभी कंजूसी से काम नहीं लिया। कर्ज पर लेन-देन उनके स्वभाव में इस हद तक रच बस चुका था कि मिर्जा का विचार था कि सिबगे दरअस्तल शासन को सक्षम न करने की गरज से अपनी आमदनी नहीं बढ़ाते। इस लिए कि आमदनी बढ़ेगी तो कंगाल इन्कमटैक्स भी बढ़ेगा। अब तो उनकी यह तमन्ना है कि बाकी प्यारा जीवन 'बैंक ओवरड्राफ्ट' पर बदनामी में गुजार दें। लेकिन उनकी नीयत बुरी नहीं थी। यह और बात है कि हालात ने उनकी नेकनीयती को उभरने नहीं दिया। पिछले रमजान में मुलाकात हुई तो बहुत उदास और चिंतित पाया। बार-बार पतलून की जेब से प्रकाशित हाथ निकाल कर देख रहे थे। पूछा, 'सिबगे! क्या बात है?' बोले, 'कुछ नहीं। प्रोफेसर अब्दुल कुद्स से कर्ज लिए तेरह साल होने को आए। आज यूँ ही बैठे-बैठे ध्यान आया कि अब वापसी का उपाय करना चाहिए, वरना वह भी दिल में सोचेंगे के शायद मैं रकम मारने वाला हूँ।'

जवानी में खुदा को नहीं मानते थे मगर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई, विश्वास टूट होता गया। यहाँ तक कि वह अपनी तमाम नालायकियों को अल्लाह के हुक्म से की गई समझने लगे थे। तबीअत ही ऐसी पाई थी कि जब तक छोटी-से-छोटी बात पर बड़ी-से-बड़ी कुरबानी न दे देते, उन्हें चैन न पड़ता था। बकौल मिर्जा, वह अनलहक (अहम् ब्रह्मस्मि) कहे बगैर सूली पर चढ़ना चाहते थे। व्यापार को उन्होंने रोजी का माध्यम नहीं जिहाद का माध्यम समझा और बहुत जल्दी शहीद का दर्जा पाया।

दुकान की दीवार का प्लास्टर एक जगह से उखड़ गया था। इस स्थान पर जो लगभग दो वर्ग गज था, उन्होंने एक लाल तख्ती जिस पर उनका जीवन-दर्शन स्तरीय लिपि में लिखा हुआ था, टाँग दी - बातिल (झूठ) से दबने वाले ऐ आस्मां नहीं हम

इस में कतई कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। बल्कि देखा जाए तो उन्होंने विनम्रता से ही काम लिया क्योंकि झूठ तो क्या वह सच से भी दबने वाले नहीं थे। मिर्जा अक्सर नसीहत करते कि मियाँ! कामयाबी चाहते हो तो कामयाब

किताब बेचने वालों की तरह जरूरत के हिसाब सच बोलो और हर किताब की अच्छाई-बुराई पर जिद्दम-जिद्द करने के बजाय ग्राहकों को उन्हीं की पसंद की किताबों से बरबाद होने दो। जो बेचारा तरबूज से बहल जाए उसे जबरदस्ती अंगूर क्यों खिलाते हो। हालाँकि सिबगे का कहना था कि बीसवीं सदी में जीत उन्हीं की है जिनके एक हाथ में दीन (धर्म) है और दूसरे में दुनिया और दाएँ हाथ को खबर नहीं कि बाएँ में क्या है। व्यापार और शुद्धता में संयोग मुमकिन नहीं। व्यापार में तुरंत नाकामी उनके हिसाब से शराफत का तराजू थी। उन्हीं का कथन है कि अगर कोई शख्स व्यापार में बहुत जल्द नाकाम न हो सके तो समझ लो उसके वंशवृक्ष में खोट है। इस ऐतबार से उन्होंने कदम-कदम पर बल्कि हर सौदे में अपनी वंशगत शराफत का भरपूर सुबूत दिया।

भावुक आदमी थे। उस पर बदकिस्मती यह कि एक नाकाम किताब बेचने वाले की हैसियत से उन्हें इनसानों के स्वभाव का बहुत निकटता से अध्ययन करने का मौका मिला। इसलिए बहुत जल्दी इनसानियत से मायूस हो गए। उन्होंने तमाम उम्र कष्ट ही कष्ट उठाए। शायद इसी कारण से उन्हें विश्वास हो चला था वह सही रास्ते पर हैं। जीवन से कब के बेजार हो चुके थे और उनकी बातों से ऐसा लगता था कि जैसे अब सिर्फ अपने कर्ज देने वालों का दिल मजबूत रखने के लिए जी रहे हैं। अब हम नीचे वह प्रभाव और पूर्वाग्रह संक्षेप में बयान करते हैं जो उनके चालीस बरस के गलत अनुभवों का निचोड़ हैं :

दुकान खोलने से चार-पाँच महीने पहले वह एक सद्भावना मिशन के साथ श्रीलंका, जिसे जलने वाले लंका के नाम से याद करते हैं, गए। इस द्वीप की तीन दिन की सैर के बाद उठते-बैठते प्रगतिशील देशों में साहित्य के सम्मान और ज्ञानपिपासा के चर्चे रहने लगे। एक बार देशवासियों की असाहित्यिकता के दुखड़े रोते हुए फरमाया, 'आपके यहाँ तो अभी तक अज्ञान की खराबी दूर करने पर किताबें लिखी जा रही हैं जिनका उद्देश्य उन खराबियों को दूर करना है जो केवल अज्ञानता दूर होने से पैदा हो गई हैं। साहब! किताब बेचना, किताब खरीदना, हद यह कि किताब चुराना भी पुण्य कार्य हैं। विश्वास कीजिए, प्रगतिसंपन्न देश में तो जाहिल आदमी ठीक से जुर्म भी नहीं कर सकता।' मेरी शामत आई कि मेरे मुँह से निकल गया, वह सब कहने की बातें हैं। प्रगतिसंपन्न देश में कोई किताब उस वक्त तक अच्छी नहीं मानी जाती जब तक कि उसकी फिल्म न बन जाए और फिल्म बनने के बाद किताब पढ़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता, तो उन्हें गुस्सा आ गया। 'तीन पैसे की छोकरी' का कोना मोड़ कर वापस अलमारी में रखा और मेरे कहने की हूबहू नकल उतारते हुए बोले, 'और आप के यहाँ यह हालत है कि नौजवान उस वक्त तक उर्दू की कोई किताब पढ़ने की आवश्यकता महसूस नहीं करते जब तक पुलिस उसे अश्लील करार न दे दे और अश्लील करार दे देने के बाद उसे बेचने का सवाल ही पैदा नहीं होता। उनके व्यंग्य में उलाहने का रंग आ चला था, इसलिए मैंने झट से हामी भर ली कि पुलिस अगर दिल से चाहे तो तमाम अच्छी-अच्छी किताबों को अश्लील करार देकर नौजवानों में उर्दू अदब से गहरी दिलचस्पी पैदा करा सकती है।

मेरे लहजे का नोटिस न लेते हुए उल्टे मुझी से उलझने लगे कि आप बात की तह तक नहीं पहुँचे। आप धड़ाधड़ किताबें छाप सकते हैं, मगर जबरदस्ती पढ़वा नहीं सकते। मैंने कहा 'क्यों नहीं? उठा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर दीजिए।' वह भला हार मानने वाले थे। कहने लगे, 'अगर एक पूरी-की-पूरी पीढ़ी को हमेशा के लिए किसी अच्छी किताब से विमुख करना हो तो सीधी तरकीब यह है कि उसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर दीजिए।' किताबें बेचने के कारण सिबगे का पाला ऐसे-ऐसे पढ़ने और न पढ़ने वालों से पड़ा।

हजारों साल नरगिस जिनकी बेनूरी पे रोती है

उमर खय्याम के वह ऐसे चाहने वालों में थे जो अस्ल रुबाइयों में अनुवाद के गुण की तलाश करते फिरते थे। इनमें वह साल पुराने पाठक भी थे जो कजलाए हुए कोयलों को दहकाने के लिए बकौल मिर्जा, नग्न नाविलों से मुँह काला करते और समझते कि उर्दू की अश्लील किताब में दीमक नहीं लग सकती क्योंकि दीमक ऐसा कागज खाकर अपनी नस्ल को बढ़ावा देने के योग्य नहीं रहती। उनमें वे भाग्यशाली भी थे, जिनके लिए किताब बेहतरीन साथी है और वे अभागे भी थे, जिनके लिए अकेली साथी।

और इस बेनाम कबीले में वह आधुनिकता में रुचि रखने वाले भी शामिल थे, जो हर पल ताजा और नए के इच्छुक थे। हालाँकि उन जैसों को मालूम होना चाहिए कि केवल डिक्शनरी ही ऐसी किताब है जिसे वह जब भी देखें नई मालूम होगी, लेकिन एक हद तक सिबगे की भी ज्यादाती थी कि नई उर्दू किताबों को अपने दिल और दुकान में जगह देना तो बड़ी बात है, चिमटे से पकड़कर भी बेचने को तैयार न थे। एक दिन 'खाकानी-ए-हिंद' उस्ताद ज़ौक (बहादुरशाह जफर के उस्ताद) के कसीदों की धूल साप्ताहिक टाइम से झाड़ते हुए किटकिटा कर कहने लगे कि आज कल लोग यह चाहते हैं कि साहित्य एक कैप्सूल में बंद करके उनके हवाले कर दिया जाए जिसे वह कोका-कोला के घूँट के साथ झट से गले में उतार लें। मानव सभ्यता पत्थर और भोजपत्र के युग से गुजर कर अब रीडर्स डाइजैस्ट के दौर तक आ गई है। समझे? यह लेखकों का दौर नहीं, पत्रकारों का दौर है! पत्रकारों का।

मैंने डरते-डरते पूछा, 'मगर पत्रकारिता में क्या परेशानी है?'

बोले, 'कुछ नहीं। बड़ा लेखक अपनी आवाज पब्लिक तक पहुँचाता है और बड़ा पत्रकार पब्लिक की आवाज पब्लिक तक पहुँचाता है।'

लेखकों का जिक्र छिड़ गया तो एक वारदात और सुनते चलिए। सात-आठ महीने तक वह उर्दू लेखों का एक संकलन बेचते रहे, जिसके टाइटिल पर लेखक ने स्वयं हस्ताक्षर किए हुए थे और ऊपर यह आलेख, 'जिस किताब पर लेखक के हस्ताक्षर न हों वह जाली समझी जाए।' एक दिन उन्हें रजिस्ट्री से लेखक के वकील के द्वारा नोटिस मिला कि हमें विश्वस्त सूत्रों से मालूम हुआ है कि आप हमारे मुवक्किल की किताब का एक प्रामाणिक एडीशन अर्सा आठ माह से कथित रूप से बेच रहे हैं जिस पर संदर्भित लेखक के हस्ताक्षर तारीख के साथ छपे हैं। आपको नोटिस के द्वारा सूचित और आगाह किया जाता है संदर्भित किताब और हस्ताक्षर दोनों बिल्कुल जाली हैं। अस्ल एडीशन में लेखक के हस्ताक्षर सिरे से हैं ही नहीं। इस घटना से उन्होंने ऐसी सीख ली कि आइंदा ऐसी कोई किताब दुकान में नहीं रखी, जिस पर किसी के भी हस्ताक्षर हों। बल्कि जहाँ तक बन पड़ता उन्हीं किताबों को प्रमुखता देते, जिन पर लेखक का नाम तक दर्ज नहीं होता जैसे अलिफ लैला, जाब्ता फौजदारी, रेलवे टाइम-टेबल, बाइबिल।

तबाही की जो पगडंडी उन्होंने चुनी बल्कि जो राजपथ उन्होंने अपने लिए बनाया, उस पर वह तो क्या कोई भी अधिक देर नहीं चल सकता था, क्योंकि मंजिल बहुत दूर नहीं थी। आखिर वह दिन आ गया जिसकी दुश्मनों को प्रतीक्षा थी और दोस्तों को डर। दुकान बंद हो गई। खजांची जी की तनख्वाह ढाई महीनों से चढ़ी हुई थी। लिहाजा खाली अलमारियाँ, एक अदद लकड़ी की गुल्लक जो कर्ज न देने वालों की लिस्टों से मुँह तक भरी थी, चाँदी का खूबसूरत सिगरेटकेस जिसे खोलते ही महसूस होता था जैसे बीड़ी का बंडल खुल गया, सीढ़ी जिसके ऊपर के सिर्फ

तीन डंडे बाकी रह गए थे, नींद लाने वाली गोलियों की शीशी, कराची रेस में दौड़ने वाले घोड़ों की वंशावलियाँ, नवम्बर से दिसंबर तक का पूरा कलेंडर कील सहित यह सब खजांची जी ने सिबगे की पहली बेध्यानी में हथिया लिए और रातों-रात अपनी तनख्वाह की एक-एक पाई गधागाड़ी में ढो-ढोकर ले गए। दूसरे दिन दुकान का मालिक बकाया किराये की मद में जो जायदाद लिखित-अलिखित मिली, उठा कर या उखाड़ कर ले गया। उसके विस्तार की यहाँ न गुंजाइश है और न जरूरत, हमारे पढ़ने वालों को बस इतना इशारा काफी होगा कि इनमें सबसे कीमती चीज बिना चाबी के बंद होने वाला एक फौलादी ताला-जर्मनी का बना था, पुराना जरूर था मगर एक गुण उसमें ऐसा पैदा हो गया था जो हमने नए से नए जर्मन तालों में भी नहीं देखा। यानी बिना चाबी के बंद होना और इसी तरह खुलना।

सिबगे गरीब के हिस्से में सिर्फ अपने नाम का साइन बोर्ड (फर्जी पुत्रगण सहित) आया जिसको सात रुपए मजदूरी देकर उठवा लाए और दूसरे दिन सवा रुपए में कबाड़ी के हाथ बेच डाला मगर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और दो महीने तक अपनी हथेली का दिन-रात अध्ययन करने के बाद एक ट्रेनिंग कालेज में मास्टर्स को पढ़ाना शुरू कर दिया। मिर्जा के शब्दों में सिबगे ने किताब बेचने के जीवन के अध्याय का अंत कथाओं जैसा किया। जिस कथा की तरफ यहाँ मिर्जा का इशारा है वह दरअसल काई लिंग की एक मशहूर चीनी कहानी है, जिसका हीरो एक आर्टिस्ट है। एक दिन वह अपनी मॉडल लड़की की खूबसूरती से इतना प्रभावित हुआ कि उसी वक्त अपने सारे ब्रश और कैनवस जला डाले और एक सर्कस में हाथियों को सधाने का काम करने लगा।

जनवरी 1962

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

उपन्यास

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

सीजर, माताहारी और मिर्जा

[पीछे](#)[आगे](#)

'हाय अल्लाह! यह हाथी का हाथी कुत्ता काहे को ले आए?'

'चौकीदारी के लिए।'

'किस की?'

'घर की!'

'इस घर की?'

'हाँ! बहुत ही होशियार कुत्ता है घर में कुछ न हो तब भी चौकीदारी कर सकता है।'

इस संवाद से बाद में यह लाभ अवश्य हुआ कि वेतन मिलते ही हमने घर गृहस्थी का जरूरी सामान खरीद डाला ताकि कुत्ता उसकी चौकीदारी कर सके, लेकिन माँ-बाप की समझ में आने वाला जो त्वरित लाभ हमने अभी बयान किया, इससे अपने अबोध बच्चों को जान-बूझकर वंचित रखने के लिए पत्थर का कलेजा चाहिए। वह लाभ यह था कि हमारे यहाँ अनपढ़ से अनपढ़ आदमी भी अपने कुत्ते का नाम अंग्रेजी में रखता है और अंग्रेजी ही में उससे बातचीत और डाँट-डपट करता है। चुनांचे हमने सांकेतिक तौर पर ध्यान दिलाया कि इस कारण से बच्चों को अंग्रेजी बोलनी आ जाएगी।

यह सुनते ही बेगम ने कुत्ते के सर पर हाथ फेरा और जंजीर ऐसे निर्णयात्मक झटके से हमारे हाथ से छीन ली, जैसे लेडी मैकबेथ ने मैकबेथ के हाथ से खंजर छीना था :

Inform of purpose!

Give me the dagger...

अच्छा याद आया! इस ड्राप सीन से कोई बीस साल उधर जब आतिश जवान, बल्कि नौजवान था, उसने नीली आँखों, भरी-भरी टाँगों और ब्लांड बालों वाली मेम को बाग में अपने पॉकेट साइज के 'पामरेनियन' कुत्ते को भींच-भींचकर प्यार करते देखा था। था भी जालिम इसी काबिल। गोल-मटोल, झबरा, सफेद गाले से बालों से सारा शरीर इस बुरी तरह ढँका हुआ था कि जब तक चलना शुरू न करे यह बताना मुश्किल था कि मुँह किस तरफ है। हाय! वह भी क्या जमाना था जब हर चीज जवान थी, हर चीज हसीन थी। हर चीज पर टूट के प्यार आता था, कैसे महकते दिन थे वह भी।

मिरी साँस में है गर्मी कि ये लू-सी चल रही है

अच्छी तरह याद है कि इन पापी आँखों को जंजीर के दोनों तरफ हुस्न नजर आया और दिल में यह प्यार-भरी हसरत करवट लेने लगी कि अंग्रेज की गुलामी से आजाद होने के बाद कभी चैन और कुंज की छाँव मिली तो एक नीली आँखों, भरी-भरी टाँगों और ब्लांड बालों वाला कुत्ता जरूर पालेंगे मगर एक तो मिर्जा के कथनानुसार उच्च-जाति के कुत्ते बड़े महँगे दामों मिलते हैं, दूसरे उस जमाने में मकान इतना तंग था कि जानवर का तंदरुस्त रहना मुश्किल। वह तो खुदा भला करे मिस्टर एस.के. डीन (शेख खैरुद्दीन) एम.ए. (आक्सन) का जो हमारे प्रेम की आग को हवा देते रहे। यह हमारे दूर परे के संबंधी पड़ोसी थे। इनके पास एक बड़ा जबरदस्त कुत्ता था। असील 'ग्रे हांड' जिसे वह पड़ोसियों का खून पिला-पिला कर पाल रहे थे। जिस्म ततैय्ये जैसा और स्वभाव भी अर्थात वही। यूँ तो भौंकने की सारी व्यवहारिक विधाओं में पारंगत था, लेकिन चाँदनी छिटकी हो और मूड बन गया हो तो फिर कुछ ऐसी 'ओरीजनल' शैली का उपयोग करता कि जितनी बार भौंकता तबीअत को हर बार एक नई कुढ़न हासिल होती। देखा गया है कि ऐसे वैसे शौकिया भौंकने वाले कुत्ते की साँस तो दो-चार बार ट्याँऊ-ट्याँऊ करने में उखड़ जाती है, मगर यह कुत्ता बकौल मिर्जा, उर्दू में भौंकता था यानी भौंकता ही चला जाता था। कहने वाले कहते थे कि मिस्टर एस.के. डीन अपने खुद के बुजुर्गों को अपने लायक नहीं समझते थे मगर अपने असील कुत्ते की वंशावली पंद्रहवीं पीढ़ी तक फर-फर सुना देते और उसके पुरखों पर ऐसे गर्व करते, जैसे उनका शुद्ध रक्त मिस्टर डीन की अपनी मूल्यहीन रगों में दौड़ रहा है। कहते थे, नहर के इस पार इतना शुद्ध और खूँखवार कुत्ता ढूँढ़े से नहीं मिलेगा। इसका दादा पंद्रह जून 1941 को पौंडिचेरी में देसी कुत्तों से लड़ता हुआ मारा गया। चाँदनी रात, हू का आलम, चौराहे पर घमासान का रण पड़ा, कुत्तों के पुशते लग गए। मुहल्ले में मशहूर था कि मिस्टर के यहाँ कोई घबराया-घबराया भी फायर ब्रिगेड को फोन करने चला जाए तो उसे अपने स्वर्गीय कुत्तों के अलबम दिखाए बिना फोन को हाथ नहीं लगाने देते थे। ड्राइंग रूम में मिस्टर डीन की एक बड़ी-सी तस्वीर भी टँगी थी, जो उन्होंने अपने कुत्ते के जीते हुए कप और ट्राफियों के साथ खड़े होकर और उसके बिल्ले कोट पर लगाकर खिंचवाई थी। हमारी एक प्राचीन इच्छा और आसक्ति को ध्यान में रखते हुए अकेले में हमें अपने टेपरिकार्ड पर मौजूदा कुत्ते के स्वर्गीय पिताश्री का भौंकना सुनाया, सुनकर उनकी आँखें छलक पड़ीं और हमें भी उनकी हालत देखकर रोना आ गया।

कुत्ता पालने की इच्छा हमने बहुत बार मिर्जा के सामने रखी, मगर वह कुत्ते का नाम आते ही काटने को दौड़ते हैं। कहते हैं, हटाओ भी। वाहियात जानवर है, बिल्कुल अनुपयोगी। कुत्ते की उत्पत्ति का एक मात्र उद्देश्य यह था कि पितरस उस पर एक लाजवाब लेख लिखें, सो यह मंतव्य, युग बीते पूरा हो चुका और अब इस नस्ल को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। वह तो यहाँ तक कहते हैं कि यह नस्ल समाप्त हो भी गई तो उर्दू व्यंग्यकारों से इसका नाम चलता रहेगा। यूँ तो सभी जानवरों के बारे में मिर्जा को जानकारी जालिमाना हद तक अधूरी है

(मसलन अभी कल शाम तक वह लोमड़ी को गीदड़ की मादा समझे बैठे थे और - गजब खुदा का - बड़े चींटे को आम चींटी का नर) मगर कुत्तों के साथ वह विशेषकर सांप्रदायिक व्यवहार करते हैं और अपनी बात को सिद्ध करने के लिए एक से एक दलील पेश करते हैं। मिसाल के तौर पर एक दिन कहने लगे -

'जिस घर में कुत्ता हो, उस घर में चोर ही नहीं, देवदूत भी नहीं जा सकते।'

'चोर का न जाना तो समझ में आता है, मगर देवदूतों को क्या डर है?'

'इस लिए कि कुत्ता अपवित्र होता है।'

'मगर कुत्ते को साफ-सुथरा तो रखा जा सकता है। अंग्रेजों को देखिए, सुबह-शाम नहलाते हैं।'

'उपले को अगर सुबह-शाम साबुन से धोया जाए तो क्या पवित्र हो जाएगा?'

'मगर सवाल यह है कि कुत्ता अपवित्र कैसे हुआ?'

'गलत बहस करना कोई तुम से सीखे, स्वर्गीया नानी जान कहा करती थीं कि कुत्ते के मुँह में सूअर की राल होती है।'

'लीजिए, आपने अपवित्रता का एक अछूता तर्क ढूँढ़ निकाला।'

'भाई मेरे! एक मोटी सी पहचान तुम्हें बताए देता हूँ। याद रखो, हर वह जानवर जिसे मुसलमान खा सकते हैं, पाक है।'

'इस कारण मुस्लिम देशों में बकरों को अपनी पवित्रता की वजह से खासा नुकसान पहुँचा है।'

'बकने वाले बका करें। मुसलमान ने कुत्ते को हमेशा कुत्ता ही कहा। बड़े आदमियों के नाम से नहीं पुकारा, बड़े आदमियों की एक ही रही। आपने सुना नहीं कि वंशानुगत सब कुत्ते एक जमाने में भेड़िये थे? आदमी के सानिध्य में उनका भेड़ियापन जाता रहा - मगर खुद आदमी...!'

'देखो तुम फिर लिटरेचर बोलने लगे। जान देना समाप्त करो यार!'

इस विषय विशेष में मिर्जा के नस्ली पूर्वाग्रह की जड़ें उनके कुत्ता-काटे बचपन तक पहुँचती हैं। इसलिए हमने अकारण उनसे उलझना मुनासिब न समझा और चुपचाप कुत्ता पालने की आकांक्षा को पालते रहे। यहाँ तक कि वह दिन आ गया जब हमारा अंग्रेज अफसर भारी दिल और उससे जियादा भारी पैरों से अपने वतन की तरफ रवाना हुआ और कूच से पहले उस लगाव के कारण जो हमें उससे और उसे अपने कुत्ते से था, पूछा, 'तुम चाहो तो मेरा कुत्ता बतौर यादगार साथ रख सकते हो। इंपोर्टिड अल्सेशियन है। तेरह माह का। 'सीजर' कह कर पुकारो तो दुम हिलाता आता है।' आप कल्पना नहीं कर सकते इस खास बुलावे में एक कमजोर दिल के आदमी के लिए ललचाहट के क्या-क्या सामान छिपे हुए थे। इसमें बिल्कुल शक न था कि इससे बेहतर कोई और यादगार नहीं हो सकती कि जब भी वह भौंकेगा, अफसर की याद ताजा हो जाएगी। फिर यह कि अल्सेशियन!

कभी हम उसको, कभी अपने घर को देखते हैं

अफसर की मामूली मेहरबानी से हमें इतनी खुशी हुई है कि बकौल मिर्जा, अगर उस वक्त हमारे दुम होती तो ऐसी हिलती कि फिर न थमती।

रही-सही हिचकिचाहट को लफ्ज 'इंपोर्टिड' ने दूर कर दिया। उस काल में हर वह चीज जो हमारे प्यारे वतन में न पैदा हुई हो, आदरपूर्ण दृष्टि से देखी जाती थी। चुनांचे हर बिगड़ा हुआ मुसलमान रईस यह साबित करने पर तुला बैठा था कि न सिर्फ उसके कुत्ते बल्कि उसके अपने बुजुर्ग भी अस्ली इंपोर्टिड थे और सिर्फ एक तलवार लेकर... से हिंदुस्तान में पधारे थे। इंपोर्टिड कुत्ता समाज में क्या हैसियत रखता है, इसका सरसरी अनुमान उन घटनाओं से लगाया जा सकता है जो दो साल पहले हमारी नजर से गुजर चुकी थीं। हम से चार घर दूर मिस्टर खिलजी, बैरिस्टर रहते थे। इनके स्वर्गीय वालिद ने चंद नायाब कुत्ते विरसे में छोड़े थे। छोड़ने को तो चंद नायाब किताबें भी छोड़ी थीं, मगर यूँ कि वह भी कुत्तों ही से संबंधित थीं इसलिए हमने जान-बूझ कर उनकी चर्चा नहीं की। इन्हीं में से एक दोगली सी कुतिया थी जिसके बारे में उनका गर्वीला दावा था कि उसकी नानी जोजफीन के संबंध रासपुटिन से रह चुके थे, जो एक इंपोर्टिड 'ग्रेट डेन' कुत्ता था। साथ ही यह कि वह शिमला सिविल एंड मिलिट्री कैनेल से इस दिलीधड़के का सर्टीफिकेट हासिल कर चुके हैं, जो उनके सोने के कमरे में आज भी आँखों को नूर, दिल को सुरुर बख्शता है। नाम माताहारी रख छोड़ा था। किसी समय में उसके लिजलिजे कान हर वक्त लटके रहते थे मगर उन्होंने शहर के बेहतरीन सर्जन से आपरेशन कराके अल्सेशियन की तरह खड़े करा लिए थे। रंग हल्का ब्राउन जैसे मीठी आँच पर सिका हुआ टोस्ट। बैरिस्टर साहब की ऐंग्लोइंडियन बीवी, जो खुद भी बड़ी भरी-पूरी औरत थी और साम्राज्य की तरह हस्तांतरित हुई थीं, उस पर अपने हाथ से यूडीक्लोन छिड़क कर, मगरमच्छ की खाल का जड़ाऊ कालर पहना कर घुमाने ले जातीं और अपने जूते से मैच करने के लिए उस पर ब्रश से खिजाब लगा देती। कभी सियाह, कभी बोलता हुआ उन्नाबी। यह तो गर्मियों की शामों के सामान्य क्रिया-कलापों में से था। जाड़े में माताहारी फ्रेंच ब्रांडी के दो चमचे गटागत पीकर ईरानी कालीन पर अपनी मालिका की तरह इटैलियन रेशम की अंगिया का आरोप लगाए सोते जागते पहरा देती थी। सूरत से भेड़िया और सीरत से भेड़। हम भेड़ इस लिए कह रहे हैं कि सुबह-शाम विलायती बिस्कुट और डिब्बे का गोशत खाते रहने के बावजूद या शायद इसी कारण बकर-ईद की रात को मुहल्ले के कसाई के कुत्ते के साथ भाग गई और तीन रात बाद भटकती भटकाती लौटी भी तो इस तनतने से कि एक दर्जन जीवन-साथी दाँ-बाँ। चाल जैसे कुअ्तुलएन हैदर की कहानी - पीछे मुड़-मुड़ कर देखती हुई, सार्वजनिक मिलन के गली-गली चर्चे। मगर अक्ल छू कर नहीं गई थी। बकौल मिर्जा बिल्कुल गधी थी। उन्हीं से सुना कि अक्सर बाजारी कुतियों के पिल्ले आकर चुसर-चुसर उसके दूध का आखिरी बूँद तक पी जाते और अपने बच्चे दुम हिलाते या प्लास्टिक की हड्डियाँ चचोड़ते रह जाते मगर ईमान की बात यह है कि चौकीदारी के लिए कतई बुरी नहीं थी कि अपनी इज्जत-आबरू के अलावा हर चीज की भरपूर सुरक्षा कर सकती थी। इसके यह लच्छन देखे तो बैरिस्टर साहब ने उसकी रखवाली के लिए एक चौकीदार रखा। इसी साल गर्मियों की छुट्टियों में वह अपने कुनबे और कुतिया समेत कार से मरी जाने लगे तो उनके नानाजान किबला ने अच्छा खासा हंगामा खड़ा कर दिया। बस अड़ गए कि मैं इस 'अपवित्र कुतिया' के साथ कार में सफर नहीं कर सकता। लिहाजा बैरिस्टर साहब उनको हमारे यहाँ छोड़ गए। जितने दिन उक्त बुजुर्गवार हमारे यहाँ मेहमान रहे रात की नमाज के बाद हाथ फैला-फैला कर उस सच्चे न्यायकर्ता से दुआ माँगते कि परवरदिगार! मालजादी माताहारी सालाना जच्यगी में अपनी भूमिका के अंत को पहुँचे। कुतिया कहीं की -! हर रंग, हर साइज की गाली उनकी दैनिक बातचीत में नगीने की तरह जड़ी होती। दिन भर नमाज की चौकी पर बैठे सबको उनके रुतबे के मुताबिक

छोटी-बड़ी गालियाँ देते रहते। दुआ में भी यही रंग रहता। मिर्जा का विचार था कि वह अगर अपने दिल पर जबरदस्ती करके दुआ में से गालियाँ निकाल देते तो सारा असर जाता रहता। जो दुआ दिल से न निकले वह कैसे कुबूल हो सकती है। दुआ माँगने के वक्त के अलावा हर आए गए के सामने अपनी अवज्ञाकारी धेवती के तुलनात्मक व्यवहार (कुतिया से) की शिकायतों का पिटारा खोल देते। उनके तमाम शिकवे का सार बस यह था कि मेरे साथ कुत्ते जैसा व्यवहार क्यों नहीं किया जाता! आखिर में भी जानदार हूँ।

इंपोर्टिड कुत्ते और छैल-छबीली धेवती की यह मजेदार कहानी को बयान करने का कारण यह है कि लफ्ज 'इंपोर्टिड' ने अंग्रेज अफसर के मुँह से निकलते ही हमारी सुरक्षा की दीवार को एकदम ढा दिया। भला ऐसे रख-रखाव वाले कुत्ते रोज-रोज कहाँ मिलते हैं। अंततः यह अनुपयोगी शौक हमारे प्राकृतिक डर से जीत गया और जहाज का लंगर उठने से पहले हमने अपने-आपको एक खुशनसीब कुत्ते का मालिक पाया।

लेकिन एक बात के लिए हम भी मानसिक बल्कि शारीरिक तौर पर भी तैयार न थे। 'तेरह महीने' की उम्र सुनकर हमारे ध्यान में एक बहुत ही भोली-भाली सूरत उभरी थी। हमने सोचा जैसे तेरह महीने का आदमी का बच्चा बड़ा प्यारा-सा होता है - थन्नम थन्ना, गबदा-सा, गाऊँ-गाऊँ करता हुआ। वैसा ही यह भी होगा। सच तो यह है कि बच्चा किसी का भी हो, बड़ा 'स्वीट' लगता है। फिर यह तो अल्सेशियन का बच्चा ठहरा। जी हाँ बच्चा! दरअस्त हम इसके 'इंपोर्टिड' होने से इस कदर रोब में आए हुए थे कि पिल्ला कहते हुए खुद शर्म-सी महसूस होती थी।

मगर सीजर हर एतबार से हमारी उम्मीदों से बढ़ कर निकला। इसका नख-शिख वर्णन करके दर्शकों का समय नष्ट करना नहीं चाहते। इसके डील-डौल का सरसरी अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि हमारे पुराने कृपालु प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स की पूरी रान उसके मुँह में आ जाती थी।

और यह उक्त प्रोफेसर ही ने बताया कि खुदा के बंदे तुमने भी बड़ा गजब किया। तेरह महीने का अल्सेशियन तो पूरा पाठा कुत्ता होता है। किताबों में लिखा है कि तीन महीने से बड़ा अल्सेशियन नहीं लेना चाहिए। इस पर मिर्जा ने यह नमक छिड़का कि आँखों देखी बात है, कुत्ते की तंदुरुस्ती और नस्ल अगर मालिक से बेहतर हो तो वह आँखें मिला कर डाँट भी नहीं सकता। फिर यह तो गैर मामूली तौर पर खूँखवार भी नजर आता है। हमने कहा, 'मिर्जा! तुम अकारण डरते हो।' बोले, 'जो शख्स कुत्ते से भी न डरे मुझे उसकी वल्दियत में शक है।' हमने कहा, 'मिर्जा! कुत्ता अगर खूँखवार न हो तो पालने से फायदा? फिर आदमी बकरी क्यों न पाल ले।' बोले, 'हाँ! बकरी कुत्ते से कई गुना बेहतर है। बड़ी बात यह है कि जब चाहो काट कर खा जाओ।'

गरचे छोटी है जात बकरी की

दिल को भाती है बात बकरी की

बहस में हम दोनों पटरी से उतर गए थे, लिहाजा प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स ने बहैसियत पंच बीच में पड़ के इस सामान्य राय पर बहस समाप्त की कि कुत्ते में से अगर जबड़ा निकाल दिया जाए तो खासा अच्छा और शालीन जानवर है।

काजी अब्दुल कुद्स ने कुछ गलत नहीं कहा था कि कुत्ता बड़ी मुश्किल से सधाया जाता है। फिर नया घर, नए चेहरे, नई बू-बास। नतीजा यह कि पहली रात न खुद सोया न दूसरों को सोने दिया। रात भर एक साँस में

मुँहजुबानी भौंकता रहा।

दूसरी रात भी यही हाल रहा। अलबत्ता चौबीस घंटे के प्रशिक्षण से इतना फर्क जरूर पड़ा कि झुटपुटे के वक्त जिन घर वालों की आँख लग गई थी उनके मुँह चाट-चाट कर गहरी नींद से जगाया। तीसरे रतजगे से पहले हमने उसे एक नींद की गोली दे दी। कोई लाभ नहीं हुआ। चौथी रात दो दीं, मगर साहब! क्या मजाल, जो जरा चुप हो जाए। मिर्जा से संपर्क किया तो कहने लगे, 'मेरी मानो, आज इसे कुछ न दो। खुद तीन गोलियाँ खा लो।' हमने ऐसा ही किया। उस रात वह बिल्कुल नहीं भौंका।

लेकिन हैरत इस बात पर हुई कि सुबह दस बजे हमारे बहरे पड़ोसी ख्वाजा शम्सुद्दीन (इंपोर्टर एंड एक्सपोर्टर) ने, जो नए-नए पड़ोस में आए थे, हमें बड़ी बेतमीजी से झँझोड़ कर जगाया और शिकायत की कि रात भर आपका कुत्ता मेरे घर की तरफ मुँह करके खूब भौंका (हियरिंग-एड यानी श्रवण यंत्र, अपने कान में फिट करते हुए) और देख लीजिए, इस वक्त भी बहुत जी लगा के भौंक रहा है। हमने कहा, आपका रेडियो भी तो सारे-सारे दिन मुहल्ले को सर पर उठाए रहता है। खुदा गवाह है जिस दिन से आप पड़ोस में उठकर आए हैं, हमने अपने रेडियो प्रोग्राम सुनना बंद कर दिया है फिर यह कि हमारे पास तो कुत्ते का लाइसेंस भी है। लाइसेंस का नाम आते ही उनके चेहरे का रंग काले से बैंगनी हो गया जिसके नतीजे में वह और उनका रेडियो तीन सप्ताह तक चुप रहे। अलबत्ता उनके चौकीदार की जुबानी मालूम हुआ कि वह रातों को उठ-उठकर अपनी हियरिंग-एड कान से लगाकर सुनते हैं कि हमारा कुत्ता भौंक रहा है या सो गया। हमारे कानों में यह भनक भी पड़ी कि अब वह हर एक से यह कहते फिर रहे हैं कि कुछ कर्ज न चुकाने वाले अपने कर्जदार से बचने के लिए कुत्ता पाल लेते हैं। वह यह कहते भी सुने गए कि सीजर शरीफों का कुत्ता मालूम नहीं होता। उधर उनकी बीवी का यह हाल कि सीजर झूठों भी दरवाजे में से झाँक ले तो झट हाथ भर कर घूँघट निकाल लेती थीं।

तीन हफ्ते बाद देखा कि फिर मुँह फुलाए घर की तरफ चले आ रहे हैं। हमारे पुरजोश अस्सलाम अलैकुम के जवाब में फरमाया, 'देखिए इस सूअर के बच्चे ने क्या किया है?' मिर्जा बीच में बोल उठे, 'मुँह सँभाल कर बात कीजिए। वह कुत्ते का बच्चा है।' इस विरोधी हमले के बाद हम भी कुछ सख्त बात कहने वाले थे कि मिर्जा ने जो उस वक्त हम से लूडो खेल रहे थे, हमारे कुहनी मार कर अपनी छज्जेदार भवों को हिलाकर ख्वाजा शम्सुद्दीन की बाईं टाँग की तरफ इशारा किया जो घुटने तक पाँयचे से वंचित थी। हमने कनखियों से देखा तो वाकई जख्म इतना लंबा था कि जिप लगा कर आसानी से बंद किया जा सकता था।

शर्म और इंसानी हमदर्दी की भावनाओं से दबकर हमने पूछा, 'क्या कुत्ते ने काटा है?'

'जी नहीं! मैंने खुद ही काटा है।'

'अरे साहब! घोड़े भी कुछ कम जालिम नहीं होते?' मिर्जा बोल उठे।

खुशी से लदा हुआ मिर्जा का यह वार ऐसा अचानक और प्रभावकारी था कि वहीं ढेर हो गए। एक बार को अपने जिस्मानी जख्म भूल गए और अंदरूनी चोटों को सहलाते और घोड़ों की माँ बहनों को अरमान भरी गालियाँ देते 'फेड आउट' हो गए। किस्सा दरअस्त यह था कि उनके बुजुर्ग खैबर पार से घोड़े बेचने हिंदुस्तान आए थे और मालामाल होकर यहीं पड़ रहे। आगे चलकर इन बुजुर्गों की औलाद को इन्हीं घोड़ों की अवज्ञाकारी औलादों ने तबाह कर डाला। वह इस तरह कि इस गुरुकुल के अंतिम प्रकाशस्तंभ ख्वाजा शम्सुद्दीन की 'ब्लैक' की कमाई की

एक-एक पाई रेस में इन्हीं घोड़ों की भेंट चढ़ती और इनके अपने बीवी-बच्चे इनकमटेक्स वालों की तरह मुँह देखते रह जाते।

इस तरह के अच्छे स्वभाव से अलग सीजर बेतमीजी की आयु के प्रारंभ से पहले दर्जे का काहिल था और दौड़-दौड़ कर काम करने के बजाय दिन के अधिकतर हिस्से में 'दरवाजे' पर मेहराब के रूप में छाया हुई बोगनविलिया की छाँव में लोटें लगाता रहता। दर्जी की सुई यूँ तो हर तरह के कपड़े में से निकलती है मगर इमान की बात है, हमने सीजर को कभी किसी गलत आदमी को काटते नहीं देखा और यह कहना तो सरासर गलत यानी मिथ्यारोपण होगा कि वह बिल्कुल जंगली और बेकहा था। सधा-सधाया जरूर था मगर सिर्फ पचास प्रतिशत। इस शोकपूर्ण आशुकथन का विवरण यह है कि अगर बच्चे हुकम देते कि जाओ और उसके पीछे लग जाओ तो ये मेरा शेर अपने घात-स्थल से निकलकर आदेश पालन में झपट पड़ता और उसकी टाई पकड़ कर लटक जाता लेकिन जब दूसरा आदेश मिलता, 'छोड़ दो', तो क्या मजाल जो छोड़ दे।

मिर्जा को दाता ईश्वर ने बहुत सतर्क और वहमी मानसिकता प्रदान की है। हमें यकीन है कि अगर उन्हें अमृत भी पीना पड़े तो बगैर उबाले नहीं पिँएँगे। इस एहतियात की परिपाटी के कारण उन्होंने सीजर के आने के बाद हमारे यहाँ आना जाना इतना कम कर दिया कि कभी भूले-भटके आ निकलते तो हम सब उनका इतना आदर सत्कार करते, ऐसी गर्मजोशी से मिलते कि उन्हें संशय होने लगता कि हम उधार न माँग बैठें। एक दिन हमारे कहने से प्रोफेसर अब्दुल कुद्स मिर्जा को तरह-तरह से समझाने लगे कि कुत्ता बड़ा अद्वितीय जानवर है। कुत्ते के सिवाय कोई जानदार पेट भरने के बाद अपने पालने वाले का शुक्र अदा नहीं करता। गौर करो, दुमदार जानवरों में कुत्ता ही तन्हा ऐसा जानवर है जो अपनी दुम को प्रेम और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के यंत्र के तौर पर इस्तेमाल करता है। वरना शेष गँवार जानवर तो अपनी पूँछ से सिर्फ मक्खियाँ उड़ाते हैं। दुंबा यह भी नहीं कर सकता। इसकी दुम सिर्फ खाने के काम आती है। अलबत्ता बैल की दुम से 'ऐक्सीलेटर' का काम लिया जाता है मगर तुम्हें बैलगाड़ी थोड़े ही दौड़ानी है। (मिर्जा की रान पर हाथ मार कर) हाय! एक फ्रांसीसी लेखिका क्या सुंदर बात कह गई है कि मैं आदमियों को जितने करीब से देखती हूँ, उतने ही कुत्ते अच्छे लगते हैं। (लहजा बदलकर) कुत्तों से डरना बड़ी नादानी और बुजदिली है, विशेषकर विलायती कुत्तों से। फिर मिर्जा का डर निकालने के लिए उन्हीं के खिचड़ी सर की कसमें खा-खाकर यकीन दिलाया कि अंग्रेजों के कुत्तों के दाँत नकली होते हैं। खाने के और, काटने के और। कसमों से भी बात बनती नजर न आई तो हमारी तरफ इशारा करके अपना निजी अनुभव बताया कि इनकी देखा-देखी मैंने भी तीन हफ्ते से एक दुमकटा 'काँकर स्पैनियल' पिल्ला पाल रखा है। (काँकर स्पैनियल की मशहूर पहचान मालूम है? उसके कान उसकी टाँगों से लंबे होते हैं और टाँगें इतनी छोटी कि जमीन तक नहीं पहुँच पातीं!) दो हफ्ते तक तो बच्चे दिन भर उसे गोद में लिए भौंकना सिखाते रहे मगर अब उनको इससे जरा दूर ही रखता हूँ क्योंकि जुमे को छोटे बच्चे ने खेलते-खेलते इसे काट खाया। अपने पहले दाँत से। अभी तक पिल्ले के पैन्सिलीन के इंजेक्शन लग रहे हैं।

प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स बेदूध की काफी के घूँट ले लेकर यह श्वान-कथा सुना रहे थे। बैठे-बैठे सीजर को जाने क्या हुड़क उठी कि बोगनविलिया की ओट से उनके कीमा भरे समोसे पर झपटा। काफी मुँह की मुँह में रह गई। बदहवासी में पियाली मिर्जा के सर पर गिरी (जिससे सर कई जगह से चटख गया) और प्रोफेसर गर्म काफी का गरारा करते हुए अपने कद से ऊँचा फाटक फलाँग गए।

मिर्जा ने पूछा 'कुत्ते से डर गए?'

'नहीं तो', वह फाटक के दूसरी तरफ से आत्मसम्मान-भरे लहजे में थर-थर काँपते हुए बोले।

मुमकिन है यह बातचीत कुछ देर और जारी रहती मगर बातचीत की विषयवस्तु ने एक ही छलांग में प्रोफेसर अब्दुल कुद्स को दबोच लिया और उनकी सुडौल रान में अपने नोकीले कीले गाड़ दिए। वह मुँह फेर कर खड़े हो गए। चार-पाँच दिन पहले भी ऐसी ही गुत्थम-गुत्था हो चुकी थी कि कभी कुत्ता उनके ऊपर और कभी वह कुत्ते के नीचे। लिहाजा हमने फिर बोगनविलिया की काँटेदार टहनी तोड़कर एक संटी बनाई और उस बेतमीज को सड़ाक-सड़ाक मारने को दौड़े मगर प्रोफेसर जहाँ-के-तहाँ हाथ जोड़कर खड़े हो गए। कहने लगे, 'खुदा के वास्ते यह न करो, अभी तो मेरे पिछले नील भी नहीं मिटे।'

जैसा कि हमारे पाठकों ने भाँप लिया होगा, कुत्ता पालना तो एक तरफ रहा, कुत्तों और प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स के आपसी संबंध काटने और कटवाने के कामयाब अनुभवों से आगे कभी नहीं बढ़े। वर्ना उनका जीव-विज्ञान का ज्ञान इस हद तक पुस्तकों तक सीमित यानी त्रुटिपूर्ण है कि हमारे बच्चे जिस दिन बाजार से तोते का पहला जोड़ा खरीद कर लाए तो उनसे पूछा, 'चचाजान! इनमें नर कौन-सा है और मादा कौन-सी है?' विद्वान प्रोफेसर ने चार-पाँच मिनट तक सवाल और जोड़े को उलट-पलट कर देखा फिर बड़े सतर्क अंदाज में फरमाया, 'बेटा यह बहुत आँखें फेर लेने वाला जानवर होता है। अभी दो-तीन महीने और देखो। दोनों में से जो पहले अंडे देना शुरू कर दे वही मादा होगी।' खैर यह अज्ञानता तो मानवीय असमर्थता समझकर फिर भी माफ की जा सकती है क्योंकि तोता अपनी मादा को इन्सान के मुकाबले अधिक आसानी से पहचान लेता है लेकिन एक दिन उपदेशात्मक अंदाज में बड़े अनुभव की बहुत बारीक बात यह बताई कि विश्वास करो, कुत्ता रखने से सेहत बेहतर हो जाती है! यह सुनना था कि मिर्जा ने इतने जोर का ठहाका लगाया कि संबंधों में फौरन बाल पड़ गया जो कई बार काफी पिलाने के बाद दूर हुआ।

जब संबंध नए सिरे से इस हद तक मधुर हो गए कि अबे-तबे से बातचीत होने लगी तो मिर्जा को तपाने के लिए वह फिर श्वान-वंदना में लग गए। एक दिन मौज में जो आए तो ज्ञान-प्रदान किया कि आयुर्वेदिक दृष्टि से कुत्ता बहुत फायदेमंद और पौष्टिकतापूर्ण जानवर है। यह सुनकर मिर्जा उन्हें मुसलमान नजरों से देखने लगे तो वह अपने दोनों हाथों की उँगलियों पर अपने साथ के उन बीमारों के नाम गिनवाने लगे, जिन्हें इस कुत्ता-जाति ने तंदुरुस्ती से मालामाल कर दिया था और दूर क्यों जाएँ। खुद उनको अपने बालिशत भर के पिल्ले से बेइंतहा फायदा पहुँच रहा था। मिर्जा ने कहा, 'जरा खोल कर बात करो।' बोले, 'अब तुम से क्या पर्दा। कुत्ते को रोजाना गोशत चाहिए और यह ज्ञान हमें कुत्ता पालने के बाद ही मिला कि पहले हमारे घर में रोजाना गोशत नहीं पकता था और हम बड़ी अज्ञानता भरी जिंदगी गुजार रहे थे।' उनके वनस्पतिक-जीवन पर जो सुप्तावस्था छायी हुई थी, उसके अचानक जाग जाने के बाद हम अपनी आँखों से देख रहे थे कि अब वह अपनी सेहत से इतने संतुष्ट हो गए थे कि एक नंबर बड़ा जूता पहनना शुरू कर दिया था।

हम तो इसको एक सुहानी होनी ही कहेंगे कि मुद्दतों बाद उक्त प्रोफेसर की तंदुरुस्ती ऐसी बहाल हुई कि हमें डाह होने लगी। इसलिए कि अब वह इस योग्य हो गए थे कि महीने में तीन-चार दिन दवा के बिना रह सकते थे। मिर्जा कहते थे कि उसका अस्ली कारण यह है कि इन्हें अपने काल्पनिक पिल्ले को सुबह-शाम दो-तीन मील टहलाना पड़ता है।

'ऊँची जाति के कुत्तों' के स्वास्थ्यवर्धक सानिध्य से प्रोफेसरों की काया पलट होना तो अकाव्यात्मक विचार को व्यक्त करना है, फिर भी इसकी गवाही सारा मुहल्ला देगा कि हमारे कई कृतघ्न पड़ोसियों के खराब होते हुए स्वास्थ्य पर सीजर की मौजूदगी, विशेषकर इसके भौंकने का बड़ा सुहाना प्रभाव पड़ा जिसका एक छोटा-सा करिश्मा यह था कि हमारे घर के सामने से गुजरते हुए लड़ड़ से लड़ड़ पड़ोसी की चाल में एक अजीब चौकन्नापन, एक अजीब चुस्ती और लपक-झपक पैदा हो जाती थी। सीजर पलों का फासला क्षणों में तय करवा देता था। औरों का क्या जिक्र, खुद ख्वाजा शम्सुद्दीन (इंपोर्टर एंड ऐक्सपोर्टर), जो कहने को तो सीजर से तंग आ चुके थे, उसके सानिध्य के लाभ से खुद को न बचा सके। उक्त सेठ साहब कम-बढ़ती पंद्रह साल से लो ब्लड प्रेशर के लाइलाज मरीज थे। दवा-दारू, टोने-टोटके पर लाखों खर्च कर चुके थे। सब बेकार और यह नौबत आ गई थी कि लालची से लालची डॉक्टर भी उन्हें अपना नियमित मरीज बनाने को तैयार न था। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें रोज क्लीनिक में बैठा देखकर दूसरे मरीज बिदक जाएँ कि उस डॉक्टर के हाथ में आराम नहीं लेकिन हमारे पड़ोस में आने के तीन महीने के अंदर न सिर्फ यह कि उनका ब्लड प्रेशर बढ़ कर नार्मल हो गया बल्कि खुदा के करम से इससे भी पंद्रह बीस दर्जे ऊपर रहने लगा।

इन घटनाओं का संबंध उस अज्ञानता के युग से है जब हम कुत्ता पालना खेल समझते थे। कैनल क्लब का नियमानुसार मेंबर बनने के बाद हमें अहसास हुआ कि सीजर बेचारा बिल्कुल बेकुसूर था। गलती सरासर हमारी ही थी कि कुत्ते को अपनी औलाद की तरह यानी डॉट-डॉट कर पाल रहे थे। बड़े-बड़े जुगादरियों से कुत्ता पालने के कायदे-कानून सीखे तो पता चला कि कुत्ते के साथ तो शिष्ट व्यवहार अनिवार्य है, बल्कि उसके सामने तो बच्चों को भी बेदर्दी से पीटना नहीं चाहिए वरना उसका व्यक्तित्व पिचक के रह जाता है और यहाँ यह दशा थी कि घर के हर व्यक्ति ने उस पर भौंक-भौंक कर अपना गला बैठा लिया था लेकिन जैसे-जैसे कुत्ता बड़ा हुआ, हममें भी समझ आती गई और डॉट-फटकार का सिलसिला बंद हो गया।

सीजर ही के दम-खम से आठ नौ साल तक ऐसी निश्चिंतता रही कि कभी ताला लगाने की आवश्यकता अनुभव न हुई। उसको हमारे सामान की सुरक्षा का इतना ध्यान था कि शामत का मारा कोई कौआ या बिल्ली किचिन के पास से भी निकल जाए तो नथुने फैलाकर इस बुरी तरह खदेड़ता कि सारे चीनी के बरतन टूट जाते। घर की चौकीदारी और कामकाज में इस तरह हाथ बँटाने के अलावा वह एक समझदार कुत्ते की अन्य जिम्मेदारियाँ भी निभाता रहा जिनसे साफ वफा की सुगंध आती थी। यही नहीं कि वह नाश्ते में हमारे लिए ताजा अखबार मुँह में दबाकर लाता, बल्कि जब महीने की पहली तारीख को अखबार वाला बिल लेकर आता तो उस पर भौंकता भी था। एक मुँह में अखबार लाना ही नहीं, वह तो कहिए हमने खुद दो तीन बार सख्ती से मना कर दिया, वरना वह तो हमारे लिए टोस्ट भी इसी तरह ला सकता था। खाने पर दोनों वक्त वह हमारी कोहनी से लगा बैठा रहता और नियमानुसार हम हर पाँच निवालों के बाद एक निवाला उसे भी डाल देते। अगर वह उसे सूँघ कर छोड़ देता तो हम भी तुरंत ताड़ जाते कि हो न हो खाना बासी है।

गरज कि बहुत जहीन था और खूब सेवा करता था। वक्त गुजरता दिखाई नहीं देता मगर हर चेहरे पर एक कहानी लिख जाता है। कल की-सी बात है जब सीजर बच्चा-सा आया था तो प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स जो सदा से एकरंगी के कायल हैं, इतवार के इतवार मोचने से अपने सर के सफेद बाल उखाड़ा करते थे। बाल वह अब भी उखाड़ते हैं मगर सिर्फ काले। (उन्हें खुद भी अपनी उम्र का अहसास हो चला था और शायद इसी कारण अब सिर्फ बाल-बच्चों वाली औरतों पर उनकी तबीयत आती थी।) नादान बच्चों की वह पहली खेप जिसने सीजर के जरिये

अंग्रेजी सीखी, अब माशाअल्लाह इतनी सयानी हो चुकी थी कि उर्दू शेरों का सही मतलब समझकर शरमाने के काबिल हो गई। सीजर भी धीरे-धीरे परिवार ही का एक बूढ़ा सदस्य बन गया - इस दृष्टि से कि अब कोई उसका नोटिस नहीं लेता था। हमारे देखते-देखते वह बूढ़ा हो गया और साथ ही साथ दिल में उसके लिए संगत और सहयात्रा का अहसास, दर्दमंदी और सहभाग्य का एक बंधन पैदा हो चला कि हमने एक दूसरे को बूढ़ा होते देखा था। एक साथ समय से हार मानी थी।

आज उसकी एक-एक बात याद आ रही है। जवान था तो राह-चलतों का पंजे झाड़ कर ऐसा पीछा करता कि वे घिघिया कर निकटतम घर में घुस जाते और बेआबरू होकर निकाले जाते। वह ताक में रहता और निकलते ही उनके मुँह और गरदन को हर बार दूसरे ढंग से ऐसे भँभोड़ता कि जैसे जानवर नहीं किसी अंग्रेजी फिल्म के नदीदे हीरो हों। (यह मिर्जा के शब्द हैं, वो कहते हैं अंग्रेजी फिल्मों में लोग यूँ प्यार करते हैं जैसे तुख्मी आम चूस रहे हों।) अभी तीन साल पहले तक उसे देखकर पड़ोसियों का चुल्लुओं खून सूखता था मगर अब इतना बूढ़ा हो गया था कि दिन भर बोगनविलिया के नीचे किसी पहुँचे हुए फकीर की तरह ध्यान में डूबा पड़ा रहता। बहुत हुआ तो वहीं से लेटे-लेटे दुम हिलाकर वात्सल्य व्यक्त कर दिया। अलबत्ता छोटे बच्चों को, चाहे घर के हों या पास पड़ोस के, उसने कभी निराश नहीं किया और ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई बच्चा उसे आवाज देकर गेंद फेंके और वह गूदा भरी नली छोड़-छाड़, गेंद अपने मुँह में रखकर वापस न लाए। इस मामले में उसे बच्चों का दिल रखने का इतना ध्यान था कि कई बार फुटबाल तक मुँह में रखकर लाने की कोशिश की।

हाथ-पाँव धीरे-धीरे जवाब दे रहे थे। सारी तुन-फुन गायब। गर्मी-फिश खत्म। मिर्जा के शब्दों में उसका बुढ़ापा जवानी पर था। किसी-किसी दिन तीसरे पहर बोगनविलिया की छाँव में वही सनसनीखेज उर्दू अखबार ओढ़े ऊँघता रहता जिसमें नौकर सुबह कीमा बंधवा कर लाया था। चाँदनी और मादाओं की मस्त-महक से अब उसके खून में ज्वार-भाटा नहीं आता था। कहाँ तो यह नौबत थी कि 'गर्मी' पर आता तो शाम ही से जंजीर तुड़ाकर आदमकद ऊँची दीवार फाँद जाता और सुबह की अजान के वक्त कामयाबी का सुख लिए लौटता था अब इस जवानी देखे बुजुर्ग का यह हाल हो गया था कि गर्माई हुई मादा और हड्डी एक ही समय में नजर आ जाएँ तो हड्डी पर ही झपटता और जब इस हड्डी को पपोलते-पपोलते उसके बूढ़े जबड़े दुखने लगते तो उसे लाल बोगनविलिया के नीचे दबा के वुजू के लोटे में मुँह डाल कर पानी पीने चला जाता। यकीन नहीं आता था कि यह वही सीजर है जिसके जबड़े की मुहर मुहल्ले के हर तीसरे आदमी की पिंडली पर आज तक गवाही दे रही है कि -

'अब जिस जगह पे दाग है, याँ आगे दर्द था'

वही दुम जो एक जमाने में प्रश्नवाचक चिह्न की तरह खड़ी रहती थी, अब निर्धन की मूँछ की तरह लटकने लगी। उसके हमउम्र एक-एक करके वह गलियाँ सूनी कर गए, जहाँ से रातों को अनदेखे भेद-भरे जिस्मों की खुशबुओं के बुलावे आते थे। वह तन्हा रह गया। बिलकुल तन्हा और उदास। नई पौध के मुँहजोर कुत्तों के साथ उठना बैठना तो अलग वह उनके नए दौलतमंद मालिकों पर भौंकना भी अपने रुतबे के खिलाफ समझता था लेकिन जिस दिन से माताहारी की जवान पठोर बेटा क्लियोपेट्रा भरी दोपहरी में एक हलवाई के बेनाम कुत्ते के साथ भागी, वह हफ्तों अपनी जाति की आवाज तक को तरसने लगा। जब तन्हाई से बहुत जी घबराने लगता तो रेडियो के पास आकर बैठ जाता और पक्के गाने सुनकर बहुत खुश होता।

जिस्म के साथ-साथ नजर भी इतनी मोटी हो गई थी कि कभी प्रोफेसर अब्दुल कुदूस उजले कपड़े पहन कर आ जाते तो उन्हें अजनबी समझ कर भौंकने लगता। अलबत्ता सुनने में फर्क नहीं आया था। साफ मालूम होता था कि वह अटकल से गेंद का पीछा करता है और इसके टप्पा खाने से दिशा और स्थान का अंदाजा कर लेता है। एक दिन शाम को अच्छा खासा बोगनविलिया के नीचे अपना विशिष्ट आसन मारे (दाईं आँख जो बचपन से लाल रहती थी, आधी बंद किए, बाएँ पंजे पर थूथनी रखे) बैठा था कि एक नीले रिबन वाली बच्ची ने 'शू' कहकर सड़क पर पिंगपांग की गेंद फेंकी। वह आवाज की सीध पर लपका मगर जैसे ही गेंद मुँह में पकड़ के तेजी से पलटा, एक कार के ब्रेक लगने की दिल चीर देने वाली आवाज सुनाई दी।

बच्चे चीखते हुए दौड़े। सड़क पर दूर तक टायरों के घिसटने से दो काली पट्टियाँ बन गईं। कार एक धक्के के साथ रुकी और अपने स्प्रिंगों पर दो-तीन हिचकोले खाकर गुर्राती हुई तेजी से पहले ही मोड़ पर मुड़ गई मगर सीजर बीच रास्ते में ही रह गया। इसका पिछला धड़ कार का पूरा भार सहार चुका था। मुँह से खून जारी था और पास ही गेंद पड़ी थी जो अब सफेद नहीं रही थी।

सबने मिलकर उसे उठाया और फाटक के पास बोगनविलिया के नीचे लिटा दिया। लगता था धमनियों के मुँह खुल गए हैं और उसका जीवन दिल की हर धड़कन के साथ रिस रहा है, घाव-घाव, बूँद-बूँद, पल-पल। हर एक उसे छू-छूकर उँगलियों की पोरों से दिल की धड़कन सुन रहा था। वह धड़कन जो दूसरी धड़कन तक एक नया जन्म, एक नई योनि प्रदान करती है। किस जी से कहूँ कि उसका दाना-पानी उठ चुका था और वह विदा हो रहा था। इस हिम्मत, इस हौसले, इस सुकून के साथ जो सिर्फ जानवरों का भाग्य है। बगैर कराहे, बगैर तड़पे, बगैर मायूस हुए। बस शून्य में नजरें जमाए देखे चला जा रहा था। बारी-बारी सबने उसे चुमकारा, सर पर हाथ रखते ही वह आँखें झुका लेता था और यह याद कर के सबकी आँखें भर आईं कि उसकी जिंदगी में आज पहला मौका था कि सर पर हाथ फिरवाते वक्त वह जवाब में अपनी रेशम-सी मुलायम दुम नहीं हिला सकता था। आज उसके नथनों में एक अजनबी खून की बू घुसी जा रही थी। कोई आधा घंटा गुजरा होगा कि चार-पाँच कौए ऊपर मंडराने लगे और धीरे-धीरे इतने नीचे उतर आए कि उनके मनहूस साये उस पर पड़ने लगे। कुछ देर बाद अहाते की दीवार पर आ बैठे और शोर मचाने लगे। सीजर ने एक नजर उठा कर उन्हें देखा। एक क्षण के लिए उसके नथुने फड़क उठे। फिर उसने अपनी आँखें झुका लीं। हमसे यह न देखा गया। उसका खून से सना मुँह खोलकर नींद की गोलियों की शीशी हल्क में उलट दी और कालर उतार दिया।

जरा सी देर बाद वह अपने प्यार करने वालों की धुँधलाती सूरतें देखता-देखता हमेशा के लिए सो गया।

मार्च के चढ़ते चाँद की भीगी-भीगी रोशनी में जब बच्चों ने मिलकर उसकी प्रिय बोगनविलिया के नीचे जमीन की अमानत जमीन को सौंपने के लिए गहरा-सा गढ़ा खोदा तो छोटी बड़ी बेशुमार हड्डियाँ निकलीं, जिन्हें वह शायद दफन करके भूल गया था। दूर-दूर तक बोगनविलिया की लंबी-लंबी उँगलियों जैसी जड़ें अपना रास्ता टटोलती हुई जमीन के हल्के गर्म सीने में उतरती चली गई थीं और उसका रस चूस-चूस कर शाखों के सिरों पर दहकते हुए फूलों तक पहुँचा रही थीं। सूखी-प्यासी जड़ों को आज सीजर के लहू ने उन फूलों से भी अधिक लाल कर दिया होगा जो बच्चों ने कब्र का मुँह अपनी स्लेटों और तख्तियों से बंद करके ऊपर बिखेर दिए थे। अंत में नीले रिबन वाली बच्ची ने अपनी सालगिरह की मोमबत्तियाँ सिरहाने जला दीं। उनकी उदास रोशनी में बच्चों के मैले गालों पर आँसुओं की नमकीन उजली लकीरें साफ चमक रही थीं।

कई महीने बीत गए। पतझड़ के बाद बोगनविलिया फिर अंगारे की तरह दहक रही है मगर बच्चे आज भी उस जगह किसी आदमी को पाँव रखने नहीं देते कि वहाँ हमारा एक साथी सो रहा है।

[>>पीछे>>](#) [>>आगे>>](#)

[शीर्ष पर जाएँ](#)

उपन्यास

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

हाँ, तो आलू का कुछ बयाँ हो जाए

[पीछे](#)[आगे](#)

दूसरों को क्या दोष दें, हम स्वयं बीसियों चीजों से चिढ़ते हैं - बंदगोभी, पनीर, कंबल, कॉफी, काफ़का, औरत का गाना, मर्द का नाच, गेंदे का फूल, इतवार का मुलाकाती, मुर्गी का गोशत, पानदान, गरारा, खूबसूरत औरत का पति - इससे अधिक चिढ़े बताने में मर्यादा टूटेगी कि पूरी सूची हमारे पापों से भी अधिक लंबी और हरी-भरी निकलेगी। गुनाहगार सही लेकिन मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग की तरह यह हम से आज तक न हुआ कि अपने पूर्वाग्रहों के करेलों पर औचित्य का नीम चढ़ाकर दूसरों को अपने अनानंद में बराबर का शरीक बनाने की कोशिश की हो। मिर्जा तो, जैसा किसी ने कहा है, गलत दलील प्रस्तुत करने के बादशाह हैं। उनके समर्थन और वकालत से सही से सही 'कार्य' निहायत लचर मालूम होने लगता है। इस लिए हम सब उन्हें धर्मप्रचार और शासन के समर्थन से बड़ी कड़ाई से रोके रहते हैं। उनकी एक चिढ़ हो तो बताएँ, सूची रंगारंग ही नहीं, इतनी दीनबंधुता से पूर्ण है कि इसमें हम जैसे बेकुसूर फकीर का नाम भी पर्याप्त ऊँची पोजीशन पर शामिल रह चुका है। बाद में हम से यह पोजीशन बैगन के भुर्ते ने छीन ली और उससे जैकलीन कैनेडी के दूल्हा ओनासिस ने हथिया ली। मिर्जा को जो चीज आज पसंद है कल वह दिल से उतर जाएगी और परसों तक यकीनन चिढ़ बन जाएगी। लोग हमें मिर्जा का हमदर्द और हमराज ही नहीं, साया भी कहते हैं लेकिन इस एकता और निकटता के बावजूद हम भरोसे से नहीं कह सकते कि मिर्जा ने आलू और अबुल कलाम आजाद को पहले-पहले अपनी चिढ़ कैसे बनाया और यह कि दोनों को तिहाई सदी से एक ही ब्रेकेट में क्यों बंद कर रखा है?

यासमन (चमेली) की खुशबू बाकी है

मौलाना के बारे में मिर्जा को जितना खुरचा, पूर्वाग्रह की कलई के नीचे विशुद्ध तार्किकता की कई मोटी-मोटी तहें निकलती चली गईं। एक दिन कई वार खाली जाने के बाद बोले, 'एक विशिष्ट शैली के निबंधकार ने नदवातुल-उलेमा (देवबंदियों का गुरुकुल) के संस्थापक के बारे में लिखा है कि शिबली पहला यूनानी था जो मुसलमानों में पैदा हुआ। इस बात को मुझे उस कथन से पूरा करने दीजिए कि यूनानियों के इस इस्लामी अनुभाग में अबुल कलाम आखिरी लेखक था जिसने उर्दू लिपि में अरबी लिखी।' हमने कहा, 'उनके मोक्ष के लिए यही काफी है कि उन्होंने मजहब में दर्शन का रस घोला। उर्दू को अरबी का दर्द और गूँज प्रदान की।' फरमाया, 'उनके गद्य का

अध्ययन ऐसा है जैसे दलदल में तैरना। इसीलिए मौलाना अब्दुल हक उन्हें सार्वजनिक रूप से उर्दू का दुश्मन कहते थे। बुद्धि और ज्ञान अपनी जगह मगर इसको क्या कीजिए कि वह अपने अहम और उर्दू पर आखिरी समय तक नियंत्रण नहीं रख पाए। कभी-कभार रमजान में उनकी कुरआन की व्याख्या पढ़ता हूँ तो (अपने दोनों गालों पर थप्पड़ मारते हुए, खुदा अपने कहर से बचाए) महसूस होता है जैसे कलामुल्लाह (अल्लाह की वाणी) के पर्दे में अबुल कलाम बोल रहा है।' हमने कहा, 'लानत। उस बुजुर्ग की की हुई और न की हुई सारी खताएँ तुम्हें सिर्फ इस आधार पर माफ कर देनी चाहिए कि तुम्हारी तरह वह भी चाय के रसिया थे। क्या नाम था, उनकी पसंदीदा चाय का? अच्छा-सा नाम था। हाँ, याद आया। व्हाइट जैसमीन। यासमन सफेद।'

खिल उठे। बोले, 'मौलाना अबुल कलाम 'आजाद' का पेय भी उनके प्रेय की तरह था। उन्होंने टूटी हुए मूर्तियों को जोड़-जोड़ कर ऐसा ईश्वर गढ़ने की कोशिश की जो सोमनाथ के भक्तों को भी मान्य हो। यूनानी दर्शन की ऐनक से जब उन्हें धर्म में संसार और ईश्वर में खेवनहार नजर आने लगा तो वह मुसलमान हो गए और सच्चे दिल से अपने-आप पर ईमान ले आए। इस तरह यह चीनी चाय महज इसलिए उनके दिल को भा गई कि इसमें चाय के बजाय चमेली के गजरे की लपट आती है। हालाँकि कोई आदमी जो चाय पीने का जरा भी सलीका रखता है, इस लिए चाय पीता है कि इसमें चाय की - फकत चाय की - महक आती है ना कि चमेली के तेल का भभका!'

हमने कहा, 'आश्चर्य तुम इस बाजारी जुबान में इस आनंददायक पेय का मजाक उड़ा रहे हो, जो मौलाना के कथनानुसार बागी प्रवृत्ति को मस्ती की और दुखमय चिंता को चैन की दावत दिया करती थी।' इस जुमले से ऐसे भड़के कि भड़कते चले गए। लाल-पीले होकर बोले, 'तुमने लिफ्टन कंपनी का प्राचीन विज्ञापन, चाय सर्दियों में गर्मी और गर्मी में ठंडक पहुँचती है, देखा होगा। मौलाना ने यहाँ इस वाक्य का अनुवाद अपने प्रशंसकों की आसानी के लिए अपनी जुबान में किया है!' बहस और दिल तोड़ने का यह सिलसिला काफी देर तक चलता रहा लेकिन और अधिक धर्म-विरुद्ध अभिव्यक्ति करके हम अपना 'इह' और 'उह' लोक नष्ट करना नहीं चाहते। इसलिए इस पूर्व कथन के बाद मिर्जा की दूसरी चिढ़ यानी आलू की ओर आते हैं।

यह दाँत सलामत हैं जब तक

मिर्जा का 'बॉस' दरअसल दस साल बाद पहली बार तीन दिन की छुट्टी पर जा रहा था और मिर्जा ने अपने सलाहकारों और शुभचिंतकों को मुक्तिउत्सव मनाने के लिए बीच-लकजरी होटल में लंच पर न्योत रखा था। वहाँ हमने देखा कि समुद्री कछुए का शोरबा सुड़-सुड़ पीने के बाद मिर्जा मुसल्लम केकड़े (मुसल्लम का अर्थ है स्वर्गीय की पूरी टाँगें, खप्पर, आँखें और मूँछें प्लेट पर अपने प्राकृतिक रूप में दिखाई दे रही थीं) पर टूट पड़े। हमने कहा, 'मिर्जा! हमने तुम्हें खुरों के चटपटे सरेश में डुबो-डुबो कर, चहका मारती तंदूरी रोटी खाते देखा है जिसे तुम दिल्ली के निहारी पाए कहते हो। मुफ्त का मिल जाए तो सड़ा-सा गोश्त यूँ निगलते हो जैसे नाक तुम्हारे है ही नहीं और तो और रंगामाटी में चकमा जनजाति की एक नवयौवना के हाथ से नशीला कसैला जैकफ्रूट लपलप खाते हुए फोटो खिंचवा चुके हो और इस के बाद पेशावर में चिरौटों के पकौड़े खाते हुए भी पकड़े जा चुके हो। तुम्हारे खान-पान की नियम-संहिता में हर चीज खाने के लायक है सिवाय आलू के!'

खिल उठे, देववाणी की, 'हमने आज तक किसी मौलवी - किसी वर्ग के मौलवी की तंदुरुस्ती खराब नहीं देखी न किसी मौलवी का हार्ट फेल होते सुना। जानते हो क्या वजह है? पहली वजह तो यह है कि मौलवी व्यायाम नहीं करते दूसरी यह कि सादे आहार और सब्जी से दूर रहते हैं।'

फलाँ होटल और आलू का प्रसाद

तरकारी न खाने के लाभ हमें याद कराने के उद्देश्य से मिर्जा ने अपने प्रयोगमय जीवन के उन कुंजों के रहस्य से भी परदा उठाया जो आलू से रासायनिक रूप से प्रभावित हुए थे। कहानी आलू की है उन्हीं का मिथ्या-विवरण रुचिकर होगा -

तुम्हें तो याद होगा। मैं दिसंबर 1951 में मांटगुमरी गया था। पहली बार कराची से बाहर जाने की मजबूरी आ पड़ी थी। मांटगुमरी के प्लेटफार्म पर उतरते ही महसूस हुआ जैसे सर्दी से खून रगों में जम गया है। उधर चाय के स्टाल के पास एक बड़े मियाँ गर्म चाय के बजाय माल्टे का रस लिए चले जा रहे थे। उस खुदा के बंदे को देखकर आँख और दाँत बजने लगे। कराची की सदा की घुटन और बिना खिड़की वाला कमरा बहुत याद आए, कुली और तांगे वाले से परामर्श के बाद एक होटल में बिस्तरा लगा दिया, जिसका अस्ली नाम आज तक मालूम न हो सका लेकिन मैनेजर से लेकर मेहतर तक सभी उसे 'फलाँ होटल' कहते थे। कमरा सिर्फ एक था जिस पर कोयले से अंग्रेजी और उर्दू अक्षरों में 'कमरा नंबर - 1' लिखा था। फलाँ होटल में सिर्फ यह कि कोई दूसरा कमरा नहीं था बल्कि निकट या दूर भविष्य में उसके निर्माण की कोई संभावना भी दिखाई नहीं देती थी, क्योंकि होटल के तीन तरफ म्यूनिस्पैल्टी की सड़क थी और चौथी तरफ इसी संस्था की मुख्य नाली जो शहर की गंदगी को शहर में ही रखती थी, जंगल तक नहीं फैलने देती थी। इस प्रायदीप कमरा नं - 1 में अटैचड बाथरूम तो नहीं था, अलबत्ता एक अटैचड तंदूर जरूर था जिससे कमरा इस कड़ाके की ठंड में ऐसा गर्म रहता था कि बड़े-बड़े 'सेंट्रली हीटेड' होटलों को मात देता था। पहली रात हम बनियान पहने सो रहे थे कि तीन बजे सुबह जो आँच से अचानक आँख खुली तो देखा इमामदीन बैरा हमारे सिरहाने हाथ भर लंबी रक्तंरंजित छुरी लिए खड़ा है। हमने फौरन अपनी गरदन पर हाथ फेर कर देखा। फिर चुपके से बनियान में हाथ डाल कर पेट पर चिकोटी काटी और फिर कलमा पढ़ के इतनी जोर से चीख मारी कि इमामदीन उछल पड़ा और छुरी छोड़कर भाग गया। थोड़ी देर बाद दो-तीन बंदे समझा-बुझाकर उसे वापस लिवा लाए। उसके होश जब ठीक हुए तो मालूम हुआ कि छुरी से वह नन्हीं-नन्हीं 'बटेरें' हलाल कर रहा था। हमने गर्वीले स्वर में कहा, 'अक्लमंद आदमी। यह पहले क्यों नहीं बताया?' उसने फौरन अपनी भूल की क्षमा माँगी और वादा किया कि आगे से वह पहले ही बता दिया करेगा कि छुरी से बटेर की गरदन ही रेतना चाहता है। साथ ही साथ उसने आसान पंजाबी में यह भरोसा भी दिलाया कि आइंदा वह चीख सुन कर डरपोकों की तरह भयभीत नहीं हुआ करेगा।

हमने धीरे से पूछा, 'तुम इन्हें हलाल क्यों कर रहे थे!' बोला, 'जनाब! जिला मांटगुमरी में जानवर को हलाल करके खाते हैं। आप भी खाएँगे?' हमने थोड़ी कटुता से जवाब दिया, 'नहीं!' और रेलवे टाइमटेबिल से पंखा झलते हुए सोचने लगे कि जो लोग दूध-पीते बच्चों की तरह जल्दी सोते और जल्दी उठते हैं, वह इस रहस्य को क्या जानें कि नींद का अस्ली मजा और सोने का सही आनंद उस समय है जब आदमी उठने के निश्चित समय पर सोता रहे कि उसी मुहूर्त में नींद के मजे अवतरित होते हैं। इसलिए किसी जानवर को सुबह देर तक सोने की योग्यता प्रदान नहीं की गई। अपने सर्वोच्च प्राणी होने पर खुद को बधाई देते देते सुबह हो गई और हम पूरी और आलू-छोले का नाश्ता करके अपने काम पर चले गए। थोड़ी देर बाद आमाशय में गड़बड़ महसूस हुई। इसलिए दोपहर को आलू-पुलाव और रात को आलू और पनीर का कोरमा खाकर तंदूर की गरमाहट में ऐसे सोए कि सुबह चार बजे बैरे ने हमें अपने विशिष्ट ढंग से जगाया, जिसका विवरण आगे आएगा।

नाशते से पहले हम कमीज का बटन नोचकर पतलून में टाँकने की कोशिश कर रहे थे कि सुई खच से उँगली में 'भुँक गई।' बिलकुल बेइरादा ढंग से हमने उँगली अपनी कमीज की जेब पर रखकर जोर से दबाई मगर जैसे ही गलती का अहसास हुआ तो खून के गीले धब्बे पर सफेद पाउडर छिड़क कर छुपाने लगे और दिल में सोचने लगे कि अल्लाह ताला ने बीवी भी क्या चीज बनाई है लेकिन इनसान बड़ा ही कृतघ्न है। अपनी बीवी की कद्र नहीं करता। इतने में बैरा स्थानीय देशी घी में तली पूरियाँ ले आया। मांटगुमरी का अस्ली घी पाकिस्तान में सबसे अच्छा होता है। इसमें चार फीसदी घी होता है। बैरे ने नियमानुसार अपनी आलसी आँख के इशारे से हमें कुर्सी पर बैठने को कहा और जब हम इस पर '3' के अंक की तरह तिहरे हो कर बैठ गए तो हमारी जाँघों पर गीला तौलिया बिछाया और उस पर नाशते की ट्रे जमा कर रख दी।

मुमकिन है कुछ शक्की आदत के पाठकों के मन में यह प्रश्न उठे कि अगर कमरे में कोई मेज या स्टूल नहीं था तो बान की चारपाई पर नाश्ता क्यों न कर लिया। शिकायतन नहीं सूचनार्थ निवेदन है कि जैसे ही मांटगुमरी का पहला मुर्गा पहली बाँग देता, बैरा हमारी पीठ और चारपाई के मध्य से बिस्तर एक ही झटके में घसीट लेता था। अपने बाजुओं की ताकत और रोजमर्रा के अभ्यास से उसने इस काम में इतनी सफाई और महारत पैदा कर ली थी कि एक बार सिरहाने खड़े होकर जो बिस्तर घसीटा तो हमारी बनियान तक उतर कर बिस्तर के साथ लिपट कर चली गई और हम खुरी चारपाई पर केले की तरह छिले हुए पड़े रह गए। फिर चारपाई को पाँयती से उठा कर हमें सर के बल फिसलाते हुए कहने लगा, 'साब! फर्नीचर खाली करो!' कारण यह कि इस फर्नीचर पर सारे दिन 'प्रोप्राइटर एंड मैनेजर फलॉ होटल' का दरबार लगा रहता था। एक दिन हमने इस असुविधा पर विरोध प्रकट किया तो होटल के मैनेजर ने नियम-कानून का एक पैंसिल लिखा घोषणापत्र हमें दिखाया गया जिसके मुख पृष्ठ पर 'जाब्ता फौजदारी फलॉ होटल' अंकित था। इसकी धारा नौ (9) के अंतर्गत सुबह की अजान के बाद 'पसिंजर' को चारपाई पर सोने का हक नहीं था। अलबत्ता मरणासन्न मरीज, जच्चा और ईसाई व यहूदी व्यक्तियों पर यह लागू नहीं था लेकिन आगे चलकर धारा 28 (ब) ने इनसे भी यह रिआयतें छीन ली थीं। उसके अनुसार जच्चा और मरणासन्न रोगी को जच्चगी और मौत से तीन दिन पहले तक, होटल में आने की अनुमति नहीं थी। 'अवहेलना करने वालों को बैरों के हवाले कर दिया जाएगा।'

हमने निगाह उठाकर देखा तो उसे झाड़न मुँह में ठूँसे बड़े अदब से हँसते हुए पाया। हमने पूछा, 'हँस क्यों रहे हो?' कहने लगा, 'वो तो मनेजर साब हँस रहे थे। बोलते थे, हमको लगता है कि कराची का पसिंजर बटेर को तिलियर समझकर नहीं खाता!'

हर चीज के दो पहलू हुआ करते हैं। एक अँधेरा दूसरा, अधिक अँधेरा। ईमान की बात है इस पहलू पर हमारी नजर भी नहीं गई थी और अब इस गलतफहमी को दूर करना हमारे लिए अनिवार्य हो गया था। फूली हुई पूरी का निवाला प्लेट में वापस रखते हुए हमने रूँधी हुई आवाज में इस धोखेबाज चिड़िया की कीमत पूछी। बोला, 'जिंदा या मुर्दा?' हमने जवाब दिया कि हम तो इस शहर में अजनबी हैं। फिलहाल मुर्दे को ही प्राथमिकता देंगे। कहने लगा, 'दस आने प्लेट मिलती है। एक प्लेट में तीन बटेरें होती हैं मगर जनाब के लिए तो एक ही रास काफी होगी।'

कीमत सुनकर हमारे मुँह में भी पानी भर आया। फिर यह भी था कि कराची में मवेशियों का गोशत खाते-खाते जी भर गया था। लिहाजा मन ही मन यह प्रण कर लिया कि जब तक मांटगुमरी का दाना-पानी भाग्य में है, चिड़ियों के अलावा किसी चीज को हाथ नहीं लगाएँगे। लंच पर भुनी हुई बटेर, चाय के साथ तंदूर में सेंकी बटेर मुसल्लम,

सोने से पहले बटेर का सूप। इस आवासीय तंदूर में ठहरे हुए हमें चौथा दिन था और तीन दिन से यही ठाठ थे। चौथी सुबह हम जाँघों पर तौलिया और तौलिए पर ट्रे रखे बटेर का नाश्ता कर रहे थे कि बैरे ने फिर झाड़न मुँह में ठूस ली। हमने चमक कर पूछा, 'अब क्या बात है?' कहने लगा, 'कुछ नहीं। मनेजर साब हँस रहे थे। बोलते थे कमरा नंबर एक के हाथ बटेर लग गई है।' हम ने व्यंग्य से अटैचड तंदूर की तरफ इशारा करते हुए पूछा, 'तुम्हारे फलॉ होटल में और कौन से जन्नत के खाने उतरते हैं?' बोला, 'हराम गोशत (सूअर) के सिवा दुनिया भर की डिश मिलती हैं। जो चाहें आर्डर करे जनाब। ...आलू-मटर, आलू-गोभी, आलू-मेथी, आलू-गोश, आलू-मच्छी, आलू-बिरयानी और खुदा तुम्हारा भला करे आलू-कोफता, आलू-बड़ियाँ, आलू-समोसा, आलू का रायता, आलू का भुरता, आलू-कीमा...', हमने रोक कर पूछा, 'और स्वीट डिश?' बोला, 'आलू की खीर' हमने कहा, 'भले आदमी तुमने आलू का पहाड़ा सुना दिया। तुम्हारे होटल में कोई ऐसी डिश भी है जिसमें आलू का नाम न आए।' विजयी मुस्कान के साथ उसने गर्वोक्ति की, 'क्यों नहीं। पोटेटो कटलेट हाजिर करूँ जनाब?'

किस्सा दरअसल यह था कि एक साल पहले उक्त होटल के मालिक ने हेडकांस्टेबिल के ओहदे से अवकाश प्राप्त करके, खेती की तरफ रुख किया और जमीन से भी पुलिसिया हथकंडों से सोना उगलवाना चाहा मगर हुआ यह कि आलू की खेती में पच्चीस साल की बुद्धिमत्ता से जमा की हुई रिश्वत ही नहीं बल्कि पेंशन और प्राविडेंट फंड भी डूब गए -

जमीं खा गई बेईमाँ कैसे कैसे

बचाए हुए आलुओं से होटल के धंधे का डोल डाला जिन्हें उनके बेहतरीन दोस्त भी ताजा नहीं कह सकते थे। सुना है बटेरें भी इसी जमाने में पास-पड़ोस के खेतों से पकड़ ली थीं।

आलू निंदा का संवाद

'मिर्जा यह बटेर-कथा अपनी जगह, मगर यह सवाल अभी बाकी है कि तुम आलू क्यों नहीं खाते?' हमने फिर सवाल किया।

'नहीं साहब! आलू खाने से आदमी आलू जैसा हो जाता है। कोई अंग्रेज औरत जिसे अपना 'फिगर' और फ्यूचर जरा भी प्यारा है, आलू को छूती तक नहीं। सामने स्विमिंग पूल में पैर लटकाए, यह मेम जो मिस्र का बाजार खोले बैठी है, इसे तुम आलू की एक हवाई भी खिला दो तो सेवक इसी हौज में डूब मरने को तैयार है। यह कॉफी में चीनी के चार दाने भी डालती है या कोई इसे मीठी नजर से भी देख ले, तो उसकी कैलोरीज का हिसाब अपनी धोबी की कॉपी में रखती है,' उन्होंने जवाब दिया।

'मिर्जा क्या मेमें भी धोबी की कॉपी रखती हैं?'

'हाँ! उनमें भी जो कपड़े पहनती हैं, वह रखती हैं।'

हमारी ज्ञानपिपासा बढ़ती देखकर मिर्जा ने आलू की निंदा में तर्कों और दृष्टांतों का ढेर लगा दिया। जहाँ कहीं तर्क के टाट में जरा-सा छेद दिखा वहाँ मिसाल की मखमल का पैवंद इस तरह लगाया कि जी चाहता था कुछ और सूराख होते। कहने लगे, 'कर्मल शेख कल रात ही यूरोप से लौटे हैं। कह रहे थे यूरोप की और हमारी महिलाओं में

बड़ा अंतर होता है। यूरोप में जो लड़की दूर से सत्रह बरस की मालूम होती है वह पास पहुँच कर सत्तर बरस की निकलती है और हमारे यहाँ जो महिला दूर से सत्तर बरस की दिखलाई पड़ती है वह पास आने पर सत्रह बरस की निकलती है मगर यह रखरखाव इंग्लैंड में ही देखा कि जो उम्र दूर से नजर आती है वही पास से। चुनांचे कमर-कमर तक बालों वाली जो लड़की दूर से उन्नीस साल की नजर आती है वह पास जाने पर भी उन्नीस ही साल का 'हिप्पी' निकलता है। खैर, सुनी-सुनाई बातों को छोड़ो। इस मेम का मुकाबला अपने यहाँ की आलूखोर महिलाओं से करो। उधर फानूस के नीचे जो श्रीमतीजी लैटरबक्स बनी अकेले-अकेले गपागप गोश्त के स्टेक और आलू उड़ा रही हैं, अमाँ गँवारों की तरह उँगली से इशारा मत करो! हाँ हाँ! वही अरे साहब क्या चीज थी। लगता था एक अप्सरा सीधी अजंता की गुफाओं से चली आ रही है और क्या काया थी। कहते हुए जुबान भी सौ-सौ बल खाती है -

चलती तो कदम यूँ रखती थी दिन जैसे किसी के फिरते हैं

'पहले-पहल मार्च 1951 में देखा था। वो सुबह याद आती है तो कोई दिल पर दस्तक-सी देने लगता है और अब? अब तुम्हारी आँखों के सामने है। बारह साल पहले की Go-Go-Girl मांस के ढेर में कहीं खो गई है। इश्क और आलू ने इन हालों को पहुँचा दिया।'

हमने कहा, 'मारो घुटना फूटे आँख।' बोले, 'अहले-जबान के मुहावरे उन्हीं के खिलाफ अंधाधुंध इस्तेमाल करने से पहले पूरी बात को सुन लिया करो। हमैरा वह आइडियल औरत थी, जिसके सपने हर स्वस्थ आदमी देखता है - यानी शरीफ खानदान, खूबसूरत और आवारा! उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन फर्राटे से बोलती थी, मगर किसी भी जुबान में 'न' कहने की योग्यता नहीं रखती थी। हुस्न और जवानी पर एकाधिकार था। यह आनंददायी विशेषताएँ जब स्वप्न बन गईं और पलकों के साये गहरे हो चले तो मजबूर होकर एक अदद शादी भी कर ली मगर एक महीने के अंदर ही दूल्हा ने मैरिजड्रेस के कमरबंद का फंदा गले में डाल कर आत्महत्या कर ली।'

जा तुझे कशमकशे-अकद से आजाद किया

करिश्मे कार्बोहाइड्रेट के

इसी साल जून में मिर्जा अपने दफ्तर में आ गए। क्रिस्टी का नया नाविल पढ़ते-पढ़ते अचानक बेहोश हो गए। होश आया तो खुद को आरामदेह क्लिनिक में कंपनी के खर्च पर अकेला पाया। उन्हें इस बात से बहुत निराशा हुई कि जिस जगह पर उन्हें दिल का तीखा दर्द महसूस हुआ था, दिल उससे बलिश्त-भर दूर निकला। डॉक्टर ने उनका भ्रम दूर करने के लिए उँगली रखकर बताया कि दिल यहाँ नहीं, यहाँ होता है। उसके बाद उन्हें दिल का दर्द दिल ही में महसूस होने लगा।

जैसे ही उनके कमरे से 'रोगी से मिलना मना है' की प्लेट हटी, हम जीनिया का गुलदस्ता लेकर कुशल-क्षेम को पहुँचे। दोनों एक दूसरे की शकल देखकर खूब रोए। नर्स ने आकर दोनों को चुप कराया और हमें अलग ले जाकर चेतावनी दी कि इस अस्पताल में बीमार-पुर्सी करने वालों को रोना और कराहना मना है। हमने तुरंत स्वयं पर कृतिम प्रसन्नता ओढ़ के मिर्जा को परेशान होने से मना किया और नसीहत की कि मरीज को अल्लाह की कृपाओं

से मायूस नहीं होना चाहिए। वह चाहे तो तिनके में जान डाल दे। हमारी नसीहत का वांछित बल्कि कुछ अधिक ही असर हुआ।

'तुम क्यों रोते हो पगले?', हमने उनके माथे पर हाथ रखते हुए कहा।

'यूँ ही विचार आ गया कि अगर तुम मर गए तो मेरी खैरियत पूछने कौन आया करेगा!' मिर्जा ने अपने आँसुओं को नर्स के रूमाल में सुरक्षित करते हुए रोने का कारण बताया।

बीमारी का अस्ली कारण डॉक्टरों के विचार में चिंता की अधिकता थी जिसे मिर्जा की भाषाविद्वता ने कार्य की अधिकता बना दिया था। खैर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मिर्जा चाय के साथ आलू के चिप्स उड़ा रहे थे। हमने कहा, 'मिर्जा! आज तुम रंगे हाथों पकड़े गए।' बोले, और ऐसी आवाज में बोले जैसे किसी अंधे कुएँ के पेंदे से बोल रहे हैं, 'डॉक्टर कहते हैं तुम्हारा वजन बहुत कम है। तुम्हें आलू और ऐसी चीजें खूब खानी चाहिए जिनमें 'स्टार्च' और 'कार्बोहाइड्रेट' की अधिकता हो। साहब! आलू एक वरदान है, कम-से-कम साइन्स के हिसाब से। हमने कहा 'तो दबादब आलू ही खाकर ठीक हो जाओ।' फरमाया, 'ठीक तो मुझे वैसे भी होना पड़ेगा। इसलिए कि यह नर्स इस कदर बदसूरत हैं कि कोई आदमी जो अपने मुँह पर आँखें रखता है, यहाँ अधिक दिनों तक पड़ा नहीं रह सकता।'

वो नए गिले, वो शिकायतें, वो मजे-मजे की हिकायतें

क्लीनिक से निकलते ही मिर्जा ने अपनी तोपों का मुँह फेर दिया। निंदाप्रेमी के दिन-रात अब आलू के गुणगान और स्तुति में कटने लगे। एक समय था कि जब वियतनाम पर अमरीकी बमवर्षा की खबरें पढ़कर मिर्जा पछताते कि कोलंबस ने अमरीका की खोज करके बड़ी नादानी की मगर अब तरंग में आते तो आलू की गदराई हुई गोलाइयों पर हाथ फेरते हुए कहते, 'साहब! कोलंबस नर्क नहीं जाएगा। उसे वापस अमेरिका भेज दिया जाएगा। सभ्य जगत पर अमरीका के दो अहसान हैं! तंबाकू और आलू। सो तंबाकू का बेड़ा तो कैसर ने डुबो दिया। मगर आलू का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। जो मुल्क जितनी गरीबी में घिरेगा, उतना ही उसमें आलू और धर्म का चलन बढ़ेगा।'

और कभी ऐसा भी होता कि अगर सामने वाला साइन्सी हथियारों से परास्त नहीं होता तो शायरी की मार से वहीं ढेर कर देते। 'साहब, ज्यों-ज्यों समय बीतता है, यादाश्त कमजोर होती जाती है। पहले अपना जन्मदिन भूले, फिर महीना और अब तो सन भी याद नहीं रहती। बेगम या किसी बुरा चाहने वाले से पूछना पड़ता है। अक्सर तुम्हारे लतीफे तुम्हें ही सुनाने बैठ जाता हूँ। वह तो जब तुम पेट पकड़ कर हँसने लगते हो तो शक होता है कि लतीफा तुम्हारा ही होगा। बेगम अक्सर कहती हैं कि काकटेल पार्टियों और डांस में तुम्हें यह तक याद नहीं रहता कि तुम्हारी शादी हो चुकी है। गरज यह कि याददाश्त बिल्कुल चौपट हो चुकी है। अब यह आलू की माया नहीं तो और क्या है कि आज भी किसी बच्चे के हाथ में भूभल में सिका हुआ आलू नजर आ जाए तो उसकी परिचित महक से बचपन की एक-एक घटना याद आ जाती है। मैं टकटकी बाँध कर उसे देखता हूँ। उससे फूटती हुई सौंधी भाप के पीछे से एक भूली बिसरी आकृति उभरती है। धूल से अटे बालों के पीछे शरारत से चमकती आँखें, कुर्ता बटनों से आजाद, गले में गुलेल। नाखून दाँतों से कुतरे हुए। पतंग उड़ाने वाली उँगली पर डोर की रक्तरंजित लकीर, बैरी

समय हौले-हौले अपनी केंचुली उतारता चला जाता है और मैं नंगे पाँव तितलियों के पीछे दौड़ता, रंग-बिरंगे बादलों में रेजगारी के पहाड़, परियों और आग उगलते अजगरों को बनते बिगड़ते देखता खड़ा रह जाता हूँ।

'यहाँ तक कि आलू खत्म हो जाता है।', हमने साबुन के बुलबुले पर फूँक मारी।

सँभले। समय-चक्र को अपने बचपन के पीछे दौड़ाते-दौड़ते लगाम खींची और गाली देने के लिए गला साफ किया। बोले, '...खुदा जाने शासन आलू को कानून के बल पर राष्ट्रीय भोज बनाने से क्यों डरता है। सस्ता इतना कि आज तक किसी सेठ को इसमें मिलावट करने का ध्यान तक नहीं आया। स्कैंडल की तरह स्वादिष्ट और शीघ्र पच जाने वाला। विटामिन से भरपूर, सुस्वाद, साधुई रंगत, छिलका नारी के वसन जैसा यानी नाम भर - साफ इधर से नजर आता है उधर का पहलू

अपना हाथ, अपना मुँह

मिर्जा पर अब यह झक सवार थी कि अगर चंदन का घिसना और लगाना सरदर्द के लिए लाभकारी है तो उसे उगाना कहीं अधिक लाभकारी होना चाहिए। वैधत्व और खेती के जिन काँटों भरे रास्तों पर मस्ताना रूप में चल कर वह इस नतीजे पर पहुँचे, जिनका उल्लेख किया जाए तो आयुर्वेद पर एक पूरी पोथी तैयार हो सकती है। हम चूँकि हकीमों की लगी-लगाईं रोजी पर हाथ डालना नहीं चाहते, इसलिए दो-चार चिनगारियाँ छोड़ कर दूर खड़े हो जाएँगे।

एक दिन हमसे पूछा, 'बचपन में खटमिठ्टे बेर, मेरा मतलब है झड़बेरी के बेर खाए हैं?' निवेदन किया, 'जी हाँ, हजार बार और इतनी ही बार खाँसी भी हुई है।' फर्माया, 'बस यही फर्क है खरीद के खाने और अपने हाथ से तोड़ कर खाने में। अनुभव की बात बताता हूँ। बेर तोड़ते समय उँगली में काँटा लग जाए और पोर पर खून की बूँद थरथराने लगे तो आस-पास की झाड़ियों के सारे बेर मीठे हो जाते हैं।'

'साइंटिफिक बुद्धि में यह बात नहीं आती।' हमने कहा। हमारा यह कहना था कि जियादा उबले हुए आलू की तरह तड़खते-बिखरते चले गए। कहने लगे, 'साहब! कई हकीम यह करते हैं कि जिसका मेदा (पाचाशय) कमजोर हो उसे ओझड़ी खिलाते हैं। जिसके गुर्दों की क्रिया ठीक न हो उसे गुर्दे और जो कमजोर जिगर का है उसे कलेजी खिलाते हैं। अगर मैं हकीम होता तो तुम्हें भेजा ही भेजा खिलाता।'

लेखक के कमजोर प्रत्यांग की तरफ संकेत करके आकाशवाणी की, 'अब आलू खुद पैदा करने का कारण भी सुन लो। पिछले साल उतरती बरसात की बात है। मैं टोबा टेक सिंह में काले तीतर की तलाश में कच्चे में बहुत दूर निकल गया मगर एक तीतर नजर न आया, जिसका कारण गाइड ने यह बताया कि शिकार के लिए आपके पास डिप्टी कलक्टर का परमिट नहीं है। वापसी में रात हो गई और हमारी 1945 मॉडल जीप पर दमे का दौरा पड़ा। कुछ क्षणों के बाद वह बुढ़िया तो एक गड्ढे में आखिरी हिचकी लेकर चुप हो गई मगर अपने पंचतत्व के पिंजरे में हमारी आत्मा के पंछी को फड़फड़ाता छोड़ गई। हम स्टेयरिंग पर हाथ रखे दिल ही दिल में खुदा का शुक्र अदा कर रहे थे कि तेरे करम से जीप गड्ढे में गिरी वरना अगर कहीं इसकी जगह कुआँ होता तो इस वक्त तेरा शुक्र कौन अदा करता?

न कभी जनाजा उठता, न कहीं मजार होता

'हमारे ऋणदाताओं पर क्या गुजरती? हमारे साथ रकम के डूबने पर उन्हें कैसे सब्र आता कि अभी तो हमारे प्रोनोट की सियाही भी नहीं सूखी थी? हम अभी उनके और उनके छोटे-छोटे बच्चों के सर पर हाथ फेर ही रहे थे कि एक किसान बकरी का अबोध बच्चा गरदन पर मफलर की तरह लपेटे इधर से गुजरा। हमने आवाज देकर बुलाया। अभी हम इतनी ही भूमिका बाँध पाए थे कि हम कराची से आए हैं और काले तीतर की तलाश में थे कि वह गड्ढे की तरफ इशारा करके कहने लगा कि तहसील टोबा टेक सिंह में तीतर पानी में नहीं रहते। हमारे गाइड ने हमारी आपात्कालीन आवश्यकताओं को अभिव्यक्ति दी तो वह ऐसा पसीजा कि अपनी बैलगाड़ी लाने और उसे जीप में जोत कर अपने घर ले जाने पर अड़ गया, और वह भी बिना मजदूरी के। साहब! अंधा क्या चाहे...?'

'दो आँखें।' हमने झट बात उचक ली।

'गलत, बिल्कुल गलत अगर उसकी अक्ल भी दृष्टि के साथ नष्ट नहीं हुई है तो अंधा दो आँखें नहीं, एक लाठी चाहता है।' मिर्जा ने कहावत को संशोधित कर दिया।

हम हुंकारा भरते रहे, कहानी चलती रही, 'थोड़ी देर में वह बैलगाड़ी ले आया जिसके बैल अपनी जवानी को बहुत पीछे छोड़ आए थे। अदबान की रस्सी से जीप बाँधते हुए उसने बैलगाड़ी में अपने बराबर में अगली सीट पेश की और डेढ़ दो मील दूर किसी धुँधले बिंदु की ओर इंगित करते हुए तसल्ली देने लगा।

'ओ जेड़ी नर्वी लालटैन बल्दी पई ए ना! ओ ही मेरा घर वे'

घर पहुँचते ही उसने अपनी पगड़ी उतार कर चारपाई के सेरवे वाले पाए को पहना दी। मुँह पर पानी के छपके दिए और गीले हाथ सफेद बकरी की पीठ से पोंछे। बरसात की चाँदनी में उसके कुर्ते पर बड़ा-सा पैवंद दूर से नजर आ रहा था और जब थूनी पर लटकी हुई नई लालटेन की लौ भड़की तो उस पैवंद में लगा हुआ एक और पैवंद नजर आने लगा जिसके टाँके अभी उसकी मुस्कराहट की तरह उजले थे। उसकी घर वाली ने खुरी चारपाई पर खाना चुनकर ठंडे मीठे पानी के दो धात के गिलास पट्टी पर बान छिदरा के जमा दिए। मेजबान के अनुरोध पर और भूख की पुकार का जवाब देने के लिए जो हमने सुखी चुनाई शुरू की तो यकीन मानो पेट भर गया मगर जी नहीं भरा। राल निगलते हुए हमने पूछा! 'चौधरी, इससे मजेदार आलू का साग हमने आज तक नहीं खाया। क्या तरकीब है इसे पकाने की?'

बोला, 'बादशाहो! पहले तो इक कल्ले जमीन विच पंज मन अमरीका दी खाद पाओ। फेर...'

किस्सा आलू की खेती का

बात अगर अब भी गले नहीं उतरी तो 'खुद उगाओ, खुद खाओ' सिलसिले की तीसरी कहानी सुनिए जिसका पाप-पुण्य मिर्जा की गरदन पर है कि वही इसके लेखक हैं और वही हीरो भी हैं। कथा इस तरह शुरू होती है -

साहब! बाजार से सड़े गले आलू खरीद कर खाने से तो यह बेहतर है कि आदमी चने भसकता फिरे। परसों शाम हम खुद आलू खरीदने गए। शुबराती की दुकान से। अरे साहब! वही अपना शुबराती जिसने चौदह-पंद्रह साल से वह साइन बोर्ड लगा रखा है :

मालिक दुकान शुबराती महाजिर

(अगर कोई दावा करे तो झूठा है)

बजगह ग्राम कांठ, बड़ी जामा मस्जिद के पीछे

पोस्ट आफिस व कस्बा - बागपत, जिला मेरठ

वर्तमान निवासी कराची

हमने एक आलू दिखाते हुए कहा, 'मियाँ शुबराती! वर्तमान निवासी कराची! तुम्हारे आलू तो पिलपिले हैं। खराब लगते हैं - बोला, 'बाउजी! खराब निकलें तो काले नाग (उसके गधे का नाम) के मूत से मूँछ मूँड़ देना। दरअस्तल में यह पहाड़ी आलू है।' हमने कहा, 'हमें तो कराची से पाँच सौ मील तक कोई पहाड़ नकशे में दिखाई नहीं पड़ता, 'बाउजी! तुम्हारे नकशे में और कौन सी, फल-फलारी कराची में दिखाई पड़े है? यह रुपए छटाँक का साँची पान जो तुम्हारे गुलाम के कल्ले में बताशे की तरियों घुल रिया है, बजगह बंगाल से आ रिया है। याँ क्या दम-दुरुद रखा है। हालियत तो यह है कि बाउजी! कराची में मिट्टी तलक मलीर से आवे है। किस वास्ते कि इसमें ढाका से मँगा के घास लगा देंगे। जवानी कसम बाउजी! पिशावर के चौक यादगार में मुर्गा अजान देवे है तो कहीं जाके कराची वालों को अंडा नसीब होवे है।'

और एक खानदानी रईस ने बगीचों के शहर वाटिका-प्रधान कराची के दिल यानी हाउसिंग सोसायटी में आलू की खेती शुरू कर दी। अगरचे तुरंत पाँच मन अमरीकी खाद का बंदोबस्त न हो सका लेकिन मिर्जा का जोश-जुनूँ उन्हें उस स्तर पर पहुँचा चुका था जहाँ खाद तो खाद वह बिना खेत के भी खेती करने की सामर्थ्य रखते थे।

मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग और खेती बाड़ी! हमारा विचार है कि सारा खेत एयरकंडीशंड कर दिया जाए और ट्रैक्टर में राकिंग चेयर (झूला कुर्सी) डाल दी जाए तो मिर्जा शायद दो-चार घंटे के लिए खेती का व्यवसाय अपना लें जिसके बारे में उनका ज्ञानकोष बस इतना है कि उन्होंने सिनेमा के पर्दे पर क्लीनशेव एक्टरों को छाती पर नकली बाल चिपकाये, स्टूडियो के सूरज की धूप में, सिगरेट की पन्नी चढ़ी हुई दरांतियों से बाजरे के खेत में मक्का के भुट्टे काटते हुए देखा है। यह बताना शायद अनुचित न होगा कि इस कुछ साल पहले मिर्जा बागबानी का एक बहुत अतुलनीय और असफल प्रयोग करके हमें एक लेख का मसाला उपलब्ध करा चुके थे। उन्हें एक दिन अपने कोट का नंगा कालर देखकर अचानक ज्ञान प्राप्त हुआ कि होने को तो घर में अल्लाह का दिया सब कुछ है सिवाय रुपए-पैसे के लेकिन अगर बाग में गुलाब के गमले नहीं हैं तो जीवन बेकार है। उन्हें जिंदगी में अचानक एक कमी का अहसास होने लगा, जिसे सिर्फ अमरीकी खाद से पूरा किया जा सकता था।

अब जो आलू की खेती का जुनून सर पर सवार हुआ तो डेढ़-दो हफ्ते इस पर रिसर्च होती रही कि आलूबुखारे की तरह आलू के भी बीज होते हैं या कोयटा के गुलाब की तरह आलू की भी टहनी काट के साफ-सुथरे गमले में गाड़ दी जाती है। यह भी कि आलू पटसन की तरह घुटनों-घुटनों पानी माँगता है या अखरोट की तरह बिना मेहनत के जन्म-जन्मांतर तक फल देता रहेगा। अनुसंधान के बीच एक मुद्दा यह भी निकल आया कि बैंगन की तरह आलू भी डाल पर लटकेंगे या तुरई की बेल की तरह पड़ोसी की दीवार पर पड़े रहेंगे। प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस ने तो यह बिंदु भी उठाया कि अगर झगड़ा मिटाने के लिए यह मान लिया जाए कि आलू धरती से उपजते हैं तो डंठल का निशान कैसे मिटाया जाता है?

हौसले की पीछे मौत भी

फिर क्या था। कोयटा से पाक इंटरनेशनल एयरलाइन्स के माध्यम से सफेद गुलाब की कलमें मँगाई गईं। गमलों को खौलते पानी और फिनाइल से 'डिसइन्फैक्ट' किया गया। फिर कोयटा के नाजुक और नायाब गुलाब को कराची की टीमक और कीड़ों से सुरक्षित रखने के लिए दुरश्चरित्र बकरी की मँगनी के गर्म खाद में इतना ही अमरीकी खाद और अमरीकी खाद में बराबर का डी.डी.टी. पाउडर डाला गया। फिर कलमें लगाकर उबले हुए पानी से सुबह-शाम सिंचाई की गई और यह तथ्य है कि इन गमलों में कभी कोई कीड़ा नजर नहीं आया, और न ही गुलाब!

प्रोफेसर काजी अब्दुल कुदूस कुछ गलत तो नहीं कहते कि मिर्जा अगर बेवकूफी भी करते हैं तो इस कदर 'ओरीजनल' कि खुदा की कसम बिल्कुल आकाश से उतरी हुई मालूम होती है।

बहरहाल मिर्जा ने आलू की खेती के लिए जमीन यानी अपना लॉन (जिसकी अफ्रीकी घास की हरियाली ऐसी थी कि सिगरेट की राख झाड़ते हुए दिल दुखता था) तैयार किया। इस खेती के अनुभव के दौरान जहाँ बुद्धि ने साथ नहीं दिया वहाँ जोश से काम लिया। ऑफिस के चपरासियों, अपने पालतू खरगोश और मुहल्ले के लौंडे-लाड़ियों की मदद से दो ही दिन में सारा लॉन खोद फेंका। बल्कि इसके बाद भी काम जारी रहा, यहाँ तक कि दूसरी मंजिल के किरायेदारों ने हाथ जोड़ के खुदाई रुकवाई, इसलिए कि मकान की नींव नजर आने लगी थी।

स + क X मोजा = कमर / 32

कोयटा के गुलाब की तरह आलू को भी कराची की नजर खा गई मगर पाँच बार रोजाना निराई, गुड़ाई और खुदाई से रग-पुट्टों में जो चुस्ती और तबीयत में चोंचाली आ गई थी वह उसे आलू की करामात समझते थे। अबकी बार जो लंच पर हमें होटल इंटरकांटीनेंटल के चाँदनी लाउंज में ले गए तो हमने देखा कि बूफे मेज पर सिवाय उन रासायनिक प्रयोगों के जो यूरोपियन बावर्चियों ने आनुवांशिक रूप से आलू-वंश पर किए थे और कुछ न था। आलू मुसल्लम, टो-टुकड़े आलू, आलू सूखा व कोफता, आलू छिलकेदार, आलू बड़ियाँ, आलू कम बड़ियों के साथ बल्कि कहीं वस्त्रहीन।

'मिर्जा

'यह क्या?'

'ट्रिपिल बी (Busy Businessmen's Buffet)'

'या अल्लाह! कराची के करोड़पति यह खाते हैं मगर हमने तो इन्कम की चोरी भी नहीं की। फिर यह सजा क्यों? भूखा ही मारना था तो हमें गज भर की टाई बंधवा कर नौ मंजिलें लाँघते-फलाँगते यहाँ काहे को लाए? नीचे ही नकद पैसे देकर चलता कर देते।'

'हमारे साथ रहते एक उम्र गुजरी, मगर रहे जंगली के जंगली। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि फाइवस्टार होटलों में खाने की कीमत नहीं दी जाती, उस स्वप्निल माहौल की दी जाती है जहाँ आप दूसरे संभ्रांत व्यक्तियों को अपनी तरह भूखा मरते देखते हैं। बिल में जो रकम लिखी होती है वह दुर्गंध उठते गोश्त और उबले चुकंदर की नहीं होती, दरअस्तल उसमें घर से भागने का जुर्माना, दूसरी मेजों पर बैठी हुई महिलाओं के फ्रेंच सेंट लगाने का आर्थिक-दंड,

खिलखिलाती हुई होटल बालाओं के टूथपेस्ट की कीमत, बल्कि उसका पूरा भरण-पोषण शामिल करना पड़ता है तब जाके कहीं एक बिल बनता है और जहाँ तक स्वाद का सवाल है तो साहब हर रात आँगन में उतरने वाले स्वर्गीय आहार की तुलना में बाहर के प्याज की गंठी मजा दे जाती है। वरना देखा जाए तो चाय की पियाली घर की अँगीठी पर 'चराग तले' जलाकर भी बनाई जा सकती है और - और साहब! दस-दस रुपए के नोट जला कर भी। जैसा 'हाक्स-बे' की 'हट' में तुम्हारे उस बंबईया सेठ ने किया था। मिस्री बैली डांसर की खातिर।'

'मगर वह तो काफी PLUMP थी।'

'साहब मिस्र वाले तो इसी चीज पर जान देते हैं। जभी तो शाह फारुक (मिस्री बादशाह) मोटे बदन की रखैलें इस तरह इकट्ठा करता था जैसे बच्चे डाक के टिकट जमा करते हैं।'

बहस और हमें इस ढलान पर लाकर मिर्जा ने फिगर की (जैसे 35-24-37) जाँच-पड़ताल करने का स्वनिर्मित जो फॉर्मूला पेश किया वह पाठकों की खिदमत में काट-छाँट किए बिना प्रस्तुत है -

सुंदरी के सीने के नाप में कूल्हों का नाप जोड़ो, जोड़ को अपने साफ मोजे के नंबर से गुणा करो फिर इस गुणनफल को 32 से विभाजित करो। जो जवाब आए वह कमर का आदर्श नाप होगा। अब अगर कमर का घेर इससे अधिक निकले तो आलू का परहेज जरूरी है अगर इससे कम है तो आलू खिला-खिला कर बदन को फॉर्मूले के साँचे में ढाला जा सकता है।

होटल के बिल के पीछे उन्होंने बालप्वाइंट पेन से मर्लिन मुनरो, लोलो ब्रिगिडा, एलिजाबेथ टेलर, सोफिया लॉरेन और चयनित हसीनाओं को एक-एक करके अपने ग्यारह नंबर के मोजे में ऐसे उतारा कि हम भौंचक्के रह गए। इसमें आपको झूठ या अतिशयोक्ति का तनिक भी संदेह हो तो दो-चार अभ्यास-प्रश्न निकालकर आप भी अपनी परिचित सुंदरियों की परीक्षा ले लीजिए। हम तो इसे रानी विक्टोरिया की मूर्ति, कोकाकोला की बोतल और स्वयं पर आजमा कर अपनी संतुष्टि कर चुके हैं।

उनकी रातों का मीठा दुख

हमें डेढ़ महीने के लिए काम से ढाका जाना पड़ा और मिर्जा से मुलाकातों का सिलसिला टला रहा। पत्र-व्यवहार मिर्जा को रुचिकर नहीं। जैसे ही हम वापस आए, अनन्नास और मुंशीगंज के केलों से लदे-फदे मिर्जा के यहाँ पहुँचे। हमने कहा, 'अस्सलाम अलैकुम!' जवाब मिला, 'फल अंदर भिजवा दो, वअलैकुम-अस्सलाम!' गौर से उनकी सूरत देखी तो दिल पर चोट-सी लगी।

'यह क्या हाल बना लिया तुमने?'

'हमें जी भर कर देख लो। फिर इस सूरत को तरसोगे।'

'भूख खत्म, दवाओं पर गुजारा है। दिन भर में तीन अंगूर खा पाता हूँ, वह भी छिलका उतार के। खाने के नाम से हौल उठता है। दिल बैठा जाता है। हर वक्त एक बेकली-सी रहती है। हर चेहरा उदास, हर चीज धुआँ-धुआँ। यह हौंकता सन्नाटा, यह चैत की उदास चाँदनी, यह...'

'मिर्जा! हम तुम्हें रोमांटिक होने से रोक तो नहीं सकते लेकिन यह महीना चैत का नहीं है।'

'चैत न सही, चैत जैसा जरूर है, जालिम। तुम तो एक हिंदू लड़की से दिल भी लगा चुके हो। तुम्हीं बताओ ये कौन से महीने का चाँद है?' मिर्जा ने सवाल किया।

'इसी महीने का मालूम होता है।' हमने झिझकते हुए जवाब दिया।

'हमें भी ऐसा ही लगता है। साहब! अजीब आलम है। काम में जरा जी नहीं लगता और बेकारी से भी घबराहट होती है। जहन परागंदा (उलझा-उलझा) बल्कि सच पूछो तो गंदा। तारों भरे आसमान के नीचे रात-रात भर आँखें फाड़े तुम्हारी मूर्खताएँ गिनता रहता हूँ। तन्हाई से दिल घबराता है और लोगों से मिलता हूँ तो जी चाहता है मुँह नोच लूँ और साहब!

एक दो का जिक्र क्या सारे के सारे नोच लूँ

'मिर्जा! हो न हो यह इश्क के आसार हैं!'

'ठीक। लेकिन अगर व्यक्ति-विशेष पर चालीस महावटें बरस चुकी हों तो यह आसार इश्क के नहीं 'अल्सर' के हैं। खाना खाते ही महसूस होता है गोया किसी ने गले से लेकर पेट तक तेजाब की फुरहरी फेर दी है। इधर खाया, उधर पेट फूल कर मशक हो गया। अब तो हँसी की गति भी अंदर की तरफ हो गई है। सारी हरकत आलू की है। मेदे में ऐसिड बहुत बनने लगा है। 'पेप्टिक अल्सर' हो गया है।' उनकी आँखें डबडबा आईं।

'इस में दिल छोटा करने की क्या बात है। आजकल किसी को हार्ट-अटैक या अल्सर नहीं हो तो लोग उस पर तरस खाने लगते हैं कि शायद बेचारा किसी जिम्मेदार पद पर आसीन नहीं है मगर तुम तो नौकरी को जूते की नोक पर रखते हो। अपने बाँस से टाँग पर टाँग रखकर बात करते हो। फिर यह कैसे हुआ? समय पर सोते हो। समय के बाद उठते हो। दादा के काल की चाँदी की पतीली में उबाले बिना पानी नहीं पीते। वजू भी पानी में लस्टरीन मिलाकर करते हो, जिसमें 26 प्रतिशत एल्कोहल होता है। समसामयिक परिस्थितियों से स्वयं को दूर रखते हो। बातों के अलावा किसी चीज में कड़वाहट पसंद नहीं करते। तेल भी तुम नहीं खाते। दस साल से तो हम देख रहे हैं, मांटगुमरी का शुद्ध दानेदार घी खा रहे हो।' हमने कहा।

'तुम्हें विश्वास नहीं होगा, यह सब उसी मनहूस की गड़बड़ है। अबकी बार जो सोने के कुशते से अधिक शक्तिवर्धक घी का सीलबंद कनस्तर अपने हाथ से अँगूठी पर तपाया तो मालूम है तह में क्या निकला? तीन-तीन उंगल आलू की दानेदार लुगदी। जभी तो मैं कहूँ कि मेरा बनियान तो तंग हो गया मगर वज्ज कयों नहीं बढ़ रहा है।' मिर्जा ने आखिर अपनी दस साल पुरानी बीमारी की जड़ पकड़ ली जो जिला मांटगुमरी तक फैली हुई थी।

क्या असीरी है, क्या रिहाई है

पहले मिर्जा दर्द को बिल्कुल सहन नहीं कर पाते थे। हमारे सामने की बात है, पहली बार पेट में दर्द हुआ तो डॉक्टर ने मार्फिया का इंजेक्शन तैयार किया मगर मिर्जा ने घिघिया कर मिन्नतें कीं कि उन्हें पहले क्लोरोफार्म सुँघा दिया जाए ताकि इंजेक्शन की पीड़ा न हो, लेकिन अब अपनी बीमारी पर इस तरह इतराने लगे थे जैसे ओछे अक्सर अपने स्वास्थ्य पर अकड़ते हैं। हमें उनकी बीमारी से इतनी चिंता नहीं हुई जितनी इस बात से कि उन्हें

अपनी ही नहीं दूसरों की बीमारी में भी उतना ही रस आने लगा था। भाँति-भाँति की बीमारियों में पड़े मरीजों से इस तरह कुरेद-कुरेद कर संक्रामक विवरण पूछते कि रात तक उनकी सारी बीमारी अपना लेते। इस हद तक कि बुखार किसी को चढ़ता, बहकी-बहकी बातें वह करते। इस हमदर्दी-भरी मिजाजपुर्सी से मिर्जा ने स्वयं को जच्यगी के अलावा हर तरह के कष्टों में डाल लिया था। घर या दफ्तर की कैद नहीं, न अपने बेगानों का अंतर, हर मुलाकाती को अपनी आंतों के नाकारा क्रियाकलाप बताते और इस पारे जैसी विशेषता वाले वायु-विकार का शाब्दिक ग्राफ बनाते जो हाथ मिलाते वक्त थरथराहट पैदा कर देता था। फिर दाईं आँख के पपोटे में करेंट मारता, सूजन भरे जिगर को छेदता, टली हुई नाभि की तरफ बढ़ने लगा था कि पिछले पहर अचानक पलटा और पलट कर दिल में बुरे-बुरे विचार पैदा करने लगा और फिर मिर्जा हर बुरे विचार को इस तरह खोल कर बयान करते कि - मैंने ये जाना कि गोया ये भी मेरे दिल में है

जिन लोगों ने मिर्जा को पहले नहीं देखा था वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि यह बीमार बंदा जो फाइलों पर सर झुकाए 'अल्सर' की तपक मिटाने के लिए हर दूसरे घंटे एक गिलास दूध मुँह बनाकर पी लेता है, चार महीने पहले कोफते में हरी मिर्च भरवा कर खाता था। यह मरणासन्न जो बिना मिर्च मसाले के रातब को 'इंगलिश फूड' कह कर सब्र और शुक्र के साथ खा रहा है, यह वही चटोरा है जो चार महीने पहले यह बात बता सकता था कि सुबह सात बजे से लेकर रात के नौ बजे तक कराची में किस 'स्वीट मर्चेट' की कड़ाही से उतरती गर्म जलेबी मिल सकती है। हाउसिंग सोसायटी के कौन से चीनी रेस्तराँ में तले हुए झींगे खाना चाहिए जिनका चौगुना बिल बनाते वक्त रेस्तराँ के मालिक की बेटी इस तरह मुस्कराती है कि कसम खुदा की, रुपया हाथ का मैल मालूम होता है। उन्हें न सिर्फ यह पता था कि लाहौर में जेवरात की कौन सी दुकान में निहायत खूबसूरत 'हीरा-तराश' कलाइयाँ देखने को मिलती हैं, बल्कि यह भी मालूम था कि मजंग में तिक्का कबाब की वह कौन सी दुकान है जिसका हेड आफिस गुजरांवाला में है और यह भी कि कड़कड़ाते जाड़ों में रात के दो बजे लालकुर्ती में किस पान की दुकान पर पिंडी के मनचले तरह-तरह के पानों से अधिक उनके रसीले नामों के मजे लूटने आते हैं। किस्साख्वानी के किस मुच्छड़ हलवाई की दुकान से काली गुलाबजामुन और नाजिमाबाद की कौन-सी दुकान से चौरंगी के करीब गुलाब में बसा हुआ कलाकन्द उधार मिल सकता है। यह सारी जानकारियाँ मिर्जा के देशव्यापी चटोरपन का निचोड़ है। उन्होंने सारी उम्र और किया ही क्या है। अपने दाँतों से अपनी कब्र खोदी है। सूचनार्थ निवेदन है कि मिर्जा पैसे देकर मिठाई खरीदना फुजूलखर्ची समझते हैं। भला कोई कैसे विश्वास कर सकता है कि यह आलू और कार्बोहाइड्रेट का शिकार वही है जिसने कल तक मनभाते खानों के कैसे-कैसे अलबेले जोड़े बना रखे थे - खड़े मसाले के पसंदे और बेसनी रोटी, कीमा भरे करेले और घी में तरतराते पराँठे, मद्रासी बिरयानी और पारसी कोफते (वह भी एक लखनवी पड़ोसन के हाथ के), चुपड़ी रोटी और उरद की फरहरी दाल, भिंडी और - भिंडी! (भिंडी के साथ मिर्जा किसी और चीज को शामिल करने के लिए तैयार नहीं)।

मिर्जा को खाने का ऐसा हौका है कि एक मुँह उन्हें काफी नहीं। उनके नदीदेपन को देखकर एक बार प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स ने कहा था, 'मिर्जा तुम्हारा हाल गिरगिट जैसा है। उसकी जबान की लंबाई उसके जिस्म की आधी होती है।' मिर्जा की उदास आँखें एकदम मुस्कुरा उठीं। कहने लगे, 'साहब! खुदा ने गोश्त के एक टुकड़े को जाने कौन से स्वाद से परिचित करा दिया। अगर सारा शरीर इस को जान पाता तो इनसान इसे सहन नहीं कर सकता था। जमीन की छाती फट जाती।'।

मिर्जा पाँच-छह सप्ताह में पलंग को लात मार कर खड़े हो गए। हम तो इसे उनकी इच्छाशक्ति का चमत्कार ही कहेंगे। हालाँकि वह स्वयं कुछ और कारण बताते थे। एक दिन उनके मेदे से खून कट-कट कर आने लगा, हमारी आँखों में आँसू देखकर हमें ढाँढ़स देने लगे, 'मैं मुसलमान हूँ। जन्नत को भी मानता हूँ मगर मुझे वहाँ जाने की जल्दी नहीं है। मैं मौत से नहीं डरता मगर मैं अभी मर नहीं सकता, मैं अभी मरना नहीं चाहता। इसलिए कि अक्वल तो तुम मेरी मौत का सदमा बरदाश्त नहीं कर सकोगे। दूसरे यह कि तुम मुझ पर लेख लिख दोगे।' खुदा बेहतर जानता है कि वह अपने रेखाचित्र के डर से स्वस्थ हुए या जैसा किसी ने कहा है मुर्गी के शव को स्नान देने वाले पानी से जिसे वह चिकनसूप कह कर रसपान कर रहे थे। बहरहाल बीमारी जैसे आई थी उसी तरह चली गई। फायदा यह हुआ कि आलू से जो विमुखता पहले अकारण थी अब उसका बहुत उपयुक्त कारण हाथ आ गया और यह सरासर उनकी नैतिक विजय थी।

रोग, ईश्वर की कृपा से दूर हो चुका था। परहेज अलबत्ता चल रहा था। वह इस तरह कि पहले मिर्जा दोपहर के खाने के बाद आधा सेर जलेबी अकेले खा जाते थे लेकिन अब डॉक्टरों ने मीठा बंद कर दिया था, लिहाजा आधा सेर इमरती पर गुजारा करते थे।

आलू का मुँह काला, भिंडी का बोल-बाला

जैसे ही मिर्जा का स्वास्थ्य सामान्य हुआ और तबीयत ठीक, बगदादी जिमखाने में यार लोगों ने स्वस्थ हो जाने के उपलक्ष्य में उनके स्तर के अनुरूप जश्न की व्यवस्था की। स्वागत समिति ने तय किया कि घिसे-पिटे डिनर के बजाय फैंसी ड्रेस बॉल-डांस का इंतजाम किया जाए ताकि एक दूसरे पर हँसने का अवसर मिले। मुख्य अतिथि-मिर्जा ने, यह भनक मिलने पर, हमारे माध्यम से कहलाया कि नए हास्यास्पद कपड़े सिलवाने की बिल्कुल जरूरत नहीं। मेंबर और उनकी बीवियाँ अगर ईमानदारी से वही कपड़े पहने जिमखाना चली आएँ, जो वह आमतौर से घर में पहने बैठे रहते हैं तो भी उद्देश्य पूरा हो जाएगा। डांस के लिए मिर्जा ने एक कड़ी शर्त लगा दी कि हर सदस्य सिर्फ अपनी बीवी के साथ नाचेगा और इस लपक और हुमक के साथ कि जैसे वह उसकी बीवी नहीं है। जश्न की रात जिमखाना को झंडियों और भिंडियों से दुल्हन बनाया गया। सात कोर्स के डिनर से पहले रूई और कागज से बने हुए एक आदमकद आलू की अर्थी निकाली गई, जिस पर मिर्जा ने अपने हाथ से ब्रांडी छिड़क कर माचिस दिखाई और स्वर्गवासी के डिंपल पर गोल्फक्लब मार के क्रियाकर्म किया। डिनर के बाद मिर्जा पर टॉयलट पेपर के फूल बरसाए गए और कच्ची भिंडियों में तोला गया, जिन पर अभी ठीक से सुनहरा रुवाँ भी नहीं निकला था। फिर यह भिंडियाँ उपयुक्त व्यक्तियों यानी पेट के लखपति मरीजों में बाँट दी गईं। शैंपेन से महकते हुए बॉल-रूम में गुब्बारे छोड़े गए। खाली बोटलों की कीमत का दान एक अनाथालय को देने की घोषणा की गई और स्वस्थ होने की खुशी में कार्ड-रूम वालों ने जुए के अगले पिछले सारे कर्जे माफ कर दिए।

मिर्जा बात-बेबात मुस्कुरा रहे थे। तीसरा डांस खत्म होते ही हम अपनी कुहनियों से रास्ता बनाते हुए उन तक पहुँचे। वो उस समय एक बड़े गुब्बारे में जलते हुए सिगरेट से सूराख करने चले थे कि हमने उसका जिक्र छेड़ दिया जिसकी शान में कोई गुस्ताखी कल तक उन्हें पसंद नहीं थी। 'मिर्जा! अगर आलू इतना ही नुकसानदेह है तो इंग्लैंड में इतना प्रिय क्यों है? क्यों एक अंग्रेज औसतन, दस आउंस आलू रोजाना खा जाता है। यानी साल में साढ़े-पाँच मन। सुन रहे हो? साढ़े पाँच मन!' बोले, 'साहब! अंग्रेज की क्या बात है। उसकी गरीबी से भी एक शान टपकती है। वह पिटता भी है तो एक हेकड़ी के साथ। लिन यू तांग ने कहीं लिखा है कि हम चीनियों के बारे में लोगों

ने यह मशहूर कर रखा है कि अकाल पड़ता है तो हम अपने बच्चे तक को खा जाते हैं लेकिन खुदा का शुक्र है कि हम उन्हें उस तरह नहीं खाते जिस तरह अंग्रेज 'बीफ' खाते हैं, यानी कच्चा!' हम भी जवाब में कुछ कहना चाहते थे कि एक नोकीली एड़ी जो एक हसीन बोझ सँभाले हुए थी, हमारे पंजे में बरमे की तरह उतरती चली गई। हमारी मर्दाना चीख FOR HE JOLLY GOOD FELLOW के कोरस में दब गई और ईस्ट इंडिया कंपनी के जमाने का बर्मी सागवान का डांस-फ्लोर बहके-बहके कदमों तले चरचराने लगा।

(1965-1968)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

आज फिर उनके सम्मान में हजरत रंजूर अकबराबादी एडीटर, प्रिंटर, पब्लिशर व प्रूफरीडर त्रैमासिक 'नया क्षितिज' ने एक शाम-भोज दिया था।

जिस दिन से प्रोफेसर काजी अब्दुल कुदूस, एम.ए., बी.टी. गोल्ड मैडलिस्ट (मिर्जा का कहना है कि यह पदक उन्हें मिडिल में बिना नागा उपस्थिति पर मिला था) यूनिवर्सिटी की नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद बैंक ऑफ चाकसू लिमिटेड में डायरेक्टर, पब्लिक रिलेशन्स एंड एडवर्टाइजिंग की हैसियत में धाँस दिए गए थे, उनके सम्मान में इस तरह के शाम-भोज, स्वागत-समारोह और डिनर दैनिक दफ्तरी जीवन का तत्व बल्कि जीवन का अंग बन गए थे। घर पर नेक कमाई की रोटी तो केवल बीमारी के समय में ही बरदाश्त करते थे, वरना दोनों समय स्वागत-भोज ही खाते थे। बैंक की नौकरी प्रोफेसरश्री के लिए एक अजीब अनुभव साबित हुई, जिसका मूल्य वो हर तरह से महीने की तीस तारीख को वसूल कर लेते थे।

क्षमा कीजिए, इस रेखाचित्र में हम उन्हें प्रोफेसर ही कहेंगे। मिर्जा के कथनानुसार, आदमी एक बार प्रोफेसर हो जाए तो उम्र भर प्रोफेसर ही कहलाता है, चाहे बाद में समझदारी की बातें ही क्यों न करने लगे, पठन-पाठन तो एक नैतिक बहाना था, वरना बकौल मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद - प्रोफेसर का 'पेशा संतोष था और और बुद्धिहीनता से उसका सौंदर्य-वर्धन करते थे।'

वह किसी के दबैल नहीं थे। दबंग और दिलेर आदमी थे और खतरे से डरना बचना तो दूर कभी-कभी तो साँप को रस्सी समझकर गुँथ मरते थे। उनका दुस्साहस अब बहादुरी से बढ़कर आत्मघाती और आत्मघाती से बढ़कर मूर्खता की अलौकिक सीमाओं में प्रवेश कर चुका था। कोई आदमी अगर उनसे बहस, नौकरी या ब्रिज में आगे निकल जाए तो उसके पूरे इलाके, पूरे सूबे से नफरत हो जाती थी। भारतीय प्रायद्वीप का शायद ही कोई प्रदेश बचा होगा जिससे उनकी निजी दुश्मनी न हो, बल्कि अब तो छोटी-छोटी तहसीलें आँखें दिखाने लगी थीं।

वाँयसचांसलर को भरी मीटिंग में 'शटअप' कहने के बाद वह तीन महीने का अवकाश लेकर घर बैठ गए और विरोध स्वरूप अखबार तक पढ़ना बंद कर दिया कि इसमें यदा-कदा वाँयसचांसलर की तस्वीर छप जाती थी। यूँ

भी उन्होंने जिंदगी भर जुबान के अलावा किसी दूसरे अंग को कष्ट नहीं दिया था लेकिन अब चौबीस घंटे में एक बार बला की चुस्ती दिखाते थे। वो उस समय जब दिन भर आरामकुर्सी पर ऊँघते रहने के बाद वह शाम को आठ बजे सोने के लिए बड़ी फुर्ती से कूद कर पलंग पर चढ़ते थे। अपने व्यवसाय से तंग आ चुके थे और कहते थे कि तुम्हारा ध्यान आ जाता है वरना अक्सर जी में आता है कि घर को आग लगाकर किसी सुनसान द्वीप में एक लोटा, डोर, फूट साल्ट और दीवाने-गालिब लेकर चला जाऊँ। (यह घर यूनिवर्सिटी का था और जिस फर्नीचर से सजा हुआ था उस का साल भर का किराया चढ़ा हुआ था।)

ऊब की इस हालत में एक दिन बोहेमियन कॉफी हाउस (इसमें मिर्जा रोज लौंढिहार मचाते थे) में नथनों की चिमनी से सिगरेट का धुआँ उगलने के बाद कुर्सी पर उकड़ू बैठ गए और मुट्टी भींचकर कहने लगे :

'अगर मैं इस मुल्क का प्राइम मिनिस्टर होता तो...'

'तो', हमने पूछा।

'तो यूनिवर्सिटी में नौकरी नहीं करता।' उन्होंने मुट्टी खोल दी।

वह प्राइम मिनिस्टर जरूर होना चाहते थे मगर जिस मात्रा में मानसिक संतोष और फुरसत वह चाहते थे, वह हमारे यहाँ सिर्फ प्राइमरी स्कूल के टीचर को नसीब है। फुरसत और किताब का जहाँ इतना दखल हो तो आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि पठन-पाठन का व्यवसाय छुड़वाने में हमें कैसे-कैसे सुनहरे सपने दिखाने पड़े होंगे लेकिन इस पुनीत-कार्य में हमें अधिक झूठ नहीं बोलना पड़ा। इसलिए कि ज्ञान और साहित्य से जी खट्टा करने में यूनिवर्सिटी के विद्वानों ने ऐसी प्रभावकारी भूमिका निभाई कि प्रोफेसर का दिल अपने पेशे से ऊब गया। अवकाशकाल के दौरान सूचना मिली कि यूनिवर्सिटी ने उनके जूनियर को 1857 ई. में दिल्ली के सौदा बेचने वालों की आवाजों पर रिसर्च करने के लिए सात समंदर पार लंदन भेजा है। प्रोफेसर ने उसी समय हमारे बेटे की चार लाइन वाली कॉपी पर त्यागपत्र लिख कर बैरंग पोस्ट कर दिया और अपना अधूरा शोध-प्रबंध 'चाकसू (खुर्द) का दबिस्ताने-शायरी' (जिसका विषय उन शायरों का कलाम था जिनका जन्म कहीं और होने के बजाय चाकसू खुर्द में हो गया था) फाड़ कर फेंक दिया। इस शोध-प्रबंध के पंद्रह साल तक अधूरे रहने का कारण यह था कि कई ऐसे शायर जिन पर वह टिप्पणी करना चाहते थे उनके स्वर्गवास में अभी काफी देर मालूम होती थी।

तो यह उस काल का वर्णन है जब प्रोफेसर अपनी टूटी-फूटी नाव जला ही नहीं चुके थे बल्कि उस की राख से तन पर भभूत रमाये मूर्खों के मन की आँखें खोलते फिरते थे।

क्लासरूम से बैंक तक पहुँचने में प्रोफेसर को किस टेढ़े-मेढ़े मार्ग से गुजरना पड़ा यह उनका दिल जानता है या हम। इसका विवरण किसी अनुपयुक्त समय पर टाल देते हैं। बैंक में अफसरी से उनके कंधों का प्रोफेसराना झुकाव तो दूर नहीं हुआ लेकिन बहुत से सुखद परिवर्तन, कुछ स्वयं से, कुछ औरों के कहने सुनने से उनमें पैदा हो गए। अब तक उनका व्यक्तित्व self made (स्व-निर्मित) था, यानी उसमें उन्होंने दर्जी, धोबी, डॉक्टर और नाई को सुधारने का कोई मौका नहीं दिया था। प्रोफेसर के प्रारंभिक दिनों में जब लड़के बिल्कुल लड़कों ही की सी हरकत करने लगे तो हम सबने सलाह दी कि बोल-चाल में डपट और व्यक्तित्व में रोब-दाब पैदा करो। दूसरे ही दिन उन्होंने जूतों में पौन इंच मोटा तला लगवा लिया और ऊँची बाढ़ की टोपी पहननी शुरू कर दी जिससे लंबाई तो खैर क्या बढ़ती, अलबत्ता उनका अहम इतना ऊँचा हो गया कि हमने उन्हें बादशाही मस्जिद के दरवाजे से भी

झुक कर निकलते देखा। राई अपनी आन की प्रबलता से पहाड़ बन चुकी थी। व्यक्तित्व भी उनका अपना नहीं रहा था। बाज का चलन अपना लिया था। यानी बार-बार अपने विषय और संबोधित पर - झपटना, पलटना, पलट कर झपटना (इकबाल की पंक्ति)

झूठ क्यों बोलें। हमने कभी बाज नहीं देखा। अल्लाह जाने उसकी मूँछें होती हैं या नहीं। बहरहाल उन्होंने रख ली थीं जो बराबर ताव देते-देते काग खोलने के स्कू (पेंच) जैसी हो गई थीं। दाईं मूँछ हमेशा सफेद रहती थी, इसलिए कि ब्लैक बोर्ड पर सफेद चाक से लिखते-लिखते, उसको चुटकी से बल देते रहते थे और यह आदत इतनी पक्की हो चुकी थी कि हालाँकि बैंक में नियुक्ति का परवाना मिलते ही मूँछ का सफाया करा दिया लेकिन बेचैन चुटकी से महीनों उसी जगह को ताव देते रहे, जहाँ कभी मूँछ हुआ करती थी। इन तब्दीलियों का यह असर हुआ कि लड़कों ने इनके लेक्चर की स्पष्ट गलतियों पर हँसना छोड़ दिया। अब उनके हुलिए पर ठहाके लगाते थे।

नियुक्ति के तीन महीने बाद बैंक ने प्रोफेसर को जन-संपर्क और प्रचार के प्रशिक्षण के लिए छह सप्ताह के कोर्स पर पेरिस भेजने के आदेश पारित किए और यह भी प्रस्ताव किया कि अगर आप अपनी बेगम को साथ ले जाएँ तो बड़ी प्रसन्नता होगी। दोनों के फर्स्टक्लास के टिकिट और होटल की बुकिंग बैंक के जिम्मे होगी। पत्र मिलते ही दिमाग में शहनाइयाँ बजने लगीं। कराची की उन तमाम महिलाओं की, जिनके सर्वाधिकार कहीं और सुरक्षित थे, एक मुकम्मल सूची हमसे बनवाई और फिर पसर गए कि फिलहाल इनमें से किसी एक से दो बोल पढ़वा दो ताकि टिकिट बेकार न जाए और हनीमून निःशुल्क पड़े। अगर मिर्जा ने एक ही वाक्य से उनकी बुद्धि की सारी गाँठें न खोल दीं होतीं तो खुदा जाने कब तक हमारी जान को आते रहते। फरमाया, बीवी को पेरिस ढोकर ले जाना ऐसा ही है जैसे कोई एवरेस्ट विजय को निकले और थरमस में घर से बर्फ की डली रखकर ले जाए।'

पेरिस, (जिसे अब वह प्यार में 'पेरी' कहते थे) से लौटने को लौट तो आए लेकिन दिमाग वहाँ के कॉफी-घरों और दिल वेश्या-घरों में छोड़ आए। अपनी माटी की काया मात्र को पाकिस्तान में घसीटे फिर रहे थे। सामने देनदारों के खाते खुले पड़े हैं मगर आँखों में वही किताबी चेहरे फिर रहे हैं - कि जिनको देखे यूरोप में तो दिल होता है सीपारा।

एक-एक से पूछते थे कि पाकिस्तान में फ्रांस की क्रांति कब आएगी? इस क्रांति के स्वागतार्थ वह अपनी पतलनू की 'क्रीज' उस्तरे की धार जैसी बनाए रखते थे। पुराने ढब की गरारे जैसी पतलनों के पाँयचे उनकी बहन ने गावतकियों पर गिलाफ के तौर पर चढ़ा दिए थे और उनकी ऊँची बाढ़ की टोपी से एक खूबसूरत टी-कोजी बनाई जिसे उठाते ही उनका सर याद आता था। पहले अपने पूज्य पिता को भी पत्र लिखते तो अंत में सेवक प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस, एम.ए., बी.टी., गोल्ड मैडलिस्ट लिखकर गोल्ड मैडलिस्ट को एहतियातन रेखांकित कर देते थे कि बंदा मनुष्य है, कहीं ऐसा न हो कि नजर चूक जाए लेकिन अब कागज पर कलेजा निकाल कर रख देने की जगह बैंकरों के स्टाइल में हस्ताक्षर की जगह एक जलेबी सी बना दिया करते थे, जिसकी नकल कम से कम कागज पर तो कोई भी हलवाई नहीं कर सकता। कालर में धोबी से खास तौर पर कलफ लगवाते। खुद भी अंग्रेजी उच्चारण में खूब कलफ लगाने लगे थे। दिलदूर दूर होते ही समय की पाबंदी भी कष्ट उठाने की हद तक करने लगे थे। जब से अँधेरे में समय बताने वाली घड़ी खरीद कर लाए थे, उन्हें दिन से उलझन होने लगी थी। फर्श पर आसन जमाने के बचपन से आदी थे, उसे तो नहीं त्यागा लेकिन अब गावतकिए का सहारा लेकर नहीं बैठते थे, उसे गोद में लेकर बैठते थे। सारांश यह कि 'पर्सनैलिटी' निकल आई थी। बैलगाड़ी में जैट वायुयान का इंजन लग गया था।

त्रैमासिक 'नया क्षितिज' के संपादक जिन्होंने यह शाम की चाय की व्यवस्था की थी, शेर में अजीब-सी रुचि रखते हैं। शेर को गलत पढ़कर और गलत समझ कर भी इतना रस लेते हैं कि अच्छे-अच्छे सही समझने वाले भी बगलें झाँकते रह जाते हैं। दैनंदिन की बातचीत में खुद को 'इन शब्दों का लेखक कहते हैं।' जैसे ही हम टाट का पर्दा उठाकर 'नया क्षितिज' के दफ्तर में घुसे, संपादक महोदय ने हमारे सलाम के जवाब में दो तीन बार अपना हाथ बगुले की गर्दन की तरह मोड़-मोड़ कर हमें दिखाया, जिसे हमने अशिष्टता समझ कर नजर-अंदाज कर दिया मगर ज्यों ही हमारा सर छत से टकराया, हमारी समझ में आ गया कि रंजूर साहब ने जो हाथ बगुला बनाकर हमें चिढ़ाया था तो वह दरअस्तल सर घुटनों में देकर चलने का इशारा था, क्योंकि दफ्तर की छत मुश्किल से पाँच फिट ऊँची होगी। वह तो खुदा भला करे मिर्जा का, अगर वो हमारी गरदन में लटक कर हमें तुरंत दुहरा न कर देते तो हमारा सर ऊपर चलते हुए पंखे से कब का बड़ी सफाई से कट कर उनके कदमों में जा गिरा होता और हम तो क्या, हमारे बीमे की रकम तक निबट चुकी होती।

सर उतारने के अलावा पंखे का अन्य उपयोग किसी के कथनानुसार गर्म हवा को सारे कमरे में बराबर-बराबर के हिस्से में फैलाना था ताकि कोई हिस्सा वंचित न रह जाए। जैसे ही हम सर और तन के नाजुक रिश्ते की रक्षा करते हुए आगे बढ़े, संपादक, त्रैमासिक 'नया क्षितिज' ने बायाँ हाथ मिलाने के लिए प्रस्तुत किया। हमने भी शिष्टतावश अपना बायाँ निकाला तो चारों तरफ से खी-खी की आवाजें आने लगीं। हमने झंप कर झट से वो हाथ दाईं जेब में ठूसने की कोशिश की। फिर याद नहीं कौन सी जेब में से अपना दायाँ खींच कर निकाला और उसे उनके बाएँ से मिलवाने की कोशिश की। खी-खी-खी-खी की आवाजें और तेज हो गईं। तड़प कर उन्होंने अपना हाथ छुड़ाया और दोनों हाथों से हमारी दाईं कलाई मरोड़ कर हथेली को अपनी तरफ किया। फिर हमारी हथेली को अपनी हथेली से दो-तीन बार प्रेम से रगड़ा जिसे हम इन हालात में हाथ मिलाना कह दें तो झूठ न समझा जाए।

वस्तुतः भूल हमारी ही थी। इसलिए कि हर व्यक्ति जानता था कि रंजूर साहब दो साल से बाएँ हाथ से हाथ मिलाने लगे हैं, जिसका कारण यह था कि पिछले बारह साल से वह बाएँ हाथ में एक सूटकेस लटकाये फिरते थे जिसे दीनतावश वह ब्रीफकेस कहते थे। इसमें बारह साल की सारी करतूत, यानी सारे विशेषांक और बेगम के हाथ की बनाई हुई गिलौरियाँ बंद रहती थीं। दोनों में एक दूसरे की बू-बास इस तरह रच बस गई थी कि जब प्रचारकों को तवायफ विशेषांक खोल कर दिखाते तो महसूस होता कि पानदान खुल गया और कभी चाँदी के वरक में लिपटी, लखनवी किवाम और सस्ती खुशबुओं के भभके मारती गिलौरी खिला देते तो लगता कि 'तवायफ की पाप-बीती' बल्कि खुद उसी को चबा रहे हैं। ब्रीफकेस उठाए फिरने से उनका बायाँ कंधा स्थायी रूप से झुक गया था और जब यह झोली हाथ में न हो तब भी उनका बायाँ हाथ घुटने को छूता था। जब उन्हें साहित्य-जगत में पीसा के झुके हुए मीनार के उपनाम से याद किया जाने लगा तो शुरू-शुरू में बहुत इतराते फिरे। फिर एक दिन मिर्जा ने अकेले में समझाया कि इशारा तुम्हारे राजनीतिक झुकाव की तरफ नहीं है तो चौंक पड़े। 'अच्छा! यह बात है।' कंधों की बारह साल पुरानी कान निकालने के लिए मिर्जा ने यह कसरत प्रस्तावित की कि आइंदा बारह साल तक दूसरे हाथ से उठाओ। चुनांचे उन्होंने 'ब्रीफकेस' दाएँ हाथ में स्थानांतरित कर दिया और बाएँ हाथ से हाथ मिलाने की आदत डाल ली। गिलौरी भी अब बाएँ के बजाय दाएँ कल्ले में रखने लगे थे। यह उसी काल का वर्णन है। कथित हाथ मिला चुके तो प्रोफेसर ने हमारा परिचय कराया कि आप से मिलिए। आप हमारे साथ पाँचवीं क्लास में दीनियात (धर्मशास्त्र) के परचे में नकल करके फेल हुए थे। इस समय दुछत्ती के नीचे दस-बारह आदमी बैठे होंगे। हालाँकि कुर्सियाँ दो ही नजर आ रही थीं। एक की टाँगें शराबी जैसी थीं। इस पर मेजबान यानी संपादक, 'नया क्षितिज' लड़खड़ा रहे थे। दूसरी की पीठ और पायों का घुना हुआ हिस्सा छह-छह इंच काट दिया गया था। इस पीढ़ी पर

मुख्य अतिथि कुंडली मारे बैठे थे। उनकी ठोढ़ी मेज पर इस तरह धरी थी जैसे मेलों और कस्बों की नुमाइशों के जादूघर में मदारी के जमूरे का कटा हुआ सर रखा रहता है। सामने 'नया क्षितिज' की बिक्री के अयोग्य प्रतियों के बंडल दीवार के साथ बड़े करीने से चुने हुए थे। इन पर पत्रिका के सहयोगी लेखक बिठाये गए थे। यह नहीं कि आतिथेय को अपने प्यारे अतिथियों की असुविधा का ध्यान न था। हर आने वाले की आवभगत वह इस तरह करते कि झपाक से अपने नीचे से रूई की गद्दी निकाल कर उसे पेश कर देते और 'जी आप! नहीं आप! अरे साहब! क्यों काँटों में घसीटते हैं?' की शिष्ट बहस के बाद उसे वापस अपनी ही कुर्सी पर ढक देते क्योंकि उसमें एक छेद था, जिसमें से दो फुटबाल बगैर रगड़ खाए गुजर सकते थे। दरवाजे के बाईं ओर तीन जंग खाए कनस्तरों पर दफ्तर का साइनबोर्ड रख कर बजता हुआ सोफा बना दिया गया था। यह आसन समालोचकों के लिए सुरक्षित था। हमें प्रकाशित की जा सकने वाली रसीली कहानियों के एक पुलिंदे पर बिठा दिया गया, जिनकी गर्मी भी अभी ठीक से नहीं निकली थी। बराबर वाले कमरे से हर उम्र के बच्चों की आवाजें आ रही थीं। दफ्तर की दीवारें देखकर लगता होता था कि यहाँ स्लेट का चलन नहीं है। कुछ देर बाद उन्हीं में का एक बच्चा एल्यूमीनियम का एक जग ले कर आया और पूरब का पेय यानी शुद्ध पानी का दौर चला। पानी वाकई निहायत साफ था। इतना साफ कि गिलास का गंदा पेंदा साफ नजर आ रहा था। जरा देर में सब छक गए तो पान पेश किए गए जिन्हें उस बार गिलौरी कहने में इसलिए हिचकिचाहट है कि वह इतने नन्हे-मुन्ने थे कि छालियों के दाने इन में नहीं समा सकते थे, इसलिए छालियाँ अलग से पेश की गईं। हाँ तंबाकू पर्याप्त मात्रा में था। जिसका जितना जी चाहे, खा ले।

इस आवभगत के बाद जलसे की कार्रवाई शुरू हुई। चार नामचीन समीक्षकों ने प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस, एम.ए., बी.टी. (गोल्ड मैडलिस्ट) की पुस्तक 'टी.एस. इलियट और शेख इमामबख्श नासिख की तुलना' पर निबंध पढ़े। यूँ तो प्रोफेसर साहब ने यह लेख पच्चीस साल पहले अपने छात्र-जीवन में लिखा था, मगर समीक्षकों ने इस पर नए दृष्टिकोण से रोशनी डाली थी।

आखिर में मिर्जा अब्दुल कुद्दूस बेग ने समाप्ति संबोधन पढ़ कर दोस्ती का हक अदा किया। उन्होंने 'बैंक आफ चाकसू, साहित्यिक पुरस्कार' का एक क्रांतिकारी प्रस्ताव भी पेश किया। प्रस्ताव यह था कि कुछ कलम के धनी ऐसे हैं, जो अगर लिखने की हरकत छोड़ दें तो उर्दू पर बड़ा अहसान होगा। बैंक ऑफ चाकसू प्राइज इन्हीं अहसान करने वालों की सेवा में पेश किया जाएगा। इस बात की पूरी छान-बीन करने के बाद कि किस लेखक ने साल-भर कुछ नहीं लिखा है, जज सालाना फुसलावे का एलान करेंगे। पुरस्कार प्राप्त लेखक अगर कागज-कलम का साल भर पोषण करने से सीधी तरह बाज आ जाए तो उचित पेन्शन का अधिकारी होगा, जो अच्छे चाल-चलन की शर्त पर उसे हर महीना मिलती रहेगी। अगर समय पर मौत हो जाए तो विधवा के लिए उपयुक्त राशि भी नियत की जाएगी। बशर्ते कि वह तमाम अनछपी कृतियाँ जो स्वर्गीय चोरी-छिपे लिखते रहे, उनके साथ ही दफन कर दी जाएँ।

इस पर हमने जोर-जोर से तालियाँ और पास वाला कनस्तर बजाया और अल्लाह जाने कब तक बजाते रहते अगर मिर्जा यकायक यह एलान न कर देते कि इस सिलसिले के पहले पुरस्कार का अधिकारी सारे पाकिस्तान में हम यानी इस लेखक से अधिक और कोई नहीं।

हमारी यह दुर्गत सप्ताह में चार-पाँच बार जरूर बनती थी। इस लिए कि सप्ताह में चार-पाँच बार प्रोफेसर के सम्मान में कहीं न कहीं स्वागत-समारोह अवश्य होता था, जहाँ पहली पंक्ति में ताली बजाते हुए फोटो खिंचवाने

का कार्यभार हमारे जिम्मे होता था। मिर्जा कहते हैं कि बड़े आदमियों के भाषण के बाद तुम्हारी ताली बिल्कुल अलग से सुनाई देती है। दफ्तर में अपनी व्यस्तता के बारे में दिन-भर बातें करके प्रोफेसर स्वयं को बुरी तरह थका लेते थे। एक उम्र तक नेकी और नाकामी का जीवन बिताने के बाद अब वह जहाँ दिखाई पड़ते, गोटे के हार पहने उद्घाटन के फीते काटते दिखाई पड़ते। यहाँ तक सुनने में आया कि इन तमाम दावतों का खर्च प्रोफेसर स्वयं उठाते हैं, सिर्फ एक स्वागत आयोजन का भार उन्होंने नहीं उठाया। इसका विस्तृत विवरण हम दे चुके हैं। सात-आठ महीने तक तो उनकी नियुक्ति की खुशी में दावतें होती रहीं और उसके बाद संभवतः उस खुशी में कि वह अभी तक बरखास्त नहीं हुए थे। हो यह रहा था कि सस्ती और फिल्मी पत्रिकाएँ बैंक के विज्ञापन की घात में रहतीं और मौका पाते ही (जो प्रोफेसर निरंतर देते रहते थे) नपा-तुला वार कर जातीं। यानी प्रोफेसर का लेख 'शेख इमामबख्श 'नासिख' और 'टी.एस. इलियट' की तुलना' शब्दशः छाप देते। प्रोफेसर गरीब अब 'तुलना' को जितना दबाना और छिपाना चाहते, पत्रिकाएँ उतना ही उसे उछालतीं। गोया लेखक को उसी के लेख से ब्लैकमेल कर रहे थे। प्रोफेसर को शहर के एक-एक बुक स्टाल से ऐसे अंकों की सारी प्रतियाँ बैंक के खर्च पर खरीद कर जलानी पड़तीं ताकि लोग 'तुलना' न पढ़ पाएँ। अब वह गड़े मुर्दे को उखड़वा कर रूह फुंकवाते-फुंकवाते तंग आ चुके थे। मजबूरन 'तुलना' की जगह बैंक ऑफ चाकसू के बारह विज्ञापन बुक करके एडीटर के मुँह पर एक साल के लिए सोने का ताला लगा देते।

प्रोफेसर को उनके अतीत के मलबे से खींचकर निकालने का सेहरा मिर्जा के सर है। उनके बौद्धिक-स्थापन में जो कठिनाइयाँ आईं उनको इस संक्षिप्त लेख में समेटना हमारे बस की बात नहीं। प्रोफेसर को अच्छे-बुरे का ज्ञान था और अगर विचारशक्ति फ्रांस की शैंपेन से प्रभावित न हो तो काले और सफेद में फर्क भी पहचान सकते थे बशर्ते कि उन रंगों का संबंध नारी की चमड़ी से हो। मगर छोटे-बड़े व्यापारी की पहचान? यह सवाल उन्हें हमेशा कोर्स से बाहर का नजर आता। किसी का बैंक बैलेंस माथे पर तो लिखा होता नहीं। चुनांचे एक दो महीने तक यह रवैय्या रहा कि अगर कोई शख्स मैला-मसला कुर्ता पायजामा पहने, दाढ़ी बढ़ाये, अँगूठे और तर्जनी से बाछों तक की पीक पोंछता, बगैर कार्ड भेजे कमरे में मुँह उठाए चला आता तो उसे धक्के देकर तो न निकालते मगर इस तरह पेश आते कि उस कष्ट की जरूरत न पड़ती। गलत उर्दू बोलने वालों को चाय तक के लिए न टोकते लेकिन जब पहली ही बोर्ड मीटिंग में उन्हीं में से चार लोगों को डायरेक्टरों की लाल मखमल की कुर्सियों पर आसीन देखा (जिनसे अपने कमरे में उन्होंने हाथ भी नहीं मिलाया था ताकि बाद में रगड़-रगड़ कर न धोना पड़े) तो उनकी आँखें खुल गईं और चार अंकों वाला वेतन खतरे में नजर आने लगा। फिर तो दिल में ऐसा हौल बैठा कि सड़क पर कोई भी मैले-कुचैले कपड़ों में नजर आ जाता तो फौरन सलाम कर लेते।

प्रोफेसर की बौखलाहट से उनकी महती जिम्मेदारियों का अंदाजा होता था और उन महान योग्यताओं का भी जिनके बगैर वह बखूबी गुजारा कर रहे थे। हवास बेहवास, जुबान खिचड़ी, लबो-लहजा उखड़ा-उखड़ा और बात भी कुछ ऐसी ही थी। ध्यान तो दीजिए। अभी मुल्तान के चमड़े और पशमीना के साथ इस पर शर्त बदी जा रही है कि हाजियों के पहले जहाज की वापसी पर तेजाबी सोने का भाव कितना गिरेगा और अब FANNY HILL के रक्तचाप बढ़ाने वाले गंद्याश मेज की दराज से निकाल कर सुनाए जाने लगे। पाँच मिनट पहले एक विज्ञापन माँगने वाले से हाथापाई होते-होते रह गई थी कि उसने मुँह भर कर यह कह दिया था कि आप हिर-फिर के अंधों को ही रेबड़ी बाँटते हैं और इस समस्या पर बहस हो रही है कि पानी की नदियों से जो नुकसान पूर्वी पाकिस्तान को हुआ है, उससे बैंकों की ब्याज-दर और उर्दू रूबाई पर क्या असर पड़ेगा। एक रिसीवर यह कह कर रख दिया कि 'जरा एक मिनट इंतजार कीजिए मैं हाँगाकाँग डॉलर का भाव अभी मालूम करके बताता हूँ।' दूसरे फोन पर

यकायक अपना गियर बदल कर कहने लगे, 'वाह! वाह! क्या फड़कती हुई पंक्ति निकाली है। जरा पाँच मिनट बाद दूसरी भी प्रदान करें।' मगर दूसरी पंक्ति वाली घंटी पाँच के बजाय दो मिनट बाद ही बजने लगी। 'हैलो! हैलो! वल्लाह क्या तेवर है? बिल्कुल मोमिन का सा अंदाज है। हाय? क्या कहा? मोमिन ही का शेर है। लाहौल विला कुव्वत। मैं तो समझा आप का है मगर मोमिन की भी क्या बात है। कभी-कभी जालिम बिल्कुल आप ही के अंदाज में शेर कह जाता है।'

कारोबारी दुनिया में आम तौर से शेरो-शायरी की गुंजाइश नहीं होती मगर प्रोफेसर ने निकाल ली थी। महीनों तक यह हाल रहा कि एक दो वाक्यों के बाद एक शेर झाड़ देते थे और यह वाक्य भी शायद शेर की प्रशंसा या प्रस्तावना के बतौर होते थे, वरना अगर उन्हें छूट दे दी जाती तो बैंकिंग के पेचीदा से पेचीदा मसले का दो टूक फैसला दीवाने-हाफिज से फाल निकाल के कर सकते थे। मिर्जा एक बार उनसे मिलने गए तो क्या देखते हैं फार्मिका की चंद्राकार मेज के गिर्द अच्छे गले और अच्छे पेट वाले शायरगण खाने-पीने की चीजों के साथ न्याय कर रहे हैं और बैंक में दिनदहाड़े मुशायरा लूट रहे हैं। टेलीफोन का रिसीवर उतार कर शायर के सामने रख दिया गया है ताकि मुशायरे का कार्यक्रम सिबगे तक 'रिले' किया जा सके जो चार मील दूर सदर में अपनी किताबों की दुकान में डेढ़ घंटे से बाएँ हाथ में फोन लिए बैठे हैं और दाएँ हाथ से ग्राहकों को इस समय किताबें खरीदने से मना कर रहे हैं। शायर को कभी-कभी रिसीवर कान से लगाकर सिबगे की दाद सुनवा दी जाती है और वह उठकर लखनवी अंदाज से फोन को आदाब बजा लाता है।

मिर्जा गरीब तो किसी काम से गए थे लेकिन दरवाजे की दरज में से झाँक कर यह नक्शा देखा तो सरकारी काम को उनकी तफरीह में बाधक पाकर उलटे पाँव वापस लौट आए। शेरो-शायरी से मिर्जा की अकवितामय प्रवृत्ति यूँ भी दबा करती है और मुशायरों से तो वह कोसों दूर भागते हैं। विशेष रूप से बड़े मुशायरों से। कहते हैं, 'साहब! जो शेर एक ही समय में पाँच छह हजार आदमियों की समझ में आ जाए वह शेर नहीं हो सकता। उसमें जरूर कुछ-न-कुछ खोट निकलेगा।' मिर्जा ने जब यह देखा कि प्रोफेसर को गद्य में अपने विचारों को प्रकट करने में बड़ी दुश्चारी होने लगी है तो समझाने बैठ गए। 'प्रोफेसर! यह साहूकारा संसार है। सही उर्दू से गुजराती सेठ बेहद रोब खाता है लेकिन सौदा बिगड़ जाता है। किसी ने मुझे बताया कि दो सेठ अलग-अलग समयों में तुम्हारे बैंक में खाता खोलने आए लेकिन एक मेमन को तो तुम्हारी सिक्रेटरी ने घुसने नहीं दिया और दूसरे व्यापारी ने, जो रकम जमा कराने आया था, तुम्हें बैंक में देखकर फौरन अपना इरादा बदल दिया और अपनी जमापूँजी टोपी में छुपा के कहने लगा कि मैं तो दरअस्त ओवर ड्राफ्ट लेने आया था। कमाल तो यह कि तुमने वाकई उसे ओवर ड्राफ्ट दिलवा दिया, जिससे उसने उसी वक्त दूसरे बैंक में जाकर अकाउंट खोल लिया और यूँ अहले-दर्द को पंसारियों ने लूट लिया।

मिर्जा उन्हें शेर सुनने से रोक सकते थे, लेकिन शेर सुनाने पर कैसे पाबंदी लगाई जा सकती थी। प्रोफेसर सामने बैठे हुए शायर की पंक्ति उठाने से इनकार कर सकते थे लेकिन उनका मुँह कैसे बंद करते जो बातचीत की फुरसत को गनीमत जान कर फोन पर ही खून थूकने लगते थे। एक दिन प्रोफेसर बुरी तरह बौखलाए हुए थे क्योंकि आधे घंटे बाद बोर्ड आफ डायरेक्टर्स की मीटिंग थी जिसमें बैंक का पब्लिसिटी बजट, पास करने और गाली-गलौज के लिए पेश होने जा रहा था। उनकी सूरत ऐसी हो रही थी जैसी विज्ञापनों में उनकी होती है जिनको हॉरलिक्स की जरूरत होती है। मेज पर कागजों का अंबार लगा हुआ था। कमरे के बाहर लालबत्ती जल रही थी जिसका मतलब यह था कि आज वह वाही-तबाही आदमियों यानी अपने खास दोस्तों से भेंट नहीं करेंगे।

इतने में सफेद टेलीफोन की बैठी-बैठी आवाज वाली घंटी बजी और दूसरे सिरे से गोदाम-कीपर के पद के एक उम्मीदवार हजरत मदहोश माधोपुरी ने अपने उपनाम जैसे सुर में अपनी नवलिखित मुसद्दस (छह पंक्तियों के बंद वाली कविता) सुनानी शुरू की। हरचंद कि यह तोड़ का वक्त था और प्रोफेसर को सिगरेट की राख तक झाड़ने की फुरसत न थी, लेकिन मुसद्दस के शुरू के बंद इन्हीं की प्रशंसा में थे और अल्लाह के करम से इसमें इस कदर अतिशयोक्ति से काम लिया गया था कि फोन बंद करने को किसी तरह जी न चाहा। खुदा जाने कब का लिया-दिया आड़े आ गया कि फोन खुद-ब-खुद बीस मिनट बाद खराब हो गया और प्रोफेसर अपनी नीली बो ठीक करते हुए बोर्ड-रूम की तरफ भागे। मीटिंग एक बजे खत्म हो गई लेकिन फोन शाम तक खराब रहा। प्रोफेसर ने जानबूझकर उसे ठीक नहीं कराया, इसलिए कि वह अपनी सिक्रेटरी को एकाग्रता के साथ मीटिंग की कार्रवाई लिखवाना चाहते थे। टेलीफोन ऑपरेटर ने भी फोन मिलाने बंद कर दिए थे और चंद घंटे कुशलपूर्वक गुजरे। वह कार्रवाई लिखवा रहे थे कि यकायक सफेद फोन की घंटी आप ही आप बजने लगी। वह उछल कर अपनी सिक्रेटरी की गोद में जा गिरे और देर तक वहीं बेसुध पड़े रहे। इसी स्थिति में उसके चिकौटी काट कर देखा कि जाग रहा हूँ या सो रहा हूँ। जब उसने पटाख से गाली दी तो उन्हें यकीन आया कि सपना नहीं है। रिसीवर उठाकर बोले, 'हैलो! काजी अब्दुल कुद्दूस हियर। हैलो! हैलो, काजी दिस साइड!' उधर से आवाज आई, 'जी! बजा इरशाद फरमाया! मगर मैं तो मदहोश माधोपुरी अर्ज कर रहा हूँ। वल्लाह! सुबह दस बजे से आप का फोन ठीक कराने में लगा हुआ हूँ। खुदा झूठ न बुलवाये, दस जगह शिकायत नोट कराई होगी। अंत में झक मार कर खुद टेलीफोन एक्सचेंज गया और एक-एक की खबर ले डाली। जब कहीं जाकर पाँच बजे आप की घंटी बजी है। जी! तो अर्ज किया है - '

और वह छह बजे तक अर्ज करते रहे

कोई दिन खाली जाता होगा कि लज्जित होने और पगलौट का कोई नवीन अवसर न आए। एक दिन (संभवतः सोमवार था जिसे मिर्जा काला दिन कहते हैं और अक्सर भविष्यवाणी करते हैं कि देख लेना, प्रलय सोमवार को ही आएगी) बैंक में उदास बैठे अपने विशिष्ट अंदाज से यानी पियाली होंटों से लगाते वक्त छंगुलिया उठाए हुए - फ्रेंच काफी पी रहे थे। आदत के अनुसार जोर से आँखें सुकेड़ रखी थीं। हालाँकि उस समय उनके चाँद से चेहरे के चारों ओर सिगरेट के धुएँ का घेरा नहीं था। काफी के हर घूँट के बाद बाएँ हाथ से इस खयाली धुएँ को हटाते जाते थे कि मिची-मिची आँखों में न घुसने पाए। इतने में पत्रिका 'मीना-बाजार' की एडीटर आ निकलीं। प्रोफेसर ने कहा, 'आप पच्चीस साल से बिल्कुल वैसी की वैसी ही हैं। बहुत खुशी हुई।' हालाँकि प्रोफेसर का मतलब दरअसल यह था कि जैसी बदसूरत आप पच्चीस साल पहले थीं, वैसी ही अब भी हैं। सम्माननीय ने 'मीना बाजार' का नवीन अंक पेश किया। प्रोफेसर टाइटिल पेज पर अपनी तस्वीर देखकर भौंचक्के रह गए। सब से तकलीफदेह बात यह थी कि तस्वीर बिल्कुल उनसे मिलती थी। बेहतर न थी।

'मीना बाजार' में विज्ञापन निकलना था कि तमाम महिला पत्रिकाओं ने हमला कर दिया और प्रोफेसर सोचते ही रह गए -

खाऊँ किधर की चोट, बचाऊँ किधर की चोट

'आँचल' से जो ऐतिहासिक मुचैटा हुआ, उसके डायलॉग पाक बोहेमियन काफी हाउस के बैरों तक को रटे हुए हैं। प्रोफेसर को उक्त संपादक से पहली नजर में नफरत हो गई। वह तो खैरियत हुई वरना प्रोफेसर का सीना अगर 34 इंच के बजाय 43 इंच का होता तो, पहली ही मुलाकात में कचूमर बना देते। यह पत्रिका पैंतीस साल से उन्हीं

औरतों की सेवा किए जा रही थी, जो उस वक्त पैंतीस साल की थीं जब पत्रिका का पहला अंक निकला था। किस्सा कहानी की ओट में यही शरीफ बीबियाँ अपनी हमउम्र बीबियों को और अधिक शरीफ रहने का पाठ पढ़ाती रहती थीं। पत्रिका ऐसी नग्न कहानियों से बिल्कुल पवित्र थी जिनसे हर शख्स अपनी कुरुचि के अनुसार रस ले सके। कामुक कहानियों के बजाय रिसाले में कुंवारी बालियों को पलंग की चादर पर क्रोशिये से 'खुश आमदीद' काढ़ने की तरकीबें सिखाई जाती थीं। साहित्यिक रुचि इतनी बदल गई थी कि जो शायर 25 बरस पहले दुनिया को मायाजाल समझते थे, वह अब उसे पूँजी का जाल कहने लगे थे। लेकिन 'आँचल' के लिखने वाले आज भी औरतों को 'मस्तूरात' कहते और माहौल पर लाहौल भेजते हैं। नई काट की चोली में इन बुजुर्गों को 'प्रलय' के चिह्न दिखलाई देते हैं। हालाँकि हमारे मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग तो उलटी तमन्ना करते हैं कि साहब! प्रलय की सचमुच यही निशानियाँ हैं तो फिर जल्दी से सूरज सवा नेजे पर आ जाए कि जिंदगी का कुछ भरोसा नहीं। और साहब! जिंदगानी गर रही तो नौजवानी फिर कहाँ!

संपादक महोदय ने आते ही फरमाया कि तुलनात्मक अध्ययन की टक्कर की कोई चीज आँचल के लिए प्रदान करें। प्रोफेसर ने उन्हें सूचित किया कि व्यस्तता की वजह से पिछले पच्चीस साल से कुछ नहीं लिख सके। नेह-बोधन के बाद मंतव्य प्रकट किया 'विज्ञापन चाहिए।' प्रोफेसर ने दलील दी कि सालाना बजट खत्म हो चुका है। फरमाया, 'चलिए! कोई हरज नहीं। बैंक के रजिस्ट्रों और फार्मों का सालाना आर्डर ही आँचल प्रेस को इनायत फरमाइए।' प्रोफेसर ने जवाब दिया, 'मगर सात लाख रुपए की स्टेशनरी आप एक ट्रेडिल मशीन पर दस बरस में भी नहीं छाप सकेंगे।' बोले, 'तो फिर बैंक से पचास हजार का 'क्लीन ओवरड्राफ्ट' ही दिलवा दीजिए।

प्रोफेसर के सब्र का पैमाना छलक गया। दफ्तरी सहनशीलता और एहतियात को एक तरफ रखते हुए बोले, 'आप की माँगों का क्रम बिल्कुल उल्टा है। खुदा की कसम बिल्कुल उल्टा। चाहिए तो यह था कि आप पहले पचास हजार कर्ज माँगते। इसके बाद स्टेशनरी के आर्डर की फरमाइश करते। यह भी नहीं मिलता तो विज्ञापन माँगते। फिर भी इनकार करता तो लेख माँगते। फिर मेरी हिम्मत नहीं होती कि इनकार करता। शर्मा-शर्मी लेख तो दे ही देता।'

महोदय बोले, 'अरे साहब। यही तो मुझे डर था।'

बाल-पत्रिकाएँ हमेशा से उनके वात्सल्य से वंचित थीं। अंततः यह अधर्म इस तरह टूटा कि पत्रिका 'बाजीचा-ए-अतफाल' (बच्चों का खेल) ने एक विशाल 'विज्ञापन विशेषांक' निकालने का एलान किया और इसके बाद इस पत्रिका पर भी बैंक के विज्ञापनों की कृपा होने लगी। अल्लाह जानता है कि वह 'विज्ञापन विशेषांक' पर रीझ गए या उसकी संपादिका कुमारी सुमंता फरजूक की अँखियों की कटार से लालसापूर्ण ढंग से ढेर हो गए। सफेद शलवार, सफेद कमीज, सफेद दुपट्टा, सीधी माँग, नंगे हाथ, नंगे कान। हमें तो वह किसी तरफ से ऐसी नहीं लगती थी कि आदमी के पाँचों इंद्रियों पर डाका डाल सकें या पहली ही मुलाकात में प्रोफेसर के ईमान के किले की ईंट से ईंट बजा दें लेकिन याद रहे कि प्रोफेसर कुंवारे थे। चालीस साल के थे और हाल ही में हुई जनगणना में अपनी गिनती मर्दों में करवा चुके थे। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारे हीरो ने आज तक कोई औरत ऐसी नहीं देखी जिसको वह नापसंद कर सके। किनारे को तरसा हुआ नाविक हर उथली खाड़ी में लंगर डाल देता है। कुमारी सुमंता ने आते ही खुशखबरी सुनाई कि उन्होंने 'तुलना' का बच्चों के लिए आसान उर्दू में अनुवाद किया है। हाँ शीर्षक में थोड़ी सी तब्दीली कर दी है। यानी शेख इमामबख्श 'नासिख' के बजाय मौलवी इस्माईल मेरठी को भिड़ा दिया है। अलबत्ता शेर वही रहने दिए हैं। अब महोदय इस लेख के साथ लेखक से इंटरव्यू का वर्णन नई तस्वीर के साथ

छापना चाहती थीं और इस सिलसिले में सनीचर चाय पर निमंत्रित करने आई थीं। प्रोफेसर ने बहुतेरी क्षमा याचना की कि सनीचर की शाम को मुझे बहुत काम है। तीन काकटेल पार्टियों में एक के बाद एक शिरकत करनी है लेकिन वह न मानी। लगातार इनकार से उनकी आँखों में आँसू तैरने लगे।

प्रोफेसर को आँसुओं की जरा बर्दाश्त नहीं। बल्कि सच तो यह है कि औरत की किसी चीज की सहार नहीं।

चुनांचे तय यह पाया कि प्रोफेसर तीनों काकटेल पार्टियों को लश्तम-पश्तम भुगता कर साढ़े सात बजे तक उनके घर पहुँच जाएँगे।

प्रोफेसर का अपना बयान था कि उन्होंने तीनों काकटेल पार्टियों में अपने 'प्रोटोकॉल' के कर्तव्य को पूरा करने में 'अपनी तरफ से तो कोताही में कोई कमी नहीं की।' मिर्जा के कंधे पर अपना सारा बोझ डाले वह जिमखाने से शराबखाने को हथेली पर रखे कुमारी सुमंता के यहाँ चाय पीने पहुँचे तो दस बज रहा होगा। जिस वक्त वह अपनी तीस हाथ लंबी केडिलक से उतरे हैं तो मिर्जा के बयान के मुताबिक उनका दायाँ पाँव उस जगह पड़ रहा था जहाँ बायाँ पड़ना चाहिए था और जिन अक्षरों की आवाजें किसी-किसी के मुँह से निकलती हैं वह उनकी नाक से सरलता से निकल रही थीं। गैलरी से गुजरते वक्त उन्होंने एक गिरती हुई दीवार को अपनी पीठ से सहारा देने की कोशिश भी की। फिर इंटरव्यू शुरू हुआ और टेपरिकॉर्डर चलने लगा।

मिस सुमंता ने चंद रस्मी सवालात के बाद पूछा कि आप अभी तक कुँवारे हैं। किस किस्म की बीवी अपने लिए पसंद करेंगे? प्रोफेसर ने झूमते हुए फरमाया कि मुझे आधुनिक विचारों की बीवी बहुत पसंद है - बशर्ते कि वह किसी दूसरे की हो। महोदया ने पल्लू मुँह में ठूसते हुए पैदायश का सन पूछा तो प्रोफेसर ने 2419 बताया और स्पष्ट करने के लिए AD (ईसवी) भी कहा ताकि सुनने वाले को भ्रम न हो। महोदया ने इतरा कर कहा, 'मगर आप तो शक्ल से सिर्फ चालीस साल के लगते हैं। इसका क्या कारण है?' प्रोफेसर ने जवाब दिया, 'इसका एक कारण तो यह है कि मैं चालीस ही साल का हूँ।' फिर दूसरे कारण की व्याख्या और संचार करते हुए फरमाया, उपन्यासकार जार्ज मूर से किसी पत्रकार ने पूछा कि आप अस्सी साल की उम्र में भी गोरे-चिट्टे रखे हैं, उसका क्या राज है? उसने जवाब दिया, 'मैंने शराब, सिगरेट और सेक्स को बिल्कुल हाथ नहीं लगाया - जब तक मैं ग्यारह साल का न हो गया।'

हमारे एक-पक्षीय बयान से यह न समझा जाए कि प्रोफेसर तरंग में अपने ही गुण समझाते रहे। उनकी नजर दूसरों पर भी थी। उदाहरण के लिए उन्होंने महोदया का ध्यान एक ऐसे गुण की तरफ आकर्षित किया जिससे वह बिल्कुल बेखबर मालूम होती थीं। 'आप की पसंद' का सवाल आया तो प्रोफेसर ने - मोतिया, मुसहफी, सनीचर की शाम, हेनरी मिलर, महावट, दाल भरे गर्म पराँठे, रेशमी दुलाई, नीग्रो कुँवारी की चर्चा करते करते - 'भई! आप का दायाँ कान सचमुच बहुत खूबसूरत है।'

ऐसे सूखे मुँह से कहा कि महोदया के बाएँ कान को यकीन नहीं आया कि उनका दायाँ कान क्या सुन गया। मिर्जा कहते हैं कि सुमंता फरजूक के दोनों कानों में स्पष्टतया कोई फर्क नहीं था लेकिन प्रोफेसर ने दाएँ को विशिष्टता शायद एहतियात के कारण दी थी, इसलिए कि उन्हें केवल दायाँ कान ही दिखाई पड़ रहा था। बहरहाल यह वाक्य भी रिकार्ड हो गया और उसके साथ वह हिचकियाँ भी जो उनके मद्य-वृतांत में हर शब्द के बाद फुलस्टॉप लगा रही थीं। प्रोफेसर ने जब तीसरी बार यह गुण-गान देवी जी के कान में उँडेला तो उन्होंने टेपरिकॉर्डर आहिस्ता से

स्विच ऑफ कर दिया और सफेद दुपट्टा अपने सर पर इस तरह लपेट लिया जैसे सचरित्र बीबियाँ नमाज पढ़ते वक्त लपेट लेती है। जैसे ही वह चाय लेने अंदर गई तो मिर्जा के गले में हाथ डालकर कहने लगे -

'उनका दायाँ कान वाकई बहुत खूबसूरत है।'

बीच में मिर्जा ने दो तीन बार आँखों ही आँखों में उठने का इशारा किया तो प्रोफेसर ने इस तरह हाथ घुमाया जैसे चक्की पीस रहे हों। इसका मतलब था वह वहीं मिर्जा का कचूमर बना देंगे।

वह मेज पर ट्रे रखने को झुकीं तो प्रोफेसर ने चुपके से दाएँ कान में वही जुमला दोहरा दिया। अब की बार देवी जी ने जो ढाठा बाँधा तो अंत तक नहीं खोला। खुदा-खुदा करके पौने बारह बजे इंटरव्यू अपने अंत को इस तरह पहुँचा कि प्रोफेसर को वाक्य के बीच में नींद आ गई। मिर्जा ने मुँह पर पानी के छपके देकर जगाया। महोदया चंद्र मिनट बाद महोदय को कार में सवार कराने बाहर पधारीं। विदा के समय आदाब बजा लाने के लिए उन्होंने अपनी सुराहीदार गरदन झुकाई तो दुपट्टे का ऐंडवा फिर सीने पर आ रहा और प्रोफेसर ने जवाब में तर्जनी उठाते हुए फरमाया।

'आदाब! और बायाँ भी -'

और वह झेंप कर दाएँ-बाएँ कानों पर हाथ रखे अंदर भाग गई।

सुबह मिर्जा ने प्रोफेसर को उनकी रात की कथनी और करनी से आगाह किया तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि उनसे ऐसी हरकत भी हो सकती है। उसी समय जाकर उस नेक बीवी से क्षमा माँगने की जिद करने लगे। मिर्जा ने बड़ी कठिनाई से रोका। उस रात उन्हें शर्म के मारे नींद नहीं आई। नींद तो दूसरी रात भी नहीं आई मगर किसी और कारण से। वो कारण यह था कि महोदया स्वयं बैंक में पधारीं और कहने लगीं कि एक पुर्जे के कारण रात इंटरव्यू ठीक से रिकार्ड नहीं हुआ इसलिए दोबारा चाय पर पधारने की कृपा करें।

और हाँ! आज वह दोनों कानों में मोतिये की कलियों की बालियाँ पहने थीं। कान की लौ न जाने कितनी बार गुलाबी हुई होगी। जब वो विदा हुई तो एक कली खिल चुकी थी।

(1965-1968)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

उपन्यास

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

हुए मर के हम जो रुसवा

[पीछे](#)[आगे](#)

अब तो नियम-सा बन गया है कि कहीं मातमपुर्सी या कफन-दफन में जाना पड़े तो मिर्जा को जरूर साथ ले लेता हूँ। ऐसे अवसर पर हर शख्स सांत्वना के बतौर कुछ न कुछ कहता है मगर मुझे न जाने क्यों चुप लग जाती है। इससे कई बार न केवल उस घर वालों बल्कि मुझे भी स्वयं बड़ा दुख होता है लेकिन मिर्जा ने चुप होना सीखा ही नहीं, बल्कि यूँ कहना चाहिए कि सही बात को गलत मौके पर बेझिझक कहने की जो जन्मजात योग्यता उन्हें प्रदान की गई है, वह कुछ ऐसे ही अवसरों पर गुल खिलाती है। वह घुप्प अँधेरे में रास्ते के किनारे चिराग नहीं जलाते, फुलझड़ी छोड़ते हैं जिससे बस उनका अपना चेहरा रात के काले फ्रेम में जगमग करने लगता है और फुलझड़ी का शब्द तो यूँ ही लिहाज में कलम से निकल गया, वर्ना होता यह है कि -

जिस जगह बैठ गए आग लगाकर उठे

इसी गुण के कारण वह खुदा के उन हाजिर-नाजिर बंदों में से हैं जो मुहल्ले के हर छोटे-बड़े आयोजन में शादी हो या गमी मौजूद होते हैं। विशेष रूप से दावतों में सबसे पहले पहुँचते और सबके बाद उठते हैं। उस उठने-बैठने के अंदाज में एक खुला फायदा यह देखा कि वह बारी-बारी सब की बुराई कर डालते हैं। उनकी कोई नहीं कर पाता।

चुनांचे उस सनीचर की शाम को भी मेवाशाह कब्रिस्तान में वह मेरे साथ थे। सूरज इन खामोशियों को, जिसे खुदा के हजारों बंदों ने मर-मर के बसाया था, लाल अंगारा-सी आँख से देखता-देखता अंग्रेजों के प्रताप की तरह डूब रहा था। चारों तरफ मौत की हुकूमत थी और सारा कब्रिस्तान ऐसा उदास और उजाड़ था जैसे किसी बड़े शहर का बाजार इतवार को, सभी दुखी थे। (मिर्जा के कथनानुसार दफन के समय मुर्दे के सिवा सब दुखी होते हैं मगर मिर्जा सबसे अलग-थलग एक पुराने कतबे (मजार का शिलालेख) पर नजरें गाड़े मुस्करा रहे थे। चंद लम्हों बाद मेरे पास आए और मेरी पसलियों में अपनी कुहनी से अंकुश लगाते हुए उस कतबे तक ले गए जिस पर जन्मतिथि, पेंशन, जन्म-स्थान, आवास, वल्दियत, ओहदा (ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, तीसरा दर्जा), कब्र में सुखी की तमाम डिगरियाँ मय डिवीजन और यूनिवर्सिटी के नाम के खुदी थीं और आखिर में निहायत साफ व बड़े अक्षरों में मुँह फेर कर जाने वाले को एक मुक्तक के माध्यम से यह पूर्व सुसमाचार दिया गया था कि अल्लाह ने चाहा तो बहुत जल्द उसका भी यही हश्र होने वाला है।

मैंने मिर्जा से कहा, 'यह मजार का शिलालेख है या नौकरी की दरखास्त? भला डिगरियाँ, ओहदा और वल्दियत आदि लिखने की क्या तुक थी?'

उन्होंने स्वभावानुसार बस एक शब्द पकड़ लिया। कहने लगे, 'ठीक कहते हो। जिस तरह आजकल किसी की आयु या वेतन पूछना बुरी बात समझी जाती है, इसी तरह, बिल्कुल इसी तरह बीस साल बाद किसी के पिता का नाम पूछना अशिष्टता समझी जाएगी।

अब मुझे मिर्जा की चौंचाल तबीयत में खतरा महसूस होने लगा। इसलिए उन्हें वल्दियत के भविष्य पर मुस्कुराता छोड़ कर मैं आठ-दस कब्र दूर एक टुकड़ी में शामिल हो गया जहाँ एक साहब स्वर्गीय के जीवन का मजे ले ले कर बयान कर रहे थे। वह कह रहे थे कि खुदा उन्हें अपने कृपा सागर में डुबोए, स्वर्गीय ने इतनी लंबी उम्र पाई कि उनके निकटवर्ती परिजन दस पंद्रह साल के उनकी इंशोरेंस पॉलिसी की आस में जी रहे थे। उन उम्मीदवारों में अधिकतर को स्वर्गीय खुद अपने हाथ से मिट्टी दे चुके थे। शेष को यकीन हो गया था कि स्वर्गीय ने अमृत न केवल चखा है बल्कि डगडगा के पी चुके हैं। साक्षी ने तो यहाँ तक विवरण दिया कि चूँकि स्वर्गीय शुरु से रखरखाव के बेहद कायल थे, अतः अंत तक इस स्वास्थ्यवर्धक मान्यता पर कायम रहे कि छोटों को सम्मान प्रदर्शन के लिए पहले मरना चाहिए। अलबत्ता इन चंद बरसों से इनको सितारों की टेढ़ी चाल से यह शिकायत हो चली थी कि अफसोस अब कोई दुश्मन ऐसा बाकी नहीं रहा, जिसे वह मरने की बद्दुआ दे सकें।

उनसे कट कर मैं दूसरी टोली में जा मिला। यहाँ स्वर्गीय के एक परिचित और मेरे पड़ोसी उनके कलहड़ (वह लड़का जो अपनी माँ की दूसरी शादी में नए पिता को मिले) लड़के को सब्र की नसीहत और गोल-मोल शब्दों में उसके स्थानापन्न की दुआ देते हुए कह रहे थे कि बेटे यह स्वर्गीय के मरने के दिन नहीं थे। हालाँकि पाँच मिनट पहले यही साहब, जी हाँ, यही साहब मुझसे कह रहे थे कि स्वर्गीय ने पाँच साल पहले दोनों बीवियों को अपनी तीसरी शादी की बहारें दिखाई थीं और यह उनके मरने के नहीं, डूब मरने के दिन थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने उँगलियों पर हिसाब लगाकर कानाफूसी के अंदाज में यह तक बताया कि तीसरी बीवी की उम्र स्वर्गीय की पेंशन के बराबर है। मगर है बिल्कुल सीधी और बेजुबान। उस अल्लाह की बंदी ने कभी पलट कर नहीं पूछा कि तुम्हारे मुँह में कितने दाँत नहीं हैं। मगर स्वर्गीय इस खुशफहमी में थे कि उन्होंने केवल अपनी प्रार्थनाओं के जोर से सुघड़ महिला का चाल-चलन काबू में कर रखा है। अलबत्ता ब्याहता बीवी से उनकी कभी नहीं बनीं। भरी जवानी में भी मियाँ बीवी 36 के अंक की तरह एक-दूसरे से मुँह फेरे रहे और जब तक जिए, एक दूसरे के स्नायुओं पर हावी रहे। उक्त श्रद्धेया ने मशहूर कर रखा था कि (खुदा उनकी रूह को शर्मिदा न करे) स्वर्गीय शुरु से ही ऐसे जालिम थे कि शादी के प्रीतिभोज का खाना भी मुझ नई-नवेली दुल्हन से पकवाया।

मैंने बात का रुख मोड़ने की खातिर घने कब्रिस्तान की तरफ इशारा करते हुए कहा कि देखते ही देखते चप्पा-चप्पा आबाद हो गया। मिर्जा स्वभावानुसार फिर बीच में कूद पड़े। कहने लगे, 'देख लेना, वह दिन जियादा दूर नहीं जब कराची में मुर्दे को खड़ा गाड़ना पड़ेगा और नायलौन के रेडीमेड कफन में ऊपर जिप लगेगी ताकि मुँह देखने-दिखाने में आसानी रहे।'

मेरी तबीयत इन बातों से ऊबने लगी तो एक दूसरे झुंड में चला गया जहाँ दो नौजवान सितार के गिलाफ जैसी पतलून चढ़ाये चहक रहे थे। पहले टेडीब्वाय की पीली कमीज पर लड़कियों की ऐसी तस्वीरें बनी थीं कि नजर पड़ते

ही नेक आदमी लानत भेजने लगे और हमने देखा कि हर नेक आदमी बार-बार लाहौल पढ़ रहा है। दूसरे नौजवान को स्वर्गीय की असमय मौत से वाकई दिली सदमा पहुँचा था क्योंकि उसका सारा 'वीक-एंड' चौपट हो गया था।

चौचलों और चुहलों का यह सिलसिला शायद कुछ देर और जारी रहता कि इतने में एक साहब ने हिम्मत करके स्वर्गीय के संबंध में पहली भली बात कही और मेरी जान में जान आई। उन्होंने सही फरमाया, 'यूँ आँख बंद होने के बाद लोग कीड़े निकालने लगे, यह और बात है, मगर खुदा उनकी कब्र को खुशबुओं से भर दे, स्वर्गीय निस्संदेह दिल के साफ, नेक नीयत इन्सान थे और नेकनाम भी। यह बड़ी बात है।'

'नेकनामी में कोई शक नहीं, स्वर्गीय अगर यूँ ही हाथ धोने जाते तो सब यही समझते कि नमाज के लिए वजू कर रहे हैं...' वाक्य पूरा होने से पहले प्रशंसक की चमकती चंदिया अचानक एक धँसी हुई कब्र में अस्त हो गई।

इस मोड़ पर एक तीसरे साहब ने (जिनसे मैं परिचित नहीं), किसी पर छींटाकशी करूँ तो मुँह काला हो वाले लहजे में नेकनीयती और साफदिली की व्याख्या करते हुए फरमाया कि कई लोग अपनी पैदायशी कायरता के कारण तमाम उम्र पापों से बचे रहते हैं। इसके उलट कई के दिल दिमाग वाकई आईने की तरह साफ होते हैं - यानी नेक विचार आते हैं और गुजर जाते हैं।

मेरी शामत आई थी कि मेरे मुँह से निकल गया कि, 'नीयत का हाल सिर्फ खुदा पर रोशन है मगर अपनी जगह यही क्या कम है कि स्वर्गीय सबके दुख-सुख में शरीक और छोटे-से-छोटे पड़ोसी से भी झुककर मिलते थे।'

अरे साहब! यह सुनते ही वह साहब तो लाल-भभूका हो गए। बोले, 'माननीयो! मुझे खुदाई का दावा तो नहीं। फिर भी इतना तो जानता हूँ कि अक्सर बूढ़े खुर्राट अपने पड़ोसियों से केवल इसलिए झुक कर मिलते हैं कि अगर वह खफा हो गए तो कंधा कौन देगा।'

खुशकिस्मती से एक खुदा-तरस ने मेरा पक्ष लिया। मेरा मतलब है स्वर्गीय का पक्ष लिया। उन्होंने कहा कि स्वर्गीय ने माशाअल्लाह इतनी लंबी उम्र पाई मगर सूरत पर जरा नहीं बरसती थी। चुनांचे सिवाय कनपटियों के और बाल सफेद नहीं हुए। चाहते तो खिजाब लगाकर छोटों में शामिल हो जाते मगर तबीयत ऐसी मस्त पाई थी कि खिजाब का कभी झूठों ध्यान नहीं आया।

वह साहब सचमुच फट पड़े, 'आप को खबर भी है? स्वर्गीय का सारा सर पहली शादी के बाद ही सफेद गाला हो गया था मगर कनपटियों को वह जानबूझकर सफेद रहने देते थे ताकि किसी को शक न हो कि खिजाब लगाते हैं। सिल्वर ग्रे कलमें, यह तो उनके मेकअप में एक नेचुरल टच था।'

'अरे साहब! इसी कारण से तो उन्होंने अपना एक नकली दाँत तोड़ रखा था।' एक दूसरे निंदक ने ताबूत में अंतिम कील ठोकी।

'कुछ भी सही, वह उन खूसटों से हजार दर्जे अच्छे थे जो अपने पोपले मुँह और सफेद बालों की दाद छोटों से यूँ माँगते फिरते हैं जैसे यह उनकी निजी संघर्ष का फल है।' मिर्जा ने बिगड़ी बात बनाई।

उनसे पीछा छुड़ा कर कच्ची-पक्की कब्रें फाँदता मैं मुंशी सनाउल्ला के पास जा पहुँचा जो एक कब्र के शिलालेख से टेक लगाए, बेरी के हरे-हरे पत्ते कचर-कचर चबा रहे थे और इस बात पर बार-बार आश्चर्य प्रकट कर रहे थे कि

अभी परसों तक तो स्वर्गीय बातें कर रहे थे। गोया इनकी अपनी मरण-नियमावली के अनुसार स्वर्गीय को मरने से तीन-चार साल पहले चुप हो जाना चाहिए था।

भला मिर्जा ऐसा मौका कहाँ खाली जाने देते थे। मुझे संबोधित करके कहने लगे, 'याद रखो मर्द की आँख और औरत की जुबान का दम सबसे अंत में निकलता है।'

यूँ तो मिर्जा के बयान से असंबोधित स्वर्गीय की विधवाएँ भी एक दूसरे की छाती पर दोहत्थड़ मारकर बैन कर रही थी, लेकिन स्वर्गीय के बड़े धवेते ने जो पाँच साल से बेरोजगार था, चीख-चीख कर अपना गला बैठा लिया था। मुंशी जी बेरी के पत्तों का रस चूस-चूसकर जितना उसे समझाते पुचकारते, उतना ही वह स्वर्गीय की पेंशन को याद करके दहाड़ें मारकर रोता। अगर उसे एक तरफ यमदूतों से शिकायत थी कि उन्होंने तीस तारीख तक इंतजार क्यों न किया तो दूसरी तरफ खुद स्वर्गीय से भी सख्त शिकायत थी।

क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और?

इधर मुंशीजी का सारा जोर इस फिलासफी पर था कि बेटे यह सब नजर का धोखा है। वास्तव में जिंदगी और मौत में कोई फर्क नहीं, कम-से-कम एशिया में। साथ ही स्वर्गीय बड़े भाग्यशाली थे कि दुनिया के बखेड़ों से इतनी जल्दी आजाद हो गए मगर तुम हो कि नाहक अपनी जवान जान को परेशान किए जा रहे हो। यूनानी कहावत है कि - वही मरता है जो महबूबे-खुदा होता है

दर्शक अभी दिल ही दिल में ईर्ष्या से जले जा रहे थे कि हाय स्वर्गीय की आई हमें क्यों न आ गई कि दम भर को बादल के एक फालसई टुकड़े ने सूरज को ढक लिया और हल्की-हल्की फुहार पड़ने लगी। मुंशी जी ने एक बार में ही बेरी के पत्तों का रस निगलते हुए इस को स्वर्गीय के स्वर्ग के योग्य होने का शगुन करार दिया लेकिन मिर्जा ने भरे मजमे में सर हिला-हिलाकर इस वक्तव्य से विरोध किया। मैंने अलग ले जाकर कारण पूछा तो बोले :

'मरने के लिए सनीचर का दिन बहुत मनहूस होता है।'

लेकिन सबसे अधिक पतला हाल स्वर्गीय के एक दोस्त का था, जिनके आँसू किसी तरह थमने का नाम न लेते थे कि उन्हें स्वर्गीय से पुराने साथ व संबंधों का दावा था। इस आत्मिक एकता के सुबूत में अक्सर इस घटना का जिक्र करते कि कायदा खत्म होने से एक दिन पहले हम दोनों ने एक साथ सिगरेट पीना सीखा। चुनांचे उस वक्त भी उक्त सज्जन के बैन से साफ टपकता था कि स्वर्गीय किसी सोची समझी योजना के तहत दाग बल्कि दगा दे गए और बगैर कहे सुने पीछा छुड़ा चुपचुपाते स्वर्ग को रवाना हो गए - अकेले ही अकेले।

बाद में मिर्जा ने विवरण सहित बताया कि आपसी प्रेम और एके का यह हाल था कि स्वर्गीय ने तीन माह पहले महोदय से दस हजार रुपए नकद बतौर कर्ज लिए और वह तो कहिए कि उसी रकम से तीसरी बीवी का महर भुगता कर गए वरना कयामत में अपने सास-ससुर को क्या मुँह दिखाते।

2

आपने अक्सर देखा होगा कि घने मुहल्लों में विभिन्न बल्कि विपरीत एक दूसरे में बड़ी खूबी से घुल-मिल जाते हैं जैसे दोनों वक्त मिल रहे हों। चुनांचे अक्सर हजरात शादी की दावत में हाथ धोते वक्त चालीसर्वे (मृतक भोज) की

बिरयानी की डकार लेते, या मृत्यु के तीसरे दिन के खाने में सुहागरात की विजय की आनंददायक दास्तान सुनाते पकड़े जाते हैं। पड़ोसी होने के मजे का यह नक्शा भी देखने में आया कि एक किवाड़ में हनीमून मनाया जा रहा है तो रतजगा दीवार के उस पार हो रहा है और यँ भी होता है कि दाईं तरफ वाले घर में आधी रात को कच्चा बिल्लियाँ लड़ा रहे हैं तो मस्ती बाईं तरफ वाले घर में आ रही है। आमदनी पड़ोसी की बढ़ती है तो उस खुशी में अनुचित खर्च हमारे घर का बढ़ता है और यह हादसा भी कई बार हुआ कि मछली बाँकी पड़ोसन ने पकाई और -

मुद्दतों अपने बदन से तिरी खुशबू आई

इन आयोजनों के घपले का सही अंदाजा मुझे दूसरे दिन हुआ जब एक शादी की दावत में तमाम वक्त स्वर्गीय की मौत की चर्चा होती रही। एक बुजुर्ग ने, जो कि सूरत से खुद जाने को तैयार मालूम होते थे, घबराये हुए लहजे में पूछा, 'आखिर हुआ क्या?' जवाब में स्वर्गीय के एक सहपाठी ने इशारों में बताया कि स्वर्गीय जवानी में विज्ञापनों वाली बीमारियों का शिकार हो गए थे। अर्धे उम्र में शारीरिक संबंधों में लगे रहे लेकिन आखिरी दिनों में बुराइयों से बचने की बीमारी हो गई थी।

'फिर भी आखिर हुआ क्या?' उस पार जाने को तैयार वृद्ध महोदय ने अपना सवाल दोहराया।

'भले-चंगे थे। अचानक एक हिचकी आई और जान दे दी।' दूसरे बुजुर्ग ने अँगोछे से एक फर्जी आँसू पोंछते हुए फरमाया।

'सुना है चालीस बरस से मरण-रोग से ग्रसित थे।' एक साहब ने सूखे से मुँह से कहा।

'क्या मतलब?'

'चालीस बरस से खाँसी चल रही थी और अंत में इसी में जान दे दी।'

'साहब! जन्नती थे कि किसी अजनबी मरज में नहीं मरे। वरना अब तो मेडिकल साइंस की तरक्की का यह हाल है कि रोज एक नया मरज आविष्कार होता है।'

'आपने गांधी गार्डन में उस बोहरी सेठ को चहलकदमी करते नहीं देखा जो कहता है कि मैं सारी उम्र दमे पर इतनी लागत लगा चुका हूँ कि अब अगर किसी और बीमारी में मरना पड़ा तो खुदा की कसम खुदकुशी कर लूँगा।' मिर्जा चुटकुलों पर उतर आए।

'वल्लाह! मौत हो तो ऐसी हो। (सिसकी) स्वर्गीय के होंटों पर आखिरी बेहोशी में भी मुस्कराहट खेल रही थी।'

'अपने कर्ज देने वालों का ध्यान आ रहा होगा।'

मिर्जा मेरे काम में फुसफुसाए।

'गुनहगारों का मुँह मरते वक्त सूअर जैसा हो जाता है, मगर बुरी नजर न लगे, स्वर्गीय का चेहरा गुलाब की तरह खिला हुआ था।'

'साहब! सिलेटी रंग का गुलाब हमने आज तक नहीं देखा।' मिर्जा की ठंडी-ठंडी नाक मेरे कान को छूने लगी और उनके मुँह से कुछ ऐसी आवाजें निकलने लगीं जैसे कोई बच्चा चमकीले फर्नीचर पर गीली उँगली रगड़ रहा हो।

मूल शब्द तो ध्यान से उतर गए, लेकिन इतना अब भी याद है कि अँगोछे वाले बुजुर्ग ने एक दार्शनिक भाषण दे डाला, जिसका अर्थ कुछ ऐसा था कि जीने का क्या है। जीने को तो जानवर भी जी लेते हैं लेकिन जिसने मरना नहीं सीखा वह जीना क्या जाने? एक मुस्कान भरा समर्पण, एक बेताब आतुरता के साथ मरने के लिए एक उम्र का अभ्यास चाहिए है। यह बड़े जिगरे, बड़े हौसले का काम है बंदानवाज।

फिर उन्होंने बेमौत मरने के खानदानी नुस्खे और हँसते-खेलते निकलने के पैंतरे कुछ ऐसे उस्तादाना तेवर से बयान किए कि हमें सामान्य मरने वालों से हमेशा के लिए नफरत हो गई।

बातचीत इस पर खत्म हुई कि स्वर्गीय ने किसी रूहानी तरीके से सुन-गुनवा ली थी कि मैं सनीचर को मर जाऊँगा।

'हर मरने वाले के संबंध में यही कहा जाता है', सचित्र कमीज वाला टेडीब्वाय बोला।

'कि वह सनीचर को मर जाएगा?' मिर्जा ने उस बेलगाम का मुँह बंद किया।

अँगोछे वाले बुजुर्ग ने पहले अँगोछे से अपने नरी के जूते की गर्द झाड़ी फिर माथे से पसीना पोंछते हुए स्वर्गीय के मृत्यु-आभास की गवाही दी कि स्वर्गीय ने ईश्वर-मिलन से ठीक चालीस दिल पहले मुझसे कहा था कि मरना है।

इनसान के बारे में यह ताजा खबर सुन कर मिर्जा मुझे अकेले में ले गए। दरअस्त अकेले का शब्द उन्होंने प्रयोग किया था, वरना जिस जगह वह मुझे धकेलते हुए ले गए थे, वह जनाने और मर्दाने की सरहद पर एक चबूतरा था, जहाँ एक मिरासन घूँघट निकाले ढोलक पर गालियाँ गा रही थी। वहाँ उन्होंने उस प्यार की तरफ इशारा करते हुए, जो स्वर्गीय को अपनी मौत से था, मुझे आगाह किया कि यह ड्रामा तो स्वर्गीय अक्सर खेला करते थे। आधी रात में अपनी होने वाली विधवाओं को जगाकर धमकियाँ देते थे कि मैं अचानक अपना साया तुम्हारे सर से उठा लूँगा। पलक झपकते ही माँग उजाड़ दूँगा। अपने बेतकल्लुफ दोस्तों से भी कहा करते कि वल्लाह अगर आत्महत्या जुर्म न होती तो कभी का अपने गले में फंदा डाल लेता। कभी यूँ भी होता कि अपने-आप को मुर्दा सोच कर डकराने लगते और कल्पना की आँख से मँझली के सोंटा से हाथ देख कर कहते, कसम खुदा की मैं तुम्हारा रँडापा नहीं देख सकता। मरने वाले की एक-एक खूबी बयान करके सूखी सिसकियाँ भरते और सिसकियों के बीच में सिगरेट के कश लगाते और जब इस कार्य से अपने ऊपर रुलाई चढ़ा लेते तो रूमाल से बार-बार आँख के बजाय अपनी डबडबाई हुई नाक पोंछते जाते। फिर जब रोने की अधिकता से नाक लाल हो जाती तो थोड़ा सब्र आता और वह कल्पना की हालत में अपने कँपकँपाते हुए हाथ से तीनों विधवाओं की माँग में एक के बाद एक ढेरों अफशाँ (कुछ मुस्लिम सिंदूर की जगह इसे प्रयोग करते हैं) भरते। इस से निवृत्त होकर हर एक को कुहनियों तक महीन-महीन, फँसी-फँसी चूड़ियाँ पहनाते (नई ब्याहता को चार चूड़ियाँ कम पहनाते थे।)

हालाँकि इससे पहले भी मिर्जा को कई बार टोक चुका था कि उस्ताद ज़ौक (बहादुर शाह जफर के उस्ताद) हर कसीदे के बाद मुँह भर-भर के कुल्लियाँ किया करते थे। जो तुम पर हर वाक्य, हर पंक्ति के बाद जरूरी हैं लेकिन इस वक्त स्वर्गीय के बारे में यह ऊल-जलूल बातें और ऐसे खुले लहजे में सुनकर मेरी तबीयत को जियादा ही घिन

चढ़ गई। मैंने दूसरों पर ढालकर मिर्जा को सुनाई, 'यह कैसे मुसलमान हैं मिर्जा। निजात की दुआ नहीं करते, न करें। मगर ऐसी बातें क्यों बनाते हैं यह लोग?'

'जनता की जुबान किसने पकड़ी है। लोगों का मुँह तो चालीसवें के खाने से ही बंद होता है।'

3

मुझे चालीसवें में भी सम्मिलित होने का अवसर मिला लेकिन सिवाय एक शांत स्वभाव मौलवी साहब के जो पुलाव के चावलों की लंबाई और गलावट को स्वर्गीय के स्वर्ग में जगह मिलने की निशानी करार दे रहे थे, शेष लोगों की बातचीत का अंदाज वही था। वही जगजगें थे वही चहचहे।

एक बुजुर्गवार जो नान कोरमे के हर गर्मागर्म निवाले के बाद आधा-आधा गिलास पानी पीकर वक्त से पहले संतुष्ट बल्कि तृप्त हो गए थे, मुँह लाल करके बोले कि स्वर्गीय की औलाद बड़ी नालायक निकली। स्वर्गीय जोरदार वसीयत कर गए थे कि मेरी मिट्टी बगदाद ले जाई जाए लेकिन अवज्ञाकारी औलाद ने उनकी अंतिम इच्छा का थोड़ा भी ध्यान न किया।

इस पर एक मुँहफट पड़ोसी बोल उठे, 'साहब! यह स्वर्गीय की सरासर जियादती थी कि उन्होंने खुद तो मौत आने तक म्यूनिसिपल सीमा से बाहर कदम नहीं निकाला। हद यह कि पासपोर्ट तक नहीं बनवाया और...'

एक वकील साहब ने कानूनी नुक्ता निकाला, 'अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से पासपोर्ट की शर्त सिर्फ जिंदों के लिए है। मुर्दे पासपोर्ट के बगैर भी जहाँ चाहें जा सकते हैं।'

'ले जाए जा सकते हैं।' मिर्जा ने लुकमा दिया।

मैं कह यह रहा था कि यूँ तो हर मरने वाले के सीने में यह ख्वाहिश सुलगती रहती है कि मेरी काँसे की मूर्ति (जिसे आदमकद बनाने के लिए कभी-कभी अपनी तरफ से पूरे एक फुट की बढ़ोत्तरी करनी पड़ती है) म्यूनिसिपल पार्क के बीचों-बीच लगाई जाए और...'

'...और शहर की सारी हसीनाएँ चार महीने दस दिन तक मेरी मैय्यत को गोद में लिए बाल बिखराए बैठी रहें।' मिर्जा ने दूसरी पंक्ति लगाई।

'मगर साहब! वसीयतों की भी एक हद होती है। हमारे छुटपन का एक किस्सा है। पीपल वाली हवेली के पास एक झोंपड़ी में सन 1939 ई. तक एक अफीमची रहता था। हमारे संकोचग्रस्त अनुमान के अनुसार उम्र 66 साल से किसी तरह कम न रही होगी। इसलिए कि खुद कहता था कि पैंसठ साल से तो अफीम खा रहा हूँ। चौबीसों घंटे अंटा गफिल रहता था। जरा नशा टूटता तो उदास हो जाता - गम यह था कि दुनिया से बेऔलाद जा रहा हूँ। अल्लाह ने कोई बेटा नहीं दिया जो उसकी बान की चारपाई का जायज वारिस बन सके। इसके बारे में मुहल्ले में मशहूर था कि पहले विश्वयुद्ध के बाद से नहाया नहीं है। उसको इतना तो हमने भी कहते सुना कि खुदा ने पानी सिर्फ पीने के लिए बनाया था मगर इनसान बड़ा जालिम है - राहतें और भी हैं गुस्ल की राहत के सिवा

'हाँ तो साहब! जब उसकी आखिरी घड़ी आई तो मुहल्ले की मस्जिद के इमाम का हाथ अपने डूबते दिल पर रखकर यह करार किया कि मेरी मैय्यत को नहलाया न जाए। बस, पोले-पोले हाथों से मिट्टी से साफ करके दफना दिया

जाए वरना कयामत में दामन पकड़ेगा।'

वकील साहब ने अनुमोदन करते हुए कहा, 'अक्सर मरने वाले अपने करने के काम अपने परिजनों पर छोड़कर ठंडे-ठंडे सिंधार जाते हैं। पिछली गर्मियों में दीवानी अदालतें बंद होने से कुछ दिन पहले एक स्थानीय शायर का देहांत हुआ। सच्चाई है कि उनके जीते जी किसी फिल्मी रिसाले ने भी उनकी अश्लील नज्मों को छपने से शर्मिंदा न किया लेकिन आप को हैरत होगी कि मृतक अपने भतीजे को पुण्य प्राप्ति का यह मार्ग समझा गए कि मेरी मौत के बाद मेरा कलाम कत्थई कागज पर छपवा कर साल के साल मेरी बरसी पर भिखारियों और संपादकों को बुलाकर मुफ्त बाँट दिया जाए।

पड़ोसी की हिम्मत और बढ़ी, 'अब स्वर्गीय ही को देखिए। जिंदगी में ही जमीन का एक टुकड़ा अपनी कब्र के लिए बड़े अरमानों से रजिस्ट्री करा लिया था। यूँ तो बेचारे उस पर कब्जा पूरे बारह साल बाद ले पाए। नसीहतों और वसीयतों का यह हाल था कि मौत से दस साल पहले एक सूची अपने धवेलों के हवाले की जिसमें नाम लिखे थे कि फलॉ वल्द फलॉ को मेरा मुँह न दिखाया जाए।' (जिनसे जियादा नाराज थे उनके नाम के आगे वल्दियत नहीं लिखी थी। तीसरी शादी के बाद उन्हें इसका विराट एडीशन बनाना पड़ा, जिसमें तमाम जवान पड़ोसियों के नाम शामिल थे।)

'हमने तो यहाँ तक सुना है कि स्वर्गीय न सिर्फ अपने जनाजे में शरीक होने वालों की संख्या तय कर गए थे, बल्कि आज के चालीसवें का मेन्यू भी खुद ही तय कर गए थे।' वकील ने रेखाचित्र में चटख रंग भरा।

इस नाजुक मोड़ पर खशखशी दाढ़ी वाले बुजुर्ग ने पुलाव से तृप्त होकर अपने पेट पर हाथ फेरा, मेन्यू के अनुमोदन और प्रशंसा में एक लंबी डकार दागी, जिसके आखिर में एक मासूम इच्छा प्रकट की कि काश आज स्वर्गीय जिंदा होते तो यह व्यवस्था देखकर बहुत खुश होते।

अब पड़ोसी ने अपनी जुबान की तलवार म्यान से निकाली, 'स्वर्गीय सदा से संग्रहणी के मरीज थे। खाना तो खाना बेचारे के पेट में बात तक नहीं ठहरती थी। चटपटी चीजों को तरसते ही मरे। मेरे घर में बता रही थीं कि एक बार मलेरिया में सरसाम हो गया और लगे बहकने। बार-बार अपना सर मँझली की रान पर पटकते और सुहाग की कसम दिला कर यह वसीयत करते थे कि हर जुमेरात मेरी फातिहा चाट और कुँवारी बकरी की सिरी पर दिलवायी जाए।'

मिर्जा फड़क ही तो गए। होंठ पर जुबान फेरते हुए बोले, 'साहब वसीयतों की कोई हद नहीं। हमारे मुहल्ले में डेढ़ पौने दो साल पहले एक स्कूल मास्टर का देहांत हुआ जिन्हें मैंने ईद बकरीद पर भी पूरा और साबुत पाजामा पहने नहीं देखा मगर मरने से पहले वह भी अपने लड़के को हिदायत कर गए कि -

पुल बना, कुआँ बना, मस्जिदो-तालाब बना

लेकिन अब्बा हुजूर की अंतिम वसीयत के अनुसार पुण्य का रास्ता बनाने में गरीबी के अलावा देश का कानून भी रोड़ा बना।'

'यानी क्या?', वकील साहब के कान खड़े हुए।

'यानी यह कि आजकल पुल बनाने की अनुमति सिर्फ पी.डब्ल्यू.डी. को है और अगर कठिन कल्पना करें कि कराची में चार फीट गहरा कुआँ खोद भी लिया तो पुलिस इस खारा कीचड़ पीने वालों का चालान खुदकुशी का कदम उठाने में कर देगी। यूँ भी फटीचर से फटीचर कस्बे में आजकल कुएँ सिर्फ ऐसे वैसे मौकों पर डूब मरने के लिए काम आते हैं। रहे तालाब तो हुजूर! ले देकर इनका सिर्फ यह उद्देश्य रह गया है कि दिन भर गाँव की भैंसों इनमें नहाएँ और सुबह जैसी आई थीं, उससे कहीं अधिक गंदी होकर दिया-जले बाड़े में पहुँचें।'

खुदा-खुदा करके यह डायलॉग खत्म हुआ तो पटाखों का सिलसिला शुरू हो गया :

'स्वर्गीय ने कुछ छोड़ा भी?'

'बच्चे छोड़े हैं।'

'मगर दूसरा मकान भी तो है।'

'उसके किराये को अपने मजार की सालाना मरम्मत-सफेदी के लिए निर्देश दे कर गए हैं।'

'पड़ोसियों का कहना है कि ब्याहता बीवी के लिए एक अँगूठी भी छोड़ी है। अगर उसका नगीना अस्ली होता तो किसी तरह बीस हजार से कम की नहीं थी।'

'तो क्या नगीना झूठा है?'

'जी नहीं। अस्ली इमीटेशन है।'

'और वह पचास हजार की इंश्योरेंस पॉलिसी क्या हुई?'

'वह पहले ही मँझली के मेहर में लिख चुके थे।'

'इसके बारे में यार लोगों ने लतीफा गढ़ रखा है कि मँझली बेवा कहती है कि सरताज के बगैर जिंदगी अजीरन है। अगर कोई जिंदा कर दे तो मैं खुशी-खुशी दस हजार लौटाने को तैयार हूँ।'

'हमने घर वालों से सुना है कि अल्लाह उन्हें करवट-करवट जन्नत नसीब करे, स्वर्गीय मँझली पर ऐसे लहालोट थे कि अब भी रात-बिरात, सपनों में आकर डराते हैं।'

'स्वर्गीय अगर ऐसा करते हैं तो बिल्कुल ठीक करते हैं। अभी तो उनका कफन भी मैला नहीं हुआ होगा मगर सुनने में आया है कि मँझली ने रंगे-चुने दुपट्टे ओढ़ने शुरू कर दिए हैं।'

'अगर मँझली ऐसा करती है तो बिल्कुल ठीक करती है। आप ने सुना होगा कि एक जमाने में लखनऊ के निचले तबके में यह रिवाज था कि चालीसवें पर न सिर्फ किस्म-किस्म के खाने परोसे जाते थे, बल्कि विधवा भी सिंगार करके बैठती थीं ताकि स्वर्गीय की तरसी हुई रूह किसी हद तक फायदा उठा सके।' मिर्जा ने आखिरी कोड़ा लगाया।

वापसी पर रास्ते में मैंने मिर्जा को आड़े हाथों लिया, 'जुमे को तुमने प्रवचन नहीं सुना? मौलवी साहब ने कहा था कि मरे हुआँ का जिक्र करो तो अच्छाई के साथ। मौत को न भूलो कि एक न एक दिन सबको आनी है।'

सड़क पार करते-करते एकदम बीच में अकड़कर खड़े हो गए। फरमाया, 'अगर कोई मौलवी यह जिम्मा ले ले कि मरने के बाद मेरे नाम के आगे रहमतुल्लाह लिखा जाएगा तो आज ही - इसी वक्त, इसी जगह मरने को तैयार हूँ। तुम्हारी जान की कसम।'

अंतिम वाक्य मिर्जा ने एक बेसब्री कार के बंपर पर लगभग उकड़ूँ बैठ कर जाते हुए बोला।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

हिल स्टेशन

[पीछे](#)

[आगे](#)

उन दिनों मिर्जा के स्नायुओं पर हिल स्टेशन बुरी तरह सवार था लेकिन हमारा हाल उनसे भी अधिक बुरा था। इस लिए कि हम पर मिर्जा अपने स्नायु-मंडल और हिल स्टेशन समेत सवार थे। जान मुश्किल में थी। उठते-बैठते, सोते-जागते इसी की चर्चा, इसी का जाप। हुआ यह कि वह सरकारी खर्च पर दो दिन के लिए कोयटा हो आए थे और अब इस पर मचले थे कि हम अवैतनिक छुट्टी पर उनके साथ दो महीने वहाँ गुजार आएँ, जैसा कि गर्मियों में कराची के शरीफों और रईसों का दस्तूर है। हमने कहा, 'पूछो तो हम इसीलिए वहाँ नहीं जाना चाहते कि जिन लोगों की परछाईं से हम कराची में साल भर बचते फिरते हैं, वह सब मई-जून में वहाँ जमा होते हैं।' बोले, 'ठीक कहते हो! मगर खुदा के बंदे अपनी सेहत तो देखो। तुम्हें अपने बाल-बच्चों पर तरस नहीं आता? कब तक हकीम, डॉक्टरों का पेट पालते रहोगे? वहाँ पहुँचते ही बगैर दवा के ठीक हो जाओगे। पानी में दवा की तासीर है और किसी-किसी दिन (मुस्कराते हुए) मजा भी वैसा ही। यूँ भी जो समय पहाड़ पर बीते, उम्र में से काटा नहीं जाता। मक्खी, मच्छर का नाम नहीं। कीचड़ ढूँढ़े से नहीं मिलती। इसलिए कि पानी की सख्त किल्लत है। लोगों की तंदुरुस्ती का हाल तुम्हें क्या बताऊँ। जिसे देखो, गालों से गुलाबी रंग टपका पड़ रहा है। अभी पिछले साल वहाँ एक मंत्री ने अस्पताल का उद्घाटन किया तो तीन दिन पहले एक मरीज को कराची से बुलवाना पड़ा और उस की निगरानी पर चार बड़े डॉक्टर तैनात किए गए कि कहीं वह उद्घाटन से पहले ही ठीक न हो जाए। हमने कहा, 'हवा-पानी अपनी जगह, मगर हम दवा के बिना स्वयं को नार्मल महसूस नहीं करते।' बोले, 'इसकी चिंता न करो। कोयटा में आँख बंद करके किसी भी बाजार में निकल जाओ। हर तीसरी दुकान दवाओं की मिलेगी और हर दूसरी दुकान तंदूरी रोटियों की।' पूछा, 'और पहली दुकान', बोले, 'उसमें दुकानों के लिए साइन बोर्ड तैयार किए जाते हैं।' हमने कहा, 'लेकिन कराची की तरह वहाँ कदम-कदम पर डॉक्टर कहाँ? आज कल तो बगैर डॉक्टर की मदद के आदमी मर भी नहीं सकता। कहने लगे, 'छोड़ो भी। फर्जी बीमारियों के लिए तो यूनानी दवाएँ सबसे कारागर होती हैं।'

हमारे अनुचित शकों और गलतफहमियों का इस अकाट्य ढंग से निपटारा करने के बाद उन्होंने अपना वकीलों का-सा ढंग छोड़ा और बड़ी गर्मजोशी से हमारा हाथ अपने हाथ में लेकर हम नेको-बद हुजूर को समझाए जाते हैं वाले अंदाज में कहा, 'भई तुम्हारी गिनती भी संपन्न लोगों में होने लगी, जभी तो बैंक को पाँच हजार कर्ज देने में संकोच न हुआ। कसम खुदा की, मैं ईर्ष्या नहीं करता। खुदा जल्द तुम्हारी हैसियत में इतनी तरक्की दे कि पचास

हजार तक के कर्जदार हो सको। मैं अपनी जगह सिर्फ यह कहना चाहता था कि अब तुम्हें अपने इन्कम-ब्रेकेट वालों की तरह गर्मियाँ बिताने हिल स्टेशन जाना चाहिए। यह नहीं तो कम से कम छुट्टी लेकर घर ही बैठ जाया करो। तुम्हारा यूँ खुले आम सड़कों पर फिरना किसी तरह उचित नहीं। मेरी सुनो! 1956 ई. की बात है। गर्मियों में कुछ यही दिन थे। मेरी बड़ी बच्ची स्कूल से लौटी तो बहुत रुआँसी थी। कुरेदने पर पता चला उसकी एक सहेली ने, जो स्वात घाटी जा रही थी, ताना दिया कि क्या तुम लोग गरीब हो जो साल भर अपने ही घर में रहते हो? साहब! वह दिन है और आज का दिन, मैं तो हर साल मई-जून में छुट्टी लेकर सपरिवार 'अंडर ग्राउंड' हो जाता हूँ। फिर उन्होंने कराची के और भी बहुत से छुपे हुए सज्जनों के नाम बताए जो उन्हीं की तरह हर साल अपने सम्मान की रक्षा करते हैं। अपना यह वार कारगर होते देखा तो 'नाक-आउट' की आवाज बुलंद की। बोले, 'तुम जो इधर दस साल से छुट्टी पर नहीं गए तो लोगों को खयाल हो चला है कि तुम इस डर के मारे नहीं खिसकते कि दफ्तर वालों को कहीं यह पता न चल जाए कि तुम्हारे बगैर भी काम बखूबी चल सकता है।'

किस्सा हातिमताई में एक जादुई पहाड़ का जिक्र आता है। कोहे-निदा (आवाज देने वाला पहाड़) उसका नाम है और यह नाम यूँ पड़ा कि पहाड़ की खोह से एक अजीबो-गरीब आवाज आती है कि जिस किसी को यह सुनाई दे, वह जिस हालत में, जहाँ भी हो, बिना सोचे समझे उसी की तरफ दौड़ने लगता है। फिर दुनिया की कोई ताकत, कोई रिश्ता-नाता, कोई बंधन उसे रोक नहीं सकता। अब लोग इसे किस्सा-कहानी समझकर मुस्करा देते हैं। हालाँकि सुनने वालों ने सुना है कि ऐसी आवाज अब हर साल हर पहाड़ से आने लगी है। मिर्जा का कहना है कि यह आवाज जब तुम्हें पहले-पहल सुनाई दे तो अपनी निर्धनता को अपने और पहाड़ के बीच में बाधक न होने दो। इसलिए तय हुआ कि सेहत और गैरत का तकाजा यही है कि हिल स्टेशन चला जाए। चाहे और अधिक कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। हमने दबे लहजे में याद दिलाया कि कर्ज मुहब्बत की कैंची है। मिर्जा बोले, 'देखते नहीं लोग इस कैंची को कैसी आतुरता से प्रयोग करके अपनी परेशानियाँ दूसरों को शिफ्ट कर देते हैं? साहब! हुनरमंद के हाथ में औजार भी हथियार बन जाता है।' यहाँ यह स्पष्टीकरण अनुचित न होगा कि कर्ज के बारे में मिर्जा की पंद्रह-बीस साल से वही आस्था है जो मौलाना हाली की ज्ञान के बारे में थी यानी हर तरह से हासिल करना चाहिए -

जिस से मिले, जहाँ से मिले, जिस कदर मिले

लेकिन हमने यह शर्त जरूर लगा दी कि प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स साथ होंगे तो जरा दिल्लगी रहेगी और जिरगौस भी साथ चलेंगे बल्कि हम सब इन्हीं की चमचमाती ब्यूक कार में चलेंगे।

प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स हँसोड़ न सही हास्य के मौके जरूर उपलब्ध कराते रहते हैं मगर उन्हें साथ घसीटने में दिल बहलाने के अलावा उनकी दुनिया और परलोक सँवारने का विचार भी था। वह यूँ कि कस्बा चाकसू से कराची अवतरित होने के बाद वह पंद्रह साल से रेल में नहीं बैठे थे और अब यह हाल हो गया था कि कभी म्यूनिसिपल सीमा से बाहर कदम पड़ जाएँ तो अपने-आप को मातृभूमि से दूर महसूस करने लगते। आखिर किस बाप के बेटे हैं। उनके पूज्यवर मरते मर गए, मगर फिरंगी की रेल में नहीं बैठे और अंतिम समय तक इस आस्था पर बड़े स्थायित्व से स्थिर रहे कि दूसरे कस्बों में चाँद इतना बड़ा हो ही नहीं सकता जितना कि चाकसू में। प्राकृतिक सौंदर्य के चाहने वाले। विशेष रूप से दरिया सिंध के। कहते हैं खुदा की कसम! इससे खूबसूरत दरिया नहीं देखा। वह कसम न खाएँ तब भी यह दावा शब्द-शब्द सही है, इसलिए कि उन्होंने वाकई कोई और दरिया नहीं देखा। खुदा जाने कब से उधार खाए बैठे थे। बस टोकने की देर थी। कहने लगे, 'जरूर चलूँगा। कराची तो निरा

रेगिस्तान है। बारिश का नाम नहीं। दो साल से कान परनाले की आवाज को तरस गए हैं। मैं तो सावन भादों में रात को गुस्लखाने का नल खुला छोड़ कर सोता हूँ ताकि सपने में टप-टप की आवाज आती रहे।' मिर्जा ने टोका कि कोयटा में भी बरसात में बारिश नहीं होती। पूछा, 'क्या मतलब?' बोले, 'जाड़े में होती है।'

फिर भी पाक बोहेमियन कॉफी हाउस में कई दिन तक अटकलें लगती रहीं कि प्रोफेसर कुद्स साथ चलने के लिए इतनी जल्दी कैसे आतुर हो गए और कोयटा का नाम सुनते ही मुल्तान की कोरी सुराही की तरह क्यों सनसनाने लगे। मिर्जा ने कुछ और ही कारण बताया। बोले, 'किस्सा दरअस्त यह है कि प्रोफेसर के एक दोस्त उनके लिए पेरिस से समूर के दस्ताने भेंट में लाए हैं, जिन्हें पहनने के चाव में वह जल्द-से-जल्द किसी पहाड़ी स्थान पर जाना चाहते हैं, क्योंकि कराची में तो लोग दिसंबर में भी मलमल के कुर्ते पहन कर आइस्क्रिम खाने निकलते हैं।' इस अतिशयोक्ति अलंकार की पुष्टि एक हद तक उस सूटकेस से भी हुई जिसमें प्रोफेसर यह दस्ताने रखकर ले गए थे। उस पर यूरोप के होटलों के रंग-बिरंगे लेबिल चिपके हुए थे। वह कभी उसे झाड़ते-पोंछते नहीं थे कि कहीं वह उतर न जाएँ।

अब रहे जिरगौस तो औपचारिक परिचय के लिए इतना काफी होगा कि पूरा नाम जिरगामुल इस्लाम सिद्दीकी एम.ए., एल.एल.बी., सीनियर एडवोकेट हैं। हमारे यूनिवर्सिटी के साथी हैं। उस जमाने में लड़के प्यार और सार में उन्हें 'जिरगौस' कहते थे। इन शिष्ट दायरों में वह आज भी इसी संक्षिप्त नाम से पुकारे और याद किए जाते हैं। अक्सर अपरिचित एतराज कर बैठते हैं कि, भला यह भी कोई नाम हुआ, लेकिन एक बार उन्हें देख लें तो कहते हैं, ठीक ही है। प्रोफेसर ने उनके व्यक्तित्व का वर्णन बल्कि पोस्टमार्टम करते हुए एक बार बड़े मजे की बात कही। बोले, 'उनके व्यक्तित्व में से 'बैंक-बैलेंस और ब्यूक' निकाल दें तो बाकी क्या रह जाता है?' मिर्जा ने झट से लुकमा दिया, 'एक बदनसीब बीवी!' सैर-सपाटे के रसिया, लेकिन जरा खुरच कर देखिए तो अंदर से ठेठ शहरी। ऐसा शहरी जो बड़ी मेहनत और मशक्कत से जंगलों को खत्म करके शहर बसाता है और जब शहर बस जाता है तो फिर जंगलों की तलाश में मारा-मारा फिरता है। बड़े रख-रखाव वाले आदमी हैं और उस कबीले से हैं जो फाँसी के तख्ते पर चढ़ने से पहले अपनी टाई की गाँठ ठीक करना जरूरी समझता है। अधिकतर कार से सफर करते हैं और उसे भी अदालत का कमरा समझते हैं। इसलिए अगर कराची से काबुल जाना हो तो अपने मुहल्ले के चौराहे से ही खैबर के दर्रे का पता पूछने लगेंगे। दो साल पहले मिर्जा उनके साथ मरी और कागान घाटी की सैर कर आए थे और उनका बयान है कि कराची म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की सीमा से निकलने से पहले ही वह पाकिस्तान का रोड-मैप (सड़कों का नक्शा) सीट पर फैलाकर ध्यान देखने लगे। मिर्जा ने कहा, 'तुम्हें बगैर नक्शा देखे भी यह मालूम होना चाहिए कि कराची से निकलने की एक ही सड़क है। शेष तीन तरफ समंदर है।' बोले, 'इसी लिए तो सारी समस्या है।'

इसी सफर की यादगार एक तस्वीर थी जो जिरगौस ने शोग्रां के पहाड़ पर एक पेंशनयाफता टट्टू पर इस तरह बैठ कर खिंचवाई थी जैसे नमाज में झुके हुए हों। इस तस्वीर में वह पूँछ के अलावा टट्टू की हर चीज पर सवार नजर आते थे। लगाम इतने जोर से खींच रखी थी कि टट्टू के कान उनके कानों को छू रहे थे और चारों कानों के बीच में टट्टू की गरदन पर उनकी तीन मंजिली ठोड़ी की कलम लगी हुई थी। अपना सारा वजन रकाब पर डाले हुए थे ताकि टट्टू पर बोझ न पड़े। मिर्जा कहते हैं कि खड़ी चढ़ाई के दौरान कई बार ऐसा हुआ कि टट्टू कमर लचका कर रानों के नीचे से सटक गया और जिरगौस खड़े के खड़े रह गए। कठिन ढलवानों पर जहाँ पगडंडी तंग और दाएँ-बाएँ हजारों फिट गहरे खड्ड होते, वहाँ वह खुद टाँगें सीधी करके खड़े रह जाते। कहते थे, अगर मुकद्दर में गिर कर ही मरना

लिखा है तो मैं अपनी टाँगों की गलती से मरना पसंद करूँगा, टट्टू की नहीं। यह तस्वीर तीन चार हफ्ते तक उनके दफ्तर में लगी रही। बाद में दूसरे वकीलों ने समझा-बुझा कर उतरवा दी कि अगर जानवरों पर बेरहमी को रोकने वालों में से किसी ने देख ली तो खटाक से तुम्हारा चालान कर देंगे।

2

चार दरवेशों का यह काफिला कार से रवाना हुआ। रेगिस्तान की यात्रा और लू का यह हाल कि पसीना निकलने से पहले खुशक। जैकबाबाद से आगे बढ़े तो मिर्जा को बड़ी व्यग्रता से चनों की कमी महसूस होने लगी। इस लिए कि अगर वह उनके पास होते तो रेत में बड़े खस्ता भूने जा सकते थे। दोपहर के खाने के बाद उन्होंने सुराही में पत्ती डालकर चाय बनाने का सुझाव पेश किया जो बिना धन्यवाद इसलिए रद्द कर दिया गया कि सड़क से धुआँ-सा उठ रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद जिरगौस को यही गर्म पानी उससे अधिक गर्म टायरों पर छिड़कना पड़ता था। 120 डिग्री गर्मी से पिघले हुए तारकोल के छींटे उड़-उड़ कर कार के शीशे को दागदार कर रहे थे। इस छलनी में से झाँकते हुए हमने उँगली के इशारे से प्रोफेसर को सात-आठ साल की बिल्लोच लड़की दिखाई जो सर पर खाली घड़ा रखे, सड़क पर नंगे पाँव चली जा रही थी। जैसे ही उस पर नजर पड़ी, प्रोफेसर ने बर्फ की डली जो वह चूस रहे थे, फौरन थूक दी। इस पर जिरगौस कहने लगे कि वह एक बार जनवरी में कराची से हिमपात का दृश्य देखने मरी गए। शहर के बाहरी हिस्से के आस-पास बर्फ पर पैरों के निशान नजर आए जिनमें खून जमा हुआ था। होटल गाइड ने बताया कि यह पहाड़ियों और उनके बच्चों के पैरों के निशान हैं। प्रोफेसर के चेहरे पर दर्द की लहर देख कर जिरगौस तसल्ली देने लगे कि यह लोग तो 'लैंड-स्केप' ही का हिस्सा होते हैं। इनमें अहसास नहीं होता। प्रोफेसर ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है?' हार्न बजाते हुए बोले, 'अहसास होता तो नंगे पाँव क्यों चलते?'

रास्ते की कथा जो रास्ते ही की तरह लंबी और दिलचस्प है, हम अलग रिपोर्ट के लिए उठा रखते हैं कि हर मील के पत्थर से एक यादगार मूर्खता जुड़ी है। चलते-चलते इतना इशारा पर्याप्त है कि प्रोफेसर और मिर्जा के साथ के मजे ने छह सौ मील के सफर और थकन को महसूस न होने दिया। पहाड़ी रास्तों के उतार-चढ़ाव प्रोफेसर के लिए नई चीज थे। विशेष रूप से हमें संबोधित करके बोले, खुदा की कसम यह सड़क तो हार्ट-अटैक के कार्डियोग्राम की तरह है। हर तीखे मोड़ पर उन्हें बेगम की माँग उजड़ती दिखाई देती और वह मुड़-मुड़ कर सड़क को देखते जो पहाड़ के गिर्द साँप की तरह लिपटती बल खाती चली गई थी। जिरगौस ने कार को एक सुरंग में से पिरो कर निकाला तो मिर्जा अंग्रेज इंजीनियरों को याद करके एकदम भावुक हो गए। दोनों हाथ फैलाकर कहने लगे, 'यह हिल स्टेशन अंग्रेजों की देन है। यह पहाड़ अंग्रेज की खोज हैं।' प्रोफेसर कुद्स ने दाईं कनपटी खुजाते हुए फौरन बात काटी की। बोले, 'इतिहास कहता है कि इन पहाड़ों पर अंग्रेजों से पहले भी लोग रहते थे।' मिर्जा ने कहा, 'बजा! मगर उन्हें यह नहीं मालूम था कि हम पहाड़ पर रह रहे हैं।' अंत में नोक-झोंक और पहाड़ी सिलसिला खत्म हुआ और साँप के फन पर एक हीरा दमकता हुआ दिखाई दिया। 'Eureka! Eureka!'

शहर में घुसते ही हम तो अपने-आप को स्थानीय हवा-पानी के हवाले करके ठीक हो गए लेकिन मिर्जा की बाँछें कानों तक खिल गईं और ऐसी खिलीं कि मुँह में तरबूज की काश फिट आ जाए। सड़क के दोनों तरफ बहुत ऊँचे चिनार देख कर उन्हीं की तरह झूमने लगे। बोले, 'इसको कहते हैं दुनिया भर की सजावट। एक पेड़ के नीचे पूरी बरात सो जाए। यूँ होने को लाहौर में भी पेड़ हैं। एक से एक ऊँचे, एक से एक छतनार मगर जून-जुलाई में पत्ता तक नहीं हिलता मालूम होता है। साँस रोके फोटो खिंचवाने खड़े हैं।' हम बढ़कर बोले, 'लेकिन कराची में तो चौबीस घंटे ताजगी देने वाली समंदरी हवा चलती रहती है।' फरमाया, 'हाँ! कराची में पीपल का पत्ता भी हिलने लगे तो

हम उसे प्रकृति का एक चमत्कार जानकर म्यूनिंसिपल कार्पोरेशन का धन्यवाद करते हैं, जिसने यह बेल-बूटे उगाए, मगर यहाँ इस नेचुरल-ब्यूटी की दाद देने वाला कोई नहीं। हाय! यह दृश्य तो बिल्कुल क्रिसमस कार्ड की तरह है।'

हम तीनों यह क्रिसमस कार्ड देखने के बजाय प्रोफेसर को देख रहे थे और वह 'जिंदा' पेड़ों को उँगलियों से छू-छू कर अपनी नजर की पुष्टि कर रहे थे। दरअसल वह खुबानियों को फल वालों की दुकानों में रंगीन कागजों और गोटे के तारों से सजा-सजाया देखने के इस कदर आदी हो गए थे कि अब किसी तरह यकीन नहीं आता था कि खुबानियाँ पेड़ों पर भी लग सकती हैं।

विद्वान प्रोफेसर देर तक उस आत्मा को तृप्त कर देने वाले दृश्य से आनंदित होते रहे बल्कि इसके कुछ हिस्सों का स्वाद भी लिया।

3

पहली समस्या रहने की थी। इसका चयन और इंतजाम प्रोफेसर की तुच्छ राय पर छोड़ दिया गया मगर उनकी नजर में कोई होटल नहीं जंचता था। एक अल्ट्रामॉडर्न होटल को इसलिए नापसंद किया कि उसके बाथरूम बड़े खुले थे मगर कमरे शरारती व्यक्ति की कब्र की तरह तंग। दूसरे होटल को इसलिए कि वहाँ मामला बिल्कुल उलट था। तीसरे को इसलिए कि वहाँ दोनों चीजें एक ही डिजाइन पर बनाई गई थीं यानी - आप समझ ही गए होंगे। चौथे आलीशान होटल से इस कारण पर भाग लिए कि बंदा किसी ऐसे होटल का कायल नहीं जहाँ के बैरे मुसाफिरों से अधिक स्मार्ट हों। फिर कार पाँचवें होटल के पोर्च में जाकर रुकी, जहाँ एक साइनबोर्ड दो-दो फीट लंबे अक्षरों में शयन व भोजन की दावत दे रहा था।

घर का रहना और खाना

अबकी बार मिर्जा बिदक गए। कहने लगे, 'साहब मैं एक मिनट भी ऐसी जगह नहीं रह सकता', जहाँ फिर वही...'

वाक्य पूरा होने से पहले हम उनका मतलब समझकर आगे बढ़ गए।

छठा नंबर 'जंतान' होटल का था। अंग्रेजों के वक्त की यह तरशी तरशाई-सी इमारत सफेदे के चिकने-चिकने तनों की ओट से यूँ झिलमिला रही थी जैसे सालगिरह का केक! देखते ही सब लहालोट हो गए। प्रोफेसर ने आगे बढ़ कर उसके बीते युग की यादगार ऐंग्लो-इंडियन मैनेजर से हाथ मिलाने के बाद किराया पूछा। जवाब मिला, सिंगिल-रूम पचपन रुपए रोज, डबल रूम मियाँ-बीवी के लिए - पिचहत्तर रुपए। सब सन्नाटे में आ गए। जरा होश ठिकाने आए हुए तो मिर्जा ने सूखे मुँह से पूछा, 'क्या अपनी निजी बीवी के साथ भी पिचहत्तर रुपए होंगे?'

खैर, रहने का ठिकाना हुआ तो सैर-सपाटे की सूझी। प्रोफेसर को कोयटा कुल मिलाकर बहुत पसंद आया। यह 'कुल मिलाकर' की पख हमारी नहीं, उन्हीं की लगाई हुई है। दिल में वह इस सुंदरियों के शहर, इस इतराते हुए सौंदर्य के शहर की एक-एक अदा, बल्कि एक-एक ईंट पर न्योछावर थे लेकिन महफिल में खुल कर तारीफ नहीं करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि लोग उन्हें टूरिस्ट ब्यूरो का अफसर समझने लगे। चार-पाँच दिन बाद हमने एकांत में पूछा, 'कहो! हिल स्टेशन पसंद आया?' बोले, 'हाँ! अगर यह पहाड़ न हों तो अच्छी जगह है।' पूछा, 'पहाड़ों से

क्या हरज है?' बोले, 'किसी के कथनानुसार दूसरी तरफ का दृश्य दिखाई नहीं पड़ता।' दरअस्तल उन्हें बिना घास-पात के पहाड़ देखकर थोड़ी मायूसी हुई। इसलिए एक दिन कहने लगे,

'मिर्जा! यह पहाड़ तुम्हारे सर की तरह क्यों हैं?'

'एक जमाने में यह भी देवदारों और सनोबरों से ढके हुए थे। पर्वत-पर्वत हरियाली ही हरियाली थी मगर बकरियाँ सब चट कर गईं। इसीलिए शासन ने बकरियों के दलन के लिए एक मोर्चा बनाया है और पूरा समाज हाथों में खंजर लिए शासन के साथ है।'

'मगर हमें तो यहाँ कहीं बकरियाँ नजर नहीं आईं।'

'उन्हें यहाँ के लोग चट कर गए।'

'मगर मुझे तो गली-कूचों में यहाँ के अस्ली बाशिंदे भी दिखाई नहीं देते?'

'हाँ, वह अब सब्बी में रहते हैं।'

हर रह जो उधर को जाती है सब्बी से गुजर कर जाती है

हमने दोनों को समझाया, 'आज पेड़ नहीं हैं तो क्या? वन-विभाग सुरक्षित है तो क्या नहीं हो सकता।' बोले, 'साहब! वन-विभाग है तो हुआ करे। इन 'क्लीन-शेव' पहाड़ों में उसके शायद वही दायित्व होंगे जो अफगानिस्तान में समुद्री बेड़े के।'

प्रोफेसर यह ठोस पत्थर के पहाड़ देखकर कहा करते थे, 'ऐसे खालिस पहाड़, जिनमें पहाड़ के अलावा कुछ न हो, दुनिया में बहुत कम पाए जाते हैं।' मिर्जा ने बहुतेरा समझाया कि पहाड़ और अंधेड़ औरत दरअस्तल आयल पेंटिंग की तरह होते हैं - इन्हें जरा दूर से देखना चाहिए। मगर प्रोफेसर दूर के जलवे के कायल नहीं। बिन-पेड़ पहाड़ों से उनकी बेजारी कम करने की गरज से मिर्जा ने एक दिन सूरज डूबने के समय मुर्दा पहाड़ की श्रृंखला की वह मशहूर सुरमई पहाड़ी दिखाई जिसके स्लॉट को देखने वाला अगर नजर जमाकर देखे तो ऐसा मालूम होता है जैसे एक सुंदरी मुर्दा पड़ी है। उसके पीछे को फैले हुए बाल, चौड़ा माथा, चेहरे का तीखा-तीखा प्रोफाइल और सीने के तिकोन गौर से देखने पर एक-एक करके उभरते चले जाते हैं। मिर्जा उँगली पकड़कर इस तस्वीर के टुकड़े कंठस्थ कराते गए। वह अपनी आँखों पर दाएँ हाथ का छज्जा बनाकर गौर से देखते रहे और उस हसीन मंजर से न सिर्फ प्रभावित हुए बल्कि मुआइने के बाद एलान किया कि सुंदरी मरी नहीं, सिर्फ बेहोश है।

पहाड़ों के खाली आँचल का शिकवा दो दिन बाद दूर हुआ जब सब मंजिलें मारते मुहम्मद अली जिनाह के प्रिय हिल स्टेशन 'जियारत' (आठ हजार फीट) पहुँचे। जहाँ तक प्रोफेसर की ऐनक काम करती थी, हरा ही हरा नजर आ रहा था। बिस्तरबंद खुलने से पहले योग्य प्रोफेसर ने एक पहाड़ जीत लिया और उसकी चोटी पर पहुँचकर तस्वीरें भी उतरवाईं। जिनमें उनके होटों पर वह विजयी मुस्कुराहट खेल रही थी, जो नवाबों और महाराजों के चेहरों पर मुर्दा शेर के सर पर रायफल का कुंदा रखकर फोटो खिंचवाते समय होती थी। वह इस घमंडी चोटी की ऊँचाई आठ हजार पचास फीट बताते थे और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी इसलिए कि समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई इतनी ही थी, वैसे जमीन की सतह से सिर्फ पचास फीट ऊँची हो पाई थी। झूठ-सच का हाल अल्लाह जाने, मगर मिर्जा

का हल्फिया बयान है कि विजित पहाड़ की चोटी पर कदम रखने के पाँच मिनट बाद तक विजयी प्रोफेसर की आवाज पचास फिट नीचे 'बेस-कैम्प' में साफ सुनाई दी थी, जहाँ जिरगौस मूवी कैमरा लिए शाम की नारंगी रोशनी में इस ऐतिहासिक दृश्य को फिल्मा रहे थे। इस मुहिम के आखिरी चरण में प्रोफेसर ने यह विचार भी प्रकट किया कि ऐसे पहाड़ों पर शासन बिजली की लिफ्ट लगा दे तो देशवासियों में पर्वतारोहण का शौक पैदा हो जाए। इस आरामतलबी पर मिर्जा ने ताना दिया कि हमारी ही जाति का एक व्यक्ति 'जहीरुद्दीन बाबर' जिसके घोड़ों की टापों से यह पहाड़, यह घाटियाँ और यह रेगिस्तान गुँजे थे, दो मजबूत-बदन मुगल सिपाहियों को बगल में दबा कर किले की दीवार पर बेथकान दौड़ता था। यह सुनते ही प्रोफेसर सोते के पास सुस्ताने बैठ गए। उसके साफ पानी से हाथ-पाँव धोए और गले में लटकी हुई छागल से मरी बीयर उड़ेलते हुए बोले, 'मगर हमारा इतिहास बाबर पर खत्म नहीं होता सरकार! आप यह कैसे भूल गए कि वाजिद अली शाह, अवध के नवाब जब जीने पर लड़खड़ाते हुए चढ़ते तो सहारे के लिए (उस जमाने में लकड़ी की रेलिंग का आविष्कार नहीं हुआ था) हर सीढ़ी पर, जी हाँ! हर सीढ़ी पर दोनों तरफ नवयौवना कनीजें खड़ी रहती थीं, मुगलों की तलवार की तरह झुकी हुई और बिना म्यान।'

प्रोफेसर ने भौगोलिक कठिनाइयों पर इस तरह काबू पाने के और भी कई ऐतिहासिक ढंग बयान किए। जिनके विश्वसनीय होने में शक हो तो हो, नएपन में कोई शक नहीं, लेकिन चोटी को जीतने के बाद जब वह सँभल-सँभल कर घुटनियों उतर रहे थे तो बराबर की चोटी पर एक डरावनी परछाईं नजर आई। पहाड़ों पर सूरज जल्दी डूब जाता है और उस समय दृश्य की बारीक चीजों पर रात का काजल फैलता जा रहा था। सन्नाटा ऐसा गहरा साफ और ऐसा आर-पार कि कलाई अपने कान से लगाकर सुनें तो नब्ज की धक-धक साफ सुनाई दे। अचानक उस भेद-भरी परछाईं ने हरकत की। प्रोफेसर के मुँह से अनायास एक चीख निकली और निकलती चली गई और जब वह निकल चुकी तो, 'रीछ' कह कर वहीं सजदे में चले गए। मिर्जा को भी हिदायत की कि जहाँ हो वहीं बैठ जाओ और सिगरेट बुझा दो। मिर्जा पहले ही बरफानी रीछों के किस्से सुन चुके थे। यूँ भी सीधे-सादे मुसलमान हैं, लिहाजा हिदायत पर आँख बंद करके अमल किया बल्कि अमल के बाद भी आँखें बंद रखीं लेकिन कुछ देर बाद जी कड़ा करके उन्हें खोला तो पूछने लगे, 'मगर यह में-में क्यों कर रहा है?' प्रोफेसर ने सजदे ही में जरा देर कान लगाकर सुना और फिर उछल कर खड़े हो गए। फरमाया, 'अरे साहब! आवाज पर न जाइए। यह बड़ा मक्कार जानवर होता है।'

4

जिरगौस जिस व्यवस्था और उपयुक्तता से सफर करते हैं वह देखने योग्य है। मुहम्मद शाह रंगीले के बारे तो सुना ही था कि जब उसकी जीतती रहने वाली सेना (???) नादिर शाह दुर्रानी से लड़ने निकली तो जनरल अपने स्तर के हिसाब से पालकियों में सवार आदेश देते जा रहे थे और आगे-आगे उनके सेवक उनकी चमकदार तलवारें उठाए चल रहे थे। युद्ध के दूसरे सामान के साथ-साथ कई छकड़े मेहँदी से लदे बराबर में थे ताकि सिपाही और सेनापति अपने हाथ-पैरों और बालों को रण में जाने से पहले बादशाह के प्रिय रंग में रँग सकें। मिर्जा की कही है कि सफर तो खैर सफर है, जिरगौस शहर में भी इतना रख-रखाव बरतते हैं कि उनका बड़ा लड़का जब क्रिकेट खेलता है तो चपरासी छतरी लगाए साथ-साथ दौड़ता है। 'गालिब' की तरह जिरगौस तलवार और कफन ही नहीं, शवस्नान का तख्ता और काफूर तक बाँधकर ले जाने वालों में से है। लिहाफ और मलमल का कुर्ता, नमक और कोका-कोला, ताश और कैसानोवा (उनका काला कुत्ता), डिनर जैकेट और 'पिक-विक पेपर्स', बंदूक और फर्स्ट-एड-बाक्स - गरज कि कौन-सी बेकार चीज है जो यात्रा के समय उनके सामान में नहीं होती? अलबत्ता इस बार

वापसी पर उन्हें यह दुख रहा कि सफर यूँ तो हर तरह से कामयाब रहा मगर फर्स्ट-एड का सामान इस्तेमाल करने का कोई अवसर नहीं मिला।

उनके अंदर वो शहरी बसा हुआ है वह किसी क्षण उनका पीछा नहीं छोड़ता और उनका हाथ पकड़ कर कभी बादाम के तने पर चाकू की नोक से अपना नाम और आने की तारीख लिखवाता है और कभी पहाड़ी चकोर के चटख रंगों की प्रशंसा बाईस बोर की गोली से करवा है। कभी गूँजते गरजते झरनों के दामन में 'रॉक एंड रोल' और 'ट्विस्ट' के रिकार्ड बजा कर सीटियों से संगत करता है और कभी जंगलों की सैर को यूँ निकलता है गोया 'ऐल्फी' या 'माल' पर शाम के शिकार को निकला है। मिर्जा ने कई बार समझाया कि देखो पहाड़ों, जंगलों और देहातों में जाना हो तो यूँ न निकला करो - इ यू डी कोलोन लगाए, सिगार मुँह में, हर साँस बियर में बसा हुआ, बातों में ड्राइंग रूम की महक - इससे देहात की भीनी-भीनी खुशबुएँ दब जाती हैं। वह सहमी-सहमी खुशबुएँ जो याद दिलाती हैं कि यहाँ से देहात की सीमा शुरू होती है। वह सीमा जहाँ सदा खुशबुओं का इंद्रधनुष निकला रहता है - कच्चे दूध और ताजा कटी हुई घास की मीठी-मीठी बास, छप्परों-खपरैलों से छन-छन कर निकलता हुआ उपलों का कड़वा-कड़वा धुआँ, घुमर-घुमर चलती चक्की से फिसलते हुए मकई के आटे की गर्म-गर्म सुगंध के साथ 'कुँवारपने की तेज महक', जोहड़ की काई का भीगा छिछलांदा झाँका, सरसों की बालियों की कंटली महकार, भेड़-बकरियों के रेवड़ का भभका, अंगारों पर सिकती हुई रोटी की सीधी पेट में घुस जाने वाली लपट और उनमें रची हुई, उन सब में पिघली हुई खेतों और खलियानों में ताँबे से तपते हुए जिस्मों की हजारों साल पुरानी महक - यह जमीन की वहशी साँस की खुशबू है। जमीन को साँस लेने दो। उसकी खुशबू के सोते खून से जा मिलते हैं। उसे पसीने के छेदों में सहज-सहज घुलने दो। उसे हवाना के सिगार और डियोडरेंट से न मारो कि यह एक बार जिस बस्ती से रूठ जाती है, फिर लौट कर नहीं आती। तुमने देखा होगा, छोटे बच्चों के जिस्म से एक भेद भरी महक आती है। कच्ची-कच्ची, कोरी-कोरी, जो बड़े होकर अचानक गायब हो जाती है। यही हाल बस्तियों का है। शहर अब बूढ़े हो चुके हैं। उनमें अपनी कोई खुशबू बाकी नहीं रही।

प्रोफेसर कुदूस को ऐसी बातों में 'ला दे इक जंगल मुझे बाजार से' वाली फिलास्फी दिखाई पड़ती है। जो सफेद कालर वालों के सुगंधित पलायन की पैदावार है। कहते हैं कि शहरी हिरनों की नाभि उनके सर में होती है। हमने देखा है कि बहस में चारों तरफ से शह पड़ने लगे तो वह मिर्जा के किसी अर्धदार्शनिक वाक्य की दीवारों के पीछे दुबक जाते हैं और इस दृष्टि से उनका रवैया ठेठ प्रोफेसराना होता है। यानी मूल विषय के बजाय फुटनोट्स पढ़ना पुण्य समझते हैं। वह इस तरह कि वो प्राकृतिक दृश्यों की दाद अपने पेट से देते हैं, जहाँ मौसम अच्छा और दृश्य सुंदर हुए, उनकी समझ में उसका आनंद उठाने का एक यही ढंग आया कि डटकर खाया जाए और बार-बार खाया जाए और इस अच्छे कार्य से जो थोड़ा सा समय बच रहे, उसमें रमी खेती जाए। दुर्भाग्य से मौसम हमेशा अच्छा रहता था। इसलिए रोज खाने के बीच के अंतरालों में रमी की बाजी जमती। घनिष्ट मित्रों ने इस तरह पूरे छह हफ्ते एक दूसरे को कंगाल बनाने की घनिष्ट कोशिशों में बिता दिए। जिरगौस तो आँख बचाकर पत्ता बदलने को भी गलत नहीं समझते। इसलिए कि यह न करें तब भी प्रोफेसर हर जीतने वाले को बेईमान समझते हैं। बहरहाल हमने तो यह देखा कि अनगिनत अच्छे क्षण जो चीड़ और चिनार के दृश्यों में बिताए जा सकते थे, वह दोनों ने चिड़िया के गुलाम और पान के चौक्के पर नजरें जमाए बिता दिए और कभी पलट कर बड़े-बड़े पहाड़ों पर डूबते सूरज और चढ़ते चाँद का प्रताप नहीं देखा और न आँख उठा कर इस रूपनगर की आन देखी जिसके सर से भूकंप की प्रलय बीत गई मगर जहाँ आज भी गुलाब दहकते हैं। रास्तों पर भी, गालों पर भी। इनकी कनपटियों पर अब रुपहले तार झिलमिलाने लगे हैं मगर वह अभी उस आवारगी के आनंद से परिचित नहीं हुए जो एक पल में एक

युग का रस भर देती है। अभी उन्होंने हर फूल, हर चेहरे को यूँ जी भर के देखना नहीं सीखा जैसे आखिरी बार देख रहे हों, फिर देखना नसीब न होगा। ऐसे पहाड़ों और घाटियों से गुजरते हुए बाबर ने अपनी आत्मकथा में कितनी मायूसी के साथ लिखा है कि जब हम किसी दरिया के किनारे पड़ाव डालते हैं तो हम और हमारी मुगल फौज अपने तंबुओं की दिशा नदी के सुंदर दृश्यों की तरफ रखती है लेकिन हमारी हिंदी फौज अपने खेमों की पीठ नदी की तरफ कर लेती है।

यहाँ जिरगौस की कम-निगाही दिखाना उद्देश्य नहीं, इमान की बात यह है कि कराची पहुँच कर उन्होंने अपनी खींची हुई रंगीन फिल्में स्क्रीन पर देखीं तो दंग रह गए। कहने लगे, 'यार! कमाल है, इनसे तो मालूम होता है कि कोयटा खूबसूरत जगह है।'

5

जिरगौस खुद को हवेन सांग और एडमंड हिलेरी से कम नहीं समझते। इस यायावरी की इच्छा का विस्तार यह है कि एक दिन मिर्जा ने पूछा, 'यार कंचनजंघा भी देखी?' बोले, 'नहीं हम चीनी फिल्में नहीं देखते। मगर कौन सी फिल्म में काम कर रही है?'

मिर्जा भी उनके साथ दूसरी बार अपने देश की खोज में निकले थे, मगर जहाँ गए, जिधर गए, खुद को ही सामने पाया। आखिर दो महीने भूगोल में आत्मकथा का रंग भर के लौट आए। कहना पड़ेगा कि एक का दिल और दूसरे की आँखें शहरी हैं और उसकी पुष्टि पग-पग पर पिछली यात्रा के वृत्तांत से होती है। आप भी सुनिए, कभी इनकी कभी उनकी जुबानी। जिरगौस का बयान है कि तयोरस्साल मिर्जा कागान घाटी में ग्यारह हजार फिट की ऊँचाई पर फीरोजी रंग की जमी हुई झील, मीलों तक फैले हुए ग्लेशियर और बर्फ से ढके पहाड़ देखकर बहुत हैरान हुए। वह सोच भी नहीं सकते थे कि मलाई की बर्फ के अलावा कोई और भी बर्फ हो सकती है और वह भी मुफ्त! न्यूनाधिक इतनी ही तीव्रता की आत्मलीनता की स्थिति कनहार नदी देखकर उन्होंने अपने ऊपर हावी कर ली। इस तिलमिलाती, झाग उड़ाती, पहाड़ी नदी के पुल पर देर तक दम साधे आश्चर्य की लहरों में गोते खाते रहे। आखिर एक चमकदार मोती लेकर उभरे। बोले, 'किस कदर खूबसूरत झाग हैं। बिलकुल लक्स साबुन जैसे।' उपस्थित लोगों ने इस विज्ञापनी उपमा का मजाक उड़ाया तो तुनक कर बोले, 'साहब! मैं तो जब जानूँ कि वर्ड्सवर्थ को बीच में डाले बगैर आप नेचर पर दो वाक्य बोलकर दिखा दें।'

मिर्जा इस 'गजल' के जवाब के रूप में, इसी जगह और इसी घड़ी का एक और समझाँ खींचते हैं, जिससे पता चलता है कि समय का सदुपयोग करने वाले किस-किस तरह प्राकृतिक सौंदर्य की ऊँचाई बढ़ाते हैं। (तस्वीर में जगह-जगह जिरगौस ने भी शोख रंग लगा दिए हैं।) यह जगह बालाकोट के दामन में इस किनारे पर है, जहाँ नदी दो भारी पहाड़ों के बीच नर्तकी की कमर की तरह बल खा गई है। इससे यह करिश्मा जुड़ा हुआ है कि जहाँगीर के साथ इस रास्ते से कश्मीर जाते हुए नूरजहाँ की आँखों में जलन हुई। जहाँगीर को रात-भर नींद न आई। शाही हकीम के कुहल, सुर्मा और जमाद से कोई लाभ नहीं हुआ। अचानक एक दरवेश उधर से निकला। उसने कहा, जैसे ही चाँद इस सनोबर के ऊपर आए, मलिका नदी का पानी अंजुलि में भर कर उसमें अपना चेहरा देखे और उसी से सात बार अपना चेहरा धोए। मौला अपनी कृपा करेगा। नूरजहाँ ने ऐसा ही किया और आँखें तारा सी हो गईं। उसी दिन से उस जगह का नाम नैन-सुख हो गया और इधर से निकलते हुए आज भी बहुत से हाथ मोती-सा पानी चुल्हू में भर के उस अलबेली मलिका की याद ताजा कर जाते हैं।

हाँ! तो यह जगह थी और शुरू बरसात की रात। सुबह इसी जगह एक ऐतिहासिक फिल्म की शूटिंग के समय हीरोइन के पैर में मोच आ गई थी और दिया जलने तक बालाकोट की घाटी का हर वह निवासी जो उस दिन तक संन्यासी नहीं हुआ था, उस घोड़े को देखने आया जिससे हीरोइन गिरी या गिराई गई थी। इस पल रात की जवानी अभी ढली नहीं थी। यहाँ इस फिल्म के प्रोड्यूसर (जिन का मुकदमा मजिस्ट्रेट से सेशन जजी, सेशन जजी से हाईकोर्ट और हाईकोर्ट से सुप्रीम कोर्ट तक जिरगौस ने बिना पारिश्रमिक और परिश्रम लड़ा और हारा था) जिरगौस के आतिथ्य में बिछे जा रहे थे। साथ में शहद जैसी रंगत के बालों वाली हीरोइन थी जो ट्रांजिस्टर रेडियो पर 'चा चा चा' की धुन पर बैठे ही बैठे अपनी बेजान न हुई टॉग थिरका रही थी और मिर्जा के शब्दों में 'ओपन एयरहोस्टेस' के कर्तव्य बड़ी लगन से पूरे कर रही थी। जिरगौस फीरोजे की अँगूठी से 'पिक विक पेपर्स' की जिल्द पर ताल दे रहे थे। रेडियो पर कोई गर्म गीत आता तो सब के सब सुर मिलाकर इतने जोर से डकराने लगते कि अस्ल गाना बिल्कुल न सुनाई देता। सिर्फ नापसंदीदा गाने खामोशी और ध्यान से सुने गए। अलबत्ता मिर्जा शाम ही से संजीदगी व सर्दी के कारण चुप थे। उन्हें जब अधिक सर्दी लगने लगती तो टूट कर उन डरावनी मशालों को टकटकी बाँध कर देखने लगते, जो बीस मील दूर पहाड़ों पर एक महीने से रात होते ही रोशन हो जाती थीं। एक महीने से कागान के जंगल धड़-धड़ जल रहे थे और दूर-दूर से यात्री सनोबरों की आग देखने लाए जा रहे थे लेकिन यहाँ चारों तरफ अँधेरा था, जिसमें पहाड़ी जुगनू जगह-जगह मुसलमानों की उम्मीदों की तरह टिमटिमा रहे थे। मिर्जा नजरें नीची किए रस भरी गँडेरियाँ चूसते रहे। थोड़ी-थोड़ी देर में जिरगौस अपनी कार की हैडलाइट जला देते और साँवली रात अपने भेद सौंप कर चंद पीछे हट जाती। उनके सोने के दाँत से किरनें फूटने लगतीं और कैसानोवा की काली-काली आँखों के चराग जल उठते। कुछ और स्वरूप भी जिन्हें रोशनी ने रात की चट्टान चीरकर तराशा था, आँखों के सामने कौंध जाते।

इस कौंधे में नदी झमाझम करने लगती, जैसे टिशू की साड़ी। (माफ कीजिए, यह तीर भी इसी तरकश का है।)

सामने मिर्जा चुपचाप पालथी मारे बैठे हुए थे। कुछ बर्फीली हवा, कुछ गँडैरी का असर। उनका हाथ अपनी नाक पर पड़ा तो ऐसा लगा कि जैसे किसी दूसरे की है। फिर नदी के पानी में हाथ डाला तो लगा जैसे पिघली हुई बर्फ है और यह इसलिए महसूस हुआ कि वह वाकई पिघली हुई बर्फ थी। इससे फायदा उठाने के लिए ब्लैक एंड व्हाइट की दूसरी बोटल की गरदन मिर्जा की टाई से बाँधकर नदी में डाल दी गई। अभी कुछ देर पहले प्रोड्यूसर साहब को एक शैंपेन ग्लास के किनारे पर लिपस्टिक का भ्रम हुआ तो उतना हिस्सा अपने दाँतों से तोड़ कर कटर-कटर चबाने लगे और अब वह अँधेरे में सिगरेट का कश लेते तो मुँह के दोनों कोनों पर जीते-जीते खून की धारें चमक उठती थीं। गँडेरियों से निवृत्त होकर मिर्जा इस दृश्य को अपनी आँखों से पिए जा रहे थे जिनमें गुलाबी डोरे उभर आए थे, जो शायद नींद के होंगे। इसलिए कि गँडैरी में अगर नशा होता तो मौलवी गन्ने लेकर गँडैरी खाने वालों के पीछे पड़ जाते। उनके ढंग बेढंगे होते देखे तो जिरगौस ने कंधे झिंझोड़ कर पूछा, 'मिर्जा! तुमने कभी व्हिस्की पी है?' नशीली आँखें खोलते हुए बोले, 'पी तो नहीं, मगर बोटल से ऐसी बू आती है, जैसी उनके मुँह से। बिल्कुल टिंकचर आयोडीन जैसी।' यह कहकर पुष्टि चाहने वाली नजरों से प्रोड्यूसर को देखने लगे, जो इस टिंकचर आयोडीन से अपने मुँह और दिल के जख्मों को डिसइन्फैक्ट कर रहे थे। यह कार्य उस समय तक चलता रहा, जब तक न पीने वालों ने नींद से बेहाल होकर ऑल फौल बकना शुरू न कर दिया और महीने के आखिर की चाँदनी में बालाकोट की ऊँचाई पर उस मकबरे के किनारे दमकने लगे, जहाँ सवा सौ साल पहले इसी घाटी, इसी रुत और उतरते चाँद की इन्हीं तिथियों में एक जियाले ने अपने खून से अपनी जाति के दागों को धोया था और जहाँ आज भी खुदा के सादादिल बंदे नसवार की भेंट चढ़ा कर मुरादेँ माँगते नजर आ जाते हैं।

बात एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ जा पहुँची। दिखाना सिर्फ यह था कि पहाड़ पर जिंदगी हर ढंग और हर ढब से बिताई जा सकती है। हँस कर, रो कर या अधिसंख्या की तरह सो कर। मिर्जा किसी घर बंद नहीं। कुछ नहीं तो, चोरी-चोरी बेगम जिरगौस के मुहब्बत और इमला की गलतियों से भरे हुए खत ही पढ़ते रहते मगर एक दिन एक अजीब रंग में पाए, बल्कि पकड़े गए। देखा कि विभिन्न रंगों और खुशबुओं के टूथपेस्ट से कैरम बोर्ड पर कुछ पेंट कर रहे हैं। खैर टूथपेस्ट के इस्तेमाल पर तो हमें कोई अचंभा नहीं हुआ। इसलिए कि सुन चुके थे कि एब्सट्रेक्ट आर्टिस्ट तस्वीर पर नेलपॉलिश और फिनाइल तक लगाने से नहीं चूकते। एक साहब तो ऐसे गुजरे हैं, जिन्होंने कैनवस पर घोड़े का नाल, अपने कटे हुए नाखून और इकलौती पतलनू के सातों बटन मॉडल की चूसी हुई गम से चिपका कर बगदादी जिमखाना में प्राइज हासिल किया था। कहने का मतलब यह है कि आर्टिस्टों की सुहबत में रहते-रहते हम ऐसी बातों के आदी हो चुके हैं। ठठेरे का कबूतर तालियों से नहीं उड़ता लेकिन इस वक्त परेशानी जो हुई तो इस बात से कि हमारी तारीफ को सच समझ कर वह हमसे इस स्वादिष्ट तस्वीर का शीर्षक पूछने लगे।

'शीर्षक में क्या रखा है। अस्ल चीज तो तस्वीर होती है, तस्वीर!', हमने टालना चाहा।

'फिर भी, क्या नजर आता है तुम्हें?' वह भला कब छोड़ने वाले थे।

'नजर तो आता है, मगर समझ में नहीं आता।'

'पिकासो से भी कभी किसी ने कहा था कि साहब! आपकी तस्वीरें समझ में नहीं आतीं। उसने बड़ा प्यारा जवाब दिया, कहने लगे, चीनी भाषा आपकी समझ में नहीं आती मगर पचास करोड़ आदमी उसे बोलते हैं। क्या समझे?'

'लेकिन यह तस्वीर तो पिकासो की भी समझ में नहीं आ सकती।' हमने कहा।

'बला से न आए। एक तवायफ अपने हुस्न और कमाल की दाद लेने दूसरी तवायफ के पास नहीं जाती। दाद तो दर्शकों से मिलती है।' मिर्जा ने कहा।

जिरगौस की तरह मिर्जा भी हिल-स्टेशन को एक पैदाइशी शहरी की प्यार भरी नजर से देखते हैं और नजर भी ऐसे शहरी की, जिसकी पैदाइश और पहली बीमारी की तारीख एक ही हो। खैर मिर्जा तो हमारे साथ उठने-बैठने वाले और दम बढ़ाने वाले ठठेरे, जिनके स्वभाव से हम इस तरह परिचित हैं जैसे अपनी हथेली से। लेकिन इस बार हमें जिरगौस और हिल-स्टेशन दोनों को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला और हम इस नतीजे पर पहुँचे कि खुदा अगर आँखें दे तो उन्हें इस्तेमाल करने के मौके भी दे, वरना लानत ऐसी जिंदगी पर। मगर हिल-स्टेशन पर - चाहे वह मरी हो या मसूरी, उटाकमंड हो या कोयटा - जिंदगी हमारी आपकी तरह व्यर्थ नहीं होती। उसका एक उद्देश्य, दृष्टि का एक केंद्र होता है। वह यह कि सदा सुहागिन सड़कों पर वह फैशन परेड देखी जाए, जिसमें हर साल चैन से भरे घरानों की बेचैन बेटियाँ धन और तन की बाजी लगा देती हैं। इन्हीं सड़कों पर काली काफी और आलू की हवाइयों पर गुजारा करने वाले साहित्यकार स्ट्रैण भाषा में एक दूसरे को रक्तितम क्रांति पर उकसाते हैं। इन्हीं सड़कों पर अपने गमलों में बरगद उगाने वाले इंटेलेक्चुअल किसी खूबसूरत लड़की को पत्नी का रूतबा देने की घात में लगे रहते हैं। उधर खूबसूरत लड़की अपने सुंदर मुखड़े का दिया लिए इस तलाश में लगी हुई कि जल्दी-से-जल्दी किसी बूढ़े लखपति की विधवा बन जाए। यह स्वयंवर, यह सुहाग-रूत हर हिल-स्टेशन पर हर साल

मनाई जाती है और इससे पहले कि दमकती हरियाली बर्फ का कफन पहन कर सो जाए, चिनारों की आग ठंडी और काफी हाउस वीरान हो जाएँ, मवेशी मैदानों में उतरने लगे और सड़कों पर कोई जानदार नजर न आए, सिवाय टूरिस्ट के - इससे पहले कि फूलों का मौसम बीत जाए, बहुत से हाथों की तीसरी उँगली में अँगूठियाँ जगमगाने लगती हैं। अगरचे जिरगौस के सेहरे के फूल दो बार खिले क्या, मुरझा चुके हैं मगर अब भी सड़क पर ढेर सारे हसीन चेहरे देखकर उनका हाल ऐसा होता है जैसे खिलौनों की दुकान में अनाथ बच्चे का।

इस स्वयंवर के साथ हिल स्टेशन पर सारे देश के लाइलाज रईसों और खाते-पीते कमजोरों का एक विराटकाय सालाना मेला लगता है। इसमें बड़े पैमाने पर बीमारियों का आपसी आदान-प्रदान होता है। आपने शायद सुना हो कि बनारस में, जो अपनी सुबह और साड़ियों के बावजूद एक पवित्र स्थान की हैसियत से प्रसिद्ध है, सारे हिंदुस्तान के आस्थावान बूढ़े मरने के लिए खिंच कर चले आते हैं और बहुत जल्द दिली मुराद पाते हैं। जो बीमार अपनी इच्छाशक्ति की कमजोरी के कारण खुद को मरने के लिए तैयार नहीं कर पाते, वह निकटतम हिल-स्टेशन की दिशा पकड़ते हैं। हमारे मिर्जा साहब का बाद वाली चीज से कितना पुराना संबंध है, इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि बीस बरस पहले आई.सी.एस. की परीक्षा में प्रथम आने के बाद उनकी डॉक्टरी जाँच हुई तो पता चला, दाँतों के अलावा और कोई चीज ठीक नहीं। वैसे बिरादरी के एक मेंबर होने के नाते हम खुद भी अपने स्वास्थ्य की तरफ से एक क्षण भी बेध्यान नहीं, फिर भी अभी यह नौबत नहीं आई कि विटामिन की गोली हल्क से उतरते ही अपनी बाँहों की मछलियाँ फुला-फुलाकर देखें, लेकिन मिर्जा का वह दैनंदिन कार्य हो गया कि दवाएँ हज्म करने के लिए शाम को माँगे-ताँगे की छड़ी घुमाते हुए निकल जाते। दस्तानों की तरह यह सुडौल छड़ी भी प्रोफेसर के दोस्त पेरिस से लाए थे। उस पर फ्रेंच ऐक्ट्रेस बरजेत बारदो की टाँग का ऊपरी हिस्सा बतौर दस्ता लगा हुआ था। इसी के सहारे प्रोफेसर ने वह टीला 'फल्ह' किया जिसकी विजय का हाल पहले सुनाया जा चुका है। इसी के जरिये वह अँधेरी रातों में अपने और अशिष्ट कुत्तों के बीच एक गर्वीली दूरी कायम रखते हैं और अब इसी को हिलाते, सहलाते हुए मिर्जा जिनाह रोड की हर तीसरी दुकान में (जो दवाओं की होती है) धड़धड़ाते घुसते चले जाते हैं। काउंटर के पास लगी मशीन में खोटी इकन्नी डालकर अपना वजन लेते और अगर औंस दो औंस बढ़ जाता तो स्थानीय हवा-पानी की शान में कसीदे पढ़ते लौटते हैं। एक दिन हमने कहा, 'देखो! दवाओं की यह दुकान कितनी चलती है मगर तुम्हें यहाँ तुलते कभी नहीं देखा।' कहने लगे, 'तौबा कीजिए साहब! मालूम हुआ है कि उसकी मशीन खास तौर पर औरतों के लिए बनाई गई है। एक दिन तुला तो कुल चालीस पौंड उतरा। धक से रह गया। सेठ से जाकर शिकायत की', तो जवाब मिला कि यह दुश्मनी थोड़े ही है। सभी को पचास पौंड कम बताती है। उस के बाद उस बेईमान ने खोटी इकन्नियों की ढेरी में से मिर्जा को एक इकन्नी वापस करनी चाही, जिसे उन्होंने शालीनता के कारण स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

भला मिर्जा ऐसी दुकान में जाकर सेरों बल्कि मनो मायूसियाँ क्यों मोल लेने लगे। वह तो उन स्वस्थ लोगों में से हैं, जो टहलने निकलें तो कदमों की गिनती रखते हैं और ताकत देने वाला कौर लेने से पहले उस खून की एक-एक बूँद का हिसाब लगा लेते हैं, जो उससे बननी चाहिए - मगर नहीं बनती। उनके खाने के पैमाने के हिसाब से काले हिरन की कलेजी में एक पूरे ऊँट की पौष्टिकता होती है और एक पहाड़ी चकोर में एक हिरन के बराबर लेकिन कोयटा की एक खुबानी पूरे तीन चकोरों के बराबर होती है, बाकी अंदाजे पर। एक दिन अपने हिसाब से डेढ़ दो दर्जन साबुत ऊँट पेड़ से तोड़ कर कचर-कचर खाए और झूमते-झामते हमारे पास आए। कहने लगे, 'साहब! यह शहर तो इतना बढ़िया है कि खा-खा के अपना तो दिवाला निकला जा रहा है। खाना हल्क से उतरा नहीं कि हज्म।' हमने कहा, 'इससे लाभ?' बोले, 'देखते नहीं?' टूरिस्ट बीबियाँ बेकारी से बचने के लिए जो स्वेटर सटासट बुनती

रहती हैं, वह तैयार होने से पहले तंग हो जाते हैं। शाम को चाय और चिलगोजे के साथ दूसरों की बुराई बड़ा मजा देती है। फिर हर चीज सस्ती, हर चीज शुद्ध। हद यह कि स्कैंडल में भी झूठ की मिलावट नहीं। कराची में शुद्ध दूध तो बड़ी बात है, पानी भी शुद्ध नहीं मिलता। उसमें भी दूध की मिलावट होती है मगर यहाँ दुकानदार आदतन सच बोलते हैं और सस्ता बेचते हैं। इसी लिए कई टूरिस्ट समझते हैं कि छोटा शहर है।'

फिर वह कोयटा की बेहतरी एक के बाद एक दुनिया के दूसरे शहरों पर साबित करने लगे।

'लाहौर?'

'कलेंडर से अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर के महीने हमेशा के लिए निकाल दिए जाएँ तो वल्लाह! लाहौर का जवाब नहीं।'

'रोम?'

'एक हसीन कब्रिस्तान। जमीन के नीचे की आबादी, ऊपर की आबादी से कहीं अधिक है। रहे ऐतिहासिक खंडहर, सो उनमें चिमगादड़ें और अमरीकी टूरिस्ट बसेरा करते हैं। जेम्स ज्वायस ने झूठ नहीं कहा था कि रोम की मिसाल एक ऐसे व्यक्ति की सी है जो अपनी नानी की लाश की नुमायश करके रोजी कमाता है।'

'मरी, पहाड़ों की रानी मरी?'

'साहब! दृश्यों में कोयटा से कम नहीं, वही नक्शा है भले इस कदर आबाद नहीं।'

'और दिल्ली?'

'शहर बुरा नहीं, मगर गलत देश में बसा है।'

'जिनेवा - दुनिया के लोगों की सेहत बनाने वाला शहर?'

'साहब मरने के लिए उससे बढ़िया जगह इस धरती पर कहीं नहीं।'

'कराची के बारे में क्या राय है हुजूर की?'

'बहुत अच्छी! अगर आप सर के बल खड़े हो कर देखें तो कराची की हर चीज सीधी नजर आएगी।'

'यार! तुम कराची के साथ तो बिल्कुल जियादती कर रहे हो।'

'हरगिज नहीं। मैं कराची के अधिकारों के लिए हमेशा लड़ता रहूँगा। इसीलिए मैं कराची वालों की इस माँग की बड़ी दृढ़ता से हिमायत करता हूँ कि मलेर के पुल और सड़क की मरम्मत होनी चाहिए, जरूर होनी चाहिए और जल्द होनी चाहिए ताकि कराची से निकलने में आसानी रहे।'

'यही बात है तो तुम वापस क्यों जा रहे हो?'

'मगर (तर्जनी उठाते हुए) एक बात है। कराची वाले आगे होकर कराची की बुराई करते हैं लेकिन कोई और उनकी हाँ में हाँ मिला दे तो बुरा मान जाते हैं। बस इसी अदा पर प्यार आता है।'

फिर कोयटा की श्रेष्ठता साबित करते-करते बेध्यानी में कहने लगे, 'हाय! यह महान शहर अगर कराची में होता तो क्या बात थी।'

मिर्जा ने इतना कहा और दायों हाथ फैलाकर अपना सीना फुलाया और छाती पीटने लगे। फिर एक ठंडी आह भरी और चुप हो गए।

उनके गालों पर पवित्र रक्त की वह बूँदें चमक रही थीं, जिन्हें हालात की आग ने बहुत जल्द सुखा दिया।

(अप्रैल - 1963)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

उपन्यास

मेरे मुँह में खाक
मुश्ताक अहमद यूसुफी

अनुवाद - तुफैल चतुर्वेदी

[अनुक्रम](#)

हिल स्टेशन

[पीछे](#)[आगे](#)

उन दिनों मिर्जा के स्नायुओं पर हिल स्टेशन बुरी तरह सवार था लेकिन हमारा हाल उनसे भी अधिक बुरा था। इस लिए कि हम पर मिर्जा अपने स्नायु-मंडल और हिल स्टेशन समेत सवार थे। जान मुश्किल में थी। उठते-बैठते, सोते-जागते इसी की चर्चा, इसी का जाप। हुआ यह कि वह सरकारी खर्च पर दो दिन के लिए कोयटा हो आए थे और अब इस पर मचले थे कि हम अवैतनिक छुट्टी पर उनके साथ दो महीने वहाँ गुजार आएँ, जैसा कि गर्मियों में कराची के शरीफों और रईसों का दस्तूर है। हमने कहा, 'पूछो तो हम इसीलिए वहाँ नहीं जाना चाहते कि जिन लोगों की परछाईं से हम कराची में साल भर बचते फिरते हैं, वह सब मई-जून में वहाँ जमा होते हैं।' बोले, 'ठीक कहते हो! मगर खुदा के बंदे अपनी सेहत तो देखो। तुम्हें अपने बाल-बच्चों पर तरस नहीं आता? कब तक हकीम, डॉक्टरों का पेट पालते रहोगे? वहाँ पहुँचते ही बगैर दवा के ठीक हो जाओगे। पानी में दवा की तासीर है और किसी-किसी दिन (मुस्कराते हुए) मजा भी वैसा ही। यूँ भी जो समय पहाड़ पर बीते, उम्र में से काटा नहीं जाता। मक्खी, मच्छर का नाम नहीं। कीचड़ ढूँढ़े से नहीं मिलती। इसलिए कि पानी की सख्त किल्लत है। लोगों की तंदुरुस्ती का हाल तुम्हें क्या बताऊँ। जिसे देखो, गालों से गुलाबी रंग टपका पड़ रहा है। अभी पिछले साल वहाँ एक मंत्री ने अस्पताल का उद्घाटन किया तो तीन दिन पहले एक मरीज को कराची से बुलवाना पड़ा और उस की निगरानी पर चार बड़े डॉक्टर तैनात किए गए कि कहीं वह उद्घाटन से पहले ही ठीक न हो जाए। हमने कहा, 'हवा-पानी अपनी जगह, मगर हम दवा के बिना स्वयं को नार्मल महसूस नहीं करते।' बोले, 'इसकी चिंता न करो। कोयटा में आँख बंद करके किसी भी बाजार में निकल जाओ। हर तीसरी दुकान दवाओं की मिलेगी और हर दूसरी दुकान तंदूरी रोटियों की।' पूछा, 'और पहली दुकान', बोले, 'उसमें दुकानों के लिए साइन बोर्ड तैयार किए जाते हैं।' हमने कहा, 'लेकिन कराची की तरह वहाँ कदम-कदम पर डॉक्टर कहाँ? आज कल तो बगैर डॉक्टर की मदद के आदमी मर भी नहीं सकता। कहने लगे, 'छोड़ो भी। फर्जी बीमारियों के लिए तो यूनानी दवाएँ सबसे कारागर होती हैं।'

हमारे अनुचित शकों और गलतफहमियों का इस अकाट्य ढंग से निपटारा करने के बाद उन्होंने अपना वकीलों का-सा ढंग छोड़ा और बड़ी गर्मजोशी से हमारा हाथ अपने हाथ में लेकर हम नेको-बद हुजूर को समझाए जाते हैं वाले अंदाज में कहा, 'भई तुम्हारी गिनती भी संपन्न लोगों में होने लगी, जभी तो बैंक को पाँच हजार कर्ज देने में संकोच न हुआ। कसम खुदा की, मैं ईर्ष्या नहीं करता। खुदा जल्द तुम्हारी हैसियत में इतनी तरक्की दे कि पचास

हजार तक के कर्जदार हो सको। मैं अपनी जगह सिर्फ यह कहना चाहता था कि अब तुम्हें अपने इन्कम-ब्रेकेट वालों की तरह गर्मियाँ बिताने हिल स्टेशन जाना चाहिए। यह नहीं तो कम से कम छुट्टी लेकर घर ही बैठ जाया करो। तुम्हारा यूँ खुले आम सड़कों पर फिरना किसी तरह उचित नहीं। मेरी सुनो! 1956 ई. की बात है। गर्मियों में कुछ यही दिन थे। मेरी बड़ी बच्ची स्कूल से लौटी तो बहुत रुआँसी थी। कुरेदने पर पता चला उसकी एक सहेली ने, जो स्वात घाटी जा रही थी, ताना दिया कि क्या तुम लोग गरीब हो जो साल भर अपने ही घर में रहते हो? साहब! वह दिन है और आज का दिन, मैं तो हर साल मई-जून में छुट्टी लेकर सपरिवार 'अंडर ग्राउंड' हो जाता हूँ। फिर उन्होंने कराची के और भी बहुत से छुपे हुए सज्जनों के नाम बताए जो उन्हीं की तरह हर साल अपने सम्मान की रक्षा करते हैं। अपना यह वार कारगर होते देखा तो 'नाक-आउट' की आवाज बुलंद की। बोले, 'तुम जो इधर दस साल से छुट्टी पर नहीं गए तो लोगों को खयाल हो चला है कि तुम इस डर के मारे नहीं खिसकते कि दफ्तर वालों को कहीं यह पता न चल जाए कि तुम्हारे बगैर भी काम बखूबी चल सकता है।'

किस्सा हातिमताई में एक जादुई पहाड़ का जिक्र आता है। कोहे-निदा (आवाज देने वाला पहाड़) उसका नाम है और यह नाम यूँ पड़ा कि पहाड़ की खोह से एक अजीबो-गरीब आवाज आती है कि जिस किसी को यह सुनाई दे, वह जिस हालत में, जहाँ भी हो, बिना सोचे समझे उसी की तरफ दौड़ने लगता है। फिर दुनिया की कोई ताकत, कोई रिश्ता-नाता, कोई बंधन उसे रोक नहीं सकता। अब लोग इसे किस्सा-कहानी समझकर मुस्कुरा देते हैं। हालाँकि सुनने वालों ने सुना है कि ऐसी आवाज अब हर साल हर पहाड़ से आने लगी है। मिर्जा का कहना है कि यह आवाज जब तुम्हें पहले-पहल सुनाई दे तो अपनी निर्धनता को अपने और पहाड़ के बीच में बाधक न होने दो। इसलिए तय हुआ कि सेहत और गैरत का तकाजा यही है कि हिल स्टेशन चला जाए। चाहे और अधिक कर्ज ही क्यों न लेना पड़े। हमने दबे लहजे में याद दिलाया कि कर्ज मुहब्बत की कैंची है। मिर्जा बोले, 'देखते नहीं लोग इस कैंची को कैसी आतुरता से प्रयोग करके अपनी परेशानियाँ दूसरों को शिफ्ट कर देते हैं? साहब! हुनरमंद के हाथ में औजार भी हथियार बन जाता है।' यहाँ यह स्पष्टीकरण अनुचित न होगा कि कर्ज के बारे में मिर्जा की पंद्रह-बीस साल से वही आस्था है जो मौलाना हाली की ज्ञान के बारे में थी यानी हर तरह से हासिल करना चाहिए -

जिस से मिले, जहाँ से मिले, जिस कदर मिले

लेकिन हमने यह शर्त जरूर लगा दी कि प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स साथ होंगे तो जरा दिल्लगी रहेगी और जिरगौस भी साथ चलेंगे बल्कि हम सब इन्हीं की चमचमाती ब्यूक कार में चलेंगे।

प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्स हँसोड़ न सही हास्य के मौके जरूर उपलब्ध कराते रहते हैं मगर उन्हें साथ घसीटने में दिल बहलाने के अलावा उनकी दुनिया और परलोक सँवारने का विचार भी था। वह यूँ कि कस्बा चाकसू से कराची अवतरित होने के बाद वह पंद्रह साल से रेल में नहीं बैठे थे और अब यह हाल हो गया था कि कभी म्यूनिसिपल सीमा से बाहर कदम पड़ जाएँ तो अपने-आप को मातृभूमि से दूर महसूस करने लगते। आखिर किस बाप के बेटे हैं। उनके पूज्यवर मरते मर गए, मगर फिरंगी की रेल में नहीं बैठे और अंतिम समय तक इस आस्था पर बड़े स्थायित्व से स्थिर रहे कि दूसरे कस्बों में चाँद इतना बड़ा हो ही नहीं सकता जितना कि चाकसू में। प्राकृतिक सौंदर्य के चाहने वाले। विशेष रूप से दरिया सिंध के। कहते हैं खुदा की कसम! इससे खूबसूरत दरिया नहीं देखा। वह कसम न खाएँ तब भी यह दावा शब्द-शब्द सही है, इसलिए कि उन्होंने वाकई कोई और दरिया नहीं देखा। खुदा जाने कब से उधार खाए बैठे थे। बस टोकने की देर थी। कहने लगे, 'जरूर चलूँगा। कराची तो निरा

रेगिस्तान है। बारिश का नाम नहीं। दो साल से कान परनाले की आवाज को तरस गए हैं। मैं तो सावन भादों में रात को गुस्लखाने का नल खुला छोड़ कर सोता हूँ ताकि सपने में टप-टप की आवाज आती रहे।' मिर्जा ने टोका कि कोयटा में भी बरसात में बारिश नहीं होती। पूछा, 'क्या मतलब?' बोले, 'जाड़े में होती है।'

फिर भी पाक बोहेमियन कॉफी हाउस में कई दिन तक अटकलें लगती रहीं कि प्रोफेसर कुद्स साथ चलने के लिए इतनी जल्दी कैसे आतुर हो गए और कोयटा का नाम सुनते ही मुल्तान की कोरी सुराही की तरह क्यों सनसनाने लगे। मिर्जा ने कुछ और ही कारण बताया। बोले, 'किस्सा दरअस्त यह है कि प्रोफेसर के एक दोस्त उनके लिए पेरिस से समूर के दस्ताने भेंट में लाए हैं, जिन्हें पहनने के चाव में वह जल्द-से-जल्द किसी पहाड़ी स्थान पर जाना चाहते हैं, क्योंकि कराची में तो लोग दिसंबर में भी मलमल के कुर्ते पहन कर आइस्क्रिम खाने निकलते हैं।' इस अतिशयोक्ति अलंकार की पुष्टि एक हद तक उस सूटकेस से भी हुई जिसमें प्रोफेसर यह दस्ताने रखकर ले गए थे। उस पर यूरोप के होटलों के रंग-बिरंगे लेबिल चिपके हुए थे। वह कभी उसे झाड़ते-पोंछते नहीं थे कि कहीं वह उतर न जाएँ।

अब रहे जिरगौस तो औपचारिक परिचय के लिए इतना काफी होगा कि पूरा नाम जिरगामुल इस्लाम सिद्दीकी एम.ए., एल.एल.बी., सीनियर एडवोकेट हैं। हमारे यूनिवर्सिटी के साथी हैं। उस जमाने में लड़के प्यार और सार में उन्हें 'जिरगौस' कहते थे। इन शिष्ट दायरों में वह आज भी इसी संक्षिप्त नाम से पुकारे और याद किए जाते हैं। अक्सर अपरिचित एतराज कर बैठते हैं कि, भला यह भी कोई नाम हुआ, लेकिन एक बार उन्हें देख लें तो कहते हैं, ठीक ही है। प्रोफेसर ने उनके व्यक्तित्व का वर्णन बल्कि पोस्टमार्टम करते हुए एक बार बड़े मजे की बात कही। बोले, 'उनके व्यक्तित्व में से 'बैंक-बैलेंस और ब्यूक' निकाल दें तो बाकी क्या रह जाता है?' मिर्जा ने झट से लुकमा दिया, 'एक बदनसीब बीवी!' सैर-सपाटे के रसिया, लेकिन जरा खुरच कर देखिए तो अंदर से ठेठ शहरी। ऐसा शहरी जो बड़ी मेहनत और मशक्कत से जंगलों को खत्म करके शहर बसाता है और जब शहर बस जाता है तो फिर जंगलों की तलाश में मारा-मारा फिरता है। बड़े रख-रखाव वाले आदमी हैं और उस कबीले से हैं जो फाँसी के तख्ते पर चढ़ने से पहले अपनी टाई की गाँठ ठीक करना जरूरी समझता है। अधिकतर कार से सफर करते हैं और उसे भी अदालत का कमरा समझते हैं। इसलिए अगर कराची से काबुल जाना हो तो अपने मुहल्ले के चौराहे से ही खैबर के दर्रे का पता पूछने लगेंगे। दो साल पहले मिर्जा उनके साथ मरी और कागान घाटी की सैर कर आए थे और उनका बयान है कि कराची म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की सीमा से निकलने से पहले ही वह पाकिस्तान का रोड-मैप (सड़कों का नक्शा) सीट पर फैलाकर ध्यान देखने लगे। मिर्जा ने कहा, 'तुम्हें बगैर नक्शा देखे भी यह मालूम होना चाहिए कि कराची से निकलने की एक ही सड़क है। शेष तीन तरफ समंदर है।' बोले, 'इसी लिए तो सारी समस्या है।'

इसी सफर की यादगार एक तस्वीर थी जो जिरगौस ने शोग्रां के पहाड़ पर एक पेंशनयाफता टट्टू पर इस तरह बैठ कर खिंचवाई थी जैसे नमाज में झुके हुए हों। इस तस्वीर में वह पूँछ के अलावा टट्टू की हर चीज पर सवार नजर आते थे। लगाम इतने जोर से खींच रखी थी कि टट्टू के कान उनके कानों को छू रहे थे और चारों कानों के बीच में टट्टू की गरदन पर उनकी तीन मंजिली ठोड़ी की कलम लगी हुई थी। अपना सारा वजन रकाब पर डाले हुए थे ताकि टट्टू पर बोझ न पड़े। मिर्जा कहते हैं कि खड़ी चढ़ाई के दौरान कई बार ऐसा हुआ कि टट्टू कमर लचका कर रानों के नीचे से सटक गया और जिरगौस खड़े के खड़े रह गए। कठिन ढलवानों पर जहाँ पगडंडी तंग और दाएँ-बाएँ हजारों फिट गहरे खड्ड होते, वहाँ वह खुद टाँगें सीधी करके खड़े रह जाते। कहते थे, अगर मुकद्दर में गिर कर ही मरना

लिखा है तो मैं अपनी टाँगों की गलती से मरना पसंद करूँगा, टट्टू की नहीं। यह तस्वीर तीन चार हफ्ते तक उनके दफ्तर में लगी रही। बाद में दूसरे वकीलों ने समझा-बुझा कर उतरवा दी कि अगर जानवरों पर बेरहमी को रोकने वालों में से किसी ने देख ली तो खटाक से तुम्हारा चालान कर देंगे।

2

चार दरवेशों का यह काफिला कार से रवाना हुआ। रेगिस्तान की यात्रा और लू का यह हाल कि पसीना निकलने से पहले खुशक। जैकबाबाद से आगे बढ़े तो मिर्जा को बड़ी व्यग्रता से चनों की कमी महसूस होने लगी। इस लिए कि अगर वह उनके पास होते तो रेत में बड़े खस्ता भूने जा सकते थे। दोपहर के खाने के बाद उन्होंने सुराही में पत्ती डालकर चाय बनाने का सुझाव पेश किया जो बिना धन्यवाद इसलिए रद्द कर दिया गया कि सड़क से धुआँ-सा उठ रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद जिरगौस को यही गर्म पानी उससे अधिक गर्म टायरों पर छिड़कना पड़ता था। 120 डिग्री गर्मी से पिघले हुए तारकोल के छींटे उड़-उड़ कर कार के शीशे को दागदार कर रहे थे। इस छलनी में से झाँकते हुए हमने उँगली के इशारे से प्रोफेसर को सात-आठ साल की बिल्लोच लड़की दिखाई जो सर पर खाली घड़ा रखे, सड़क पर नंगे पाँव चली जा रही थी। जैसे ही उस पर नजर पड़ी, प्रोफेसर ने बर्फ की डली जो वह चूस रहे थे, फौरन थूक दी। इस पर जिरगौस कहने लगे कि वह एक बार जनवरी में कराची से हिमपात का दृश्य देखने मरी गए। शहर के बाहरी हिस्से के आस-पास बर्फ पर पैरों के निशान नजर आए जिनमें खून जमा हुआ था। होटल गाइड ने बताया कि यह पहाड़ियों और उनके बच्चों के पैरों के निशान हैं। प्रोफेसर के चेहरे पर दर्द की लहर देख कर जिरगौस तसल्ली देने लगे कि यह लोग तो 'लैंड-स्केप' ही का हिस्सा होते हैं। इनमें अहसास नहीं होता। प्रोफेसर ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है?' हार्न बजाते हुए बोले, 'अहसास होता तो नंगे पाँव क्यों चलते?'

रास्ते की कथा जो रास्ते ही की तरह लंबी और दिलचस्प है, हम अलग रिपोर्ट के लिए उठा रखते हैं कि हर मील के पत्थर से एक यादगार मूर्खता जुड़ी है। चलते-चलते इतना इशारा पर्याप्त है कि प्रोफेसर और मिर्जा के साथ के मजे ने छह सौ मील के सफर और थकन को महसूस न होने दिया। पहाड़ी रास्तों के उतार-चढ़ाव प्रोफेसर के लिए नई चीज थे। विशेष रूप से हमें संबोधित करके बोले, खुदा की कसम यह सड़क तो हार्ट-अटैक के कार्डियोग्राम की तरह है। हर तीखे मोड़ पर उन्हें बेगम की माँग उजड़ती दिखाई देती और वह मुड़-मुड़ कर सड़क को देखते जो पहाड़ के गिर्द साँप की तरह लिपटती बल खाती चली गई थी। जिरगौस ने कार को एक सुरंग में से पिरो कर निकाला तो मिर्जा अंग्रेज इंजीनियरों को याद करके एकदम भावुक हो गए। दोनों हाथ फैलाकर कहने लगे, 'यह हिल स्टेशन अंग्रेजों की देन है। यह पहाड़ अंग्रेज की खोज हैं।' प्रोफेसर कुद्स ने दाईं कनपटी खुजाते हुए फौरन बात काटी की। बोले, 'इतिहास कहता है कि इन पहाड़ों पर अंग्रेजों से पहले भी लोग रहते थे।' मिर्जा ने कहा, 'बजा! मगर उन्हें यह नहीं मालूम था कि हम पहाड़ पर रह रहे हैं।' अंत में नोक-झोंक और पहाड़ी सिलसिला खत्म हुआ और साँप के फन पर एक हीरा दमकता हुआ दिखाई दिया। 'Eureka! Eureka!'

शहर में घुसते ही हम तो अपने-आप को स्थानीय हवा-पानी के हवाले करके ठीक हो गए लेकिन मिर्जा की बाँछें कानों तक खिल गईं और ऐसी खिलीं कि मुँह में तरबूज की काश फिट आ जाए। सड़क के दोनों तरफ बहुत ऊँचे चिनार देख कर उन्हीं की तरह झूमने लगे। बोले, 'इसको कहते हैं दुनिया भर की सजावट। एक पेड़ के नीचे पूरी बरात सो जाए। यूँ होने को लाहौर में भी पेड़ हैं। एक से एक ऊँचे, एक से एक छतनार मगर जून-जुलाई में पत्ता तक नहीं हिलता मालूम होता है। साँस रोके फोटो खिंचवाने खड़े हैं।' हम बढ़कर बोले, 'लेकिन कराची में तो चौबीस घंटे ताजगी देने वाली समंदरी हवा चलती रहती है।' फरमाया, 'हाँ! कराची में पीपल का पत्ता भी हिलने लगे तो

हम उसे प्रकृति का एक चमत्कार जानकर म्यूनिंसिपल कार्पोरेशन का धन्यवाद करते हैं, जिसने यह बेल-बूटे उगाए, मगर यहाँ इस नेचुरल-ब्यूटी की दाद देने वाला कोई नहीं। हाय! यह दृश्य तो बिल्कुल क्रिसमस कार्ड की तरह है।'

हम तीनों यह क्रिसमस कार्ड देखने के बजाय प्रोफेसर को देख रहे थे और वह 'जिंदा' पेड़ों को उँगलियों से छू-छू कर अपनी नजर की पुष्टि कर रहे थे। दरअसल वह खुबानियों को फल वालों की दुकानों में रंगीन कागजों और गोटे के तारों से सजा-सजाया देखने के इस कदर आदी हो गए थे कि अब किसी तरह यकीन नहीं आता था कि खुबानियाँ पेड़ों पर भी लग सकती हैं।

विद्वान प्रोफेसर देर तक उस आत्मा को तृप्त कर देने वाले दृश्य से आनंदित होते रहे बल्कि इसके कुछ हिस्सों का स्वाद भी लिया।

3

पहली समस्या रहने की थी। इसका चयन और इंतजाम प्रोफेसर की तुच्छ राय पर छोड़ दिया गया मगर उनकी नजर में कोई होटल नहीं जंचता था। एक अल्ट्रामॉडर्न होटल को इसलिए नापसंद किया कि उसके बाथरूम बड़े खुले थे मगर कमरे शरारती व्यक्ति की कब्र की तरह तंग। दूसरे होटल को इसलिए कि वहाँ मामला बिल्कुल उलट था। तीसरे को इसलिए कि वहाँ दोनों चीजें एक ही डिजाइन पर बनाई गई थीं यानी - आप समझ ही गए होंगे। चौथे आलीशान होटल से इस कारण पर भाग लिए कि बंदा किसी ऐसे होटल का कायल नहीं जहाँ के बैरे मुसाफिरों से अधिक स्मार्ट हों। फिर कार पाँचवें होटल के पोर्च में जाकर रुकी, जहाँ एक साइनबोर्ड दो-दो फीट लंबे अक्षरों में शयन व भोजन की दावत दे रहा था।

घर का रहना और खाना

अबकी बार मिर्जा बिदक गए। कहने लगे, 'साहब मैं एक मिनट भी ऐसी जगह नहीं रह सकता', जहाँ फिर वही...'

वाक्य पूरा होने से पहले हम उनका मतलब समझकर आगे बढ़ गए।

छठा नंबर 'जंतान' होटल का था। अंग्रेजों के वक्त की यह तरशी तरशाई-सी इमारत सफेदे के चिकने-चिकने तनों की ओट से यूँ झिलमिला रही थी जैसे सालगिरह का केक! देखते ही सब लहालोट हो गए। प्रोफेसर ने आगे बढ़ कर उसके बीते युग की यादगार ऐंग्लो-इंडियन मैनेजर से हाथ मिलाने के बाद किराया पूछा। जवाब मिला, सिंगिल-रूम पचपन रुपए रोज, डबल रूम मियाँ-बीवी के लिए - पिचहत्तर रुपए। सब सन्नाटे में आ गए। जरा होश ठिकाने आए हुए तो मिर्जा ने सूखे मुँह से पूछा, 'क्या अपनी निजी बीवी के साथ भी पिचहत्तर रुपए होंगे?'

खैर, रहने का ठिकाना हुआ तो सैर-सपाटे की सूझी। प्रोफेसर को कोयटा कुल मिलाकर बहुत पसंद आया। यह 'कुल मिलाकर' की पख हमारी नहीं, उन्हीं की लगाई हुई है। दिल में वह इस सुंदरियों के शहर, इस इतराते हुए सौंदर्य के शहर की एक-एक अदा, बल्कि एक-एक ईंट पर न्योछावर थे लेकिन महफिल में खुल कर तारीफ नहीं करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि लोग उन्हें टूरिस्ट ब्यूरो का अफसर समझने लगे। चार-पाँच दिन बाद हमने एकांत में पूछा, 'कहो! हिल स्टेशन पसंद आया?' बोले, 'हाँ! अगर यह पहाड़ न हों तो अच्छी जगह है।' पूछा, 'पहाड़ों से

क्या हरज है?' बोले, 'किसी के कथनानुसार दूसरी तरफ का दृश्य दिखाई नहीं पड़ता।' दरअस्तल उन्हें बिना घास-पात के पहाड़ देखकर थोड़ी मायूसी हुई। इसलिए एक दिन कहने लगे,

'मिर्जा! यह पहाड़ तुम्हारे सर की तरह क्यों हैं?'

'एक जमाने में यह भी देवदारों और सनोबरों से ढके हुए थे। पर्वत-पर्वत हरियाली ही हरियाली थी मगर बकरियाँ सब चट कर गईं। इसीलिए शासन ने बकरियों के दलन के लिए एक मोर्चा बनाया है और पूरा समाज हाथों में खंजर लिए शासन के साथ है।'

'मगर हमें तो यहाँ कहीं बकरियाँ नजर नहीं आईं।'

'उन्हें यहाँ के लोग चट कर गए।'

'मगर मुझे तो गली-कूचों में यहाँ के अस्ली बाशिंदे भी दिखाई नहीं देते?'

'हाँ, वह अब सब्बी में रहते हैं।'

हर रह जो उधर को जाती है सब्बी से गुजर कर जाती है

हमने दोनों को समझाया, 'आज पेड़ नहीं हैं तो क्या? वन-विभाग सुरक्षित है तो क्या नहीं हो सकता।' बोले, 'साहब! वन-विभाग है तो हुआ करे। इन 'क्लीन-शेव' पहाड़ों में उसके शायद वही दायित्व होंगे जो अफगानिस्तान में समुद्री बेड़े के।'

प्रोफेसर यह ठोस पत्थर के पहाड़ देखकर कहा करते थे, 'ऐसे खालिस पहाड़, जिनमें पहाड़ के अलावा कुछ न हो, दुनिया में बहुत कम पाए जाते हैं।' मिर्जा ने बहुतेरा समझाया कि पहाड़ और अंधेड़ औरत दरअस्तल आयल पेंटिंग की तरह होते हैं - इन्हें जरा दूर से देखना चाहिए। मगर प्रोफेसर दूर के जलवे के कायल नहीं। बिन-पेड़ पहाड़ों से उनकी बेजारी कम करने की गरज से मिर्जा ने एक दिन सूरज डूबने के समय मुर्दा पहाड़ की श्रृंखला की वह मशहूर सुरमई पहाड़ी दिखाई जिसके स्लॉट को देखने वाला अगर नजर जमाकर देखे तो ऐसा मालूम होता है जैसे एक सुंदरी मुर्दा पड़ी है। उसके पीछे को फैले हुए बाल, चौड़ा माथा, चेहरे का तीखा-तीखा प्रोफाइल और सीने के तिकोन गौर से देखने पर एक-एक करके उभरते चले जाते हैं। मिर्जा उँगली पकड़कर इस तस्वीर के टुकड़े कंठस्थ कराते गए। वह अपनी आँखों पर दाएँ हाथ का छज्जा बनाकर गौर से देखते रहे और उस हसीन मंजर से न सिर्फ प्रभावित हुए बल्कि मुआइने के बाद एलान किया कि सुंदरी मरी नहीं, सिर्फ बेहोश है।

पहाड़ों के खाली आँचल का शिकवा दो दिन बाद दूर हुआ जब सब मंजिलें मारते मुहम्मद अली जिनाह के प्रिय हिल स्टेशन 'जियारत' (आठ हजार फीट) पहुँचे। जहाँ तक प्रोफेसर की ऐनक काम करती थी, हरा ही हरा नजर आ रहा था। बिस्तरबंद खुलने से पहले योग्य प्रोफेसर ने एक पहाड़ जीत लिया और उसकी चोटी पर पहुँचकर तस्वीरें भी उतरवाईं। जिनमें उनके होटों पर वह विजयी मुस्कुराहट खेल रही थी, जो नवाबों और महाराजों के चेहरों पर मुर्दा शेर के सर पर रायफल का कुंदा रखकर फोटो खिंचवाते समय होती थी। वह इस घमंडी चोटी की ऊँचाई आठ हजार पचास फीट बताते थे और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी इसलिए कि समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई इतनी ही थी, वैसे जमीन की सतह से सिर्फ पचास फीट ऊँची हो पाई थी। झूठ-सच का हाल अल्लाह जाने, मगर मिर्जा

का हल्फिया बयान है कि विजित पहाड़ की चोटी पर कदम रखने के पाँच मिनट बाद तक विजयी प्रोफेसर की आवाज पचास फिट नीचे 'बेस-कैम्प' में साफ सुनाई दी थी, जहाँ जिरगौस मूवी कैमरा लिए शाम की नारंगी रोशनी में इस ऐतिहासिक दृश्य को फिल्मा रहे थे। इस मुहिम के आखिरी चरण में प्रोफेसर ने यह विचार भी प्रकट किया कि ऐसे पहाड़ों पर शासन बिजली की लिफ्ट लगा दे तो देशवासियों में पर्वतारोहण का शौक पैदा हो जाए। इस आरामतलबी पर मिर्जा ने ताना दिया कि हमारी ही जाति का एक व्यक्ति 'जहीरुद्दीन बाबर' जिसके घोड़ों की टापों से यह पहाड़, यह घाटियाँ और यह रेगिस्तान गुँजे थे, दो मजबूत-बदन मुगल सिपाहियों को बगल में दबा कर किले की दीवार पर बेथकान दौड़ता था। यह सुनते ही प्रोफेसर सोते के पास सुस्ताने बैठ गए। उसके साफ पानी से हाथ-पाँव धोए और गले में लटकी हुई छागल से मरी बीयर उड़ेलते हुए बोले, 'मगर हमारा इतिहास बाबर पर खत्म नहीं होता सरकार! आप यह कैसे भूल गए कि वाजिद अली शाह, अवध के नवाब जब जीने पर लड़खड़ाते हुए चढ़ते तो सहारे के लिए (उस जमाने में लकड़ी की रेलिंग का आविष्कार नहीं हुआ था) हर सीढ़ी पर, जी हाँ! हर सीढ़ी पर दोनों तरफ नवयौवना कनीजें खड़ी रहती थीं, मुगलों की तलवार की तरह झुकी हुई और बिना म्यान।'

प्रोफेसर ने भौगोलिक कठिनाइयों पर इस तरह काबू पाने के और भी कई ऐतिहासिक ढंग बयान किए। जिनके विश्वसनीय होने में शक हो तो हो, नएपन में कोई शक नहीं, लेकिन चोटी को जीतने के बाद जब वह सँभल-सँभल कर घुटनियों उतर रहे थे तो बराबर की चोटी पर एक डरावनी परछाईं नजर आई। पहाड़ों पर सूरज जल्दी डूब जाता है और उस समय दृश्य की बारीक चीजों पर रात का काजल फैलता जा रहा था। सन्नाटा ऐसा गहरा साफ और ऐसा आर-पार कि कलाई अपने कान से लगाकर सुनें तो नब्ज की धक-धक साफ सुनाई दे। अचानक उस भेद-भरी परछाईं ने हरकत की। प्रोफेसर के मुँह से अनायास एक चीख निकली और निकलती चली गई और जब वह निकल चुकी तो, 'रीछ' कह कर वहीं सजदे में चले गए। मिर्जा को भी हिदायत की कि जहाँ हो वहीं बैठ जाओ और सिगरेट बुझा दो। मिर्जा पहले ही बरफानी रीछों के किस्से सुन चुके थे। यूँ भी सीधे-सादे मुसलमान हैं, लिहाजा हिदायत पर आँख बंद करके अमल किया बल्कि अमल के बाद भी आँखें बंद रखीं लेकिन कुछ देर बाद जी कड़ा करके उन्हें खोला तो पूछने लगे, 'मगर यह में-में क्यों कर रहा है?' प्रोफेसर ने सजदे ही में जरा देर कान लगाकर सुना और फिर उछल कर खड़े हो गए। फरमाया, 'अरे साहब! आवाज पर न जाइए। यह बड़ा मक्कार जानवर होता है।'

4

जिरगौस जिस व्यवस्था और उपयुक्तता से सफर करते हैं वह देखने योग्य है। मुहम्मद शाह रंगीले के बारे तो सुना ही था कि जब उसकी जीतती रहने वाली सेना (???) नादिर शाह दुर्रानी से लड़ने निकली तो जनरल अपने स्तर के हिसाब से पालकियों में सवार आदेश देते जा रहे थे और आगे-आगे उनके सेवक उनकी चमकदार तलवारें उठाए चल रहे थे। युद्ध के दूसरे सामान के साथ-साथ कई छकड़े मेहँदी से लदे बराबर में थे ताकि सिपाही और सेनापति अपने हाथ-पैरों और बालों को रण में जाने से पहले बादशाह के प्रिय रंग में रँग सकें। मिर्जा की कही है कि सफर तो खैर सफर है, जिरगौस शहर में भी इतना रख-रखाव बरतते हैं कि उनका बड़ा लड़का जब क्रिकेट खेलता है तो चपरासी छतरी लगाए साथ-साथ दौड़ता है। 'गालिब' की तरह जिरगौस तलवार और कफन ही नहीं, शवस्नान का तख्ता और काफूर तक बाँधकर ले जाने वालों में से है। लिहाफ और मलमल का कुर्ता, नमक और कोका-कोला, ताश और कैसानोवा (उनका काला कुत्ता), डिनर जैकेट और 'पिक-विक पेपर्स', बंदूक और फर्स्ट-एड-बाक्स - गरज कि कौन-सी बेकार चीज है जो यात्रा के समय उनके सामान में नहीं होती? अलबत्ता इस बार

वापसी पर उन्हें यह दुख रहा कि सफर यूँ तो हर तरह से कामयाब रहा मगर फर्स्ट-एड का सामान इस्तेमाल करने का कोई अवसर नहीं मिला।

उनके अंदर वो शहरी बसा हुआ है वह किसी क्षण उनका पीछा नहीं छोड़ता और उनका हाथ पकड़ कर कभी बादाम के तने पर चाकू की नोक से अपना नाम और आने की तारीख लिखवाता है और कभी पहाड़ी चकोर के चटख रंगों की प्रशंसा बाईस बोर की गोली से करवा है। कभी गूँजते गरजते झरनों के दामन में 'रॉक एंड रोल' और 'ट्विस्ट' के रिकार्ड बजा कर सीटियों से संगत करता है और कभी जंगलों की सैर को यूँ निकलता है गोया 'ऐल्फी' या 'माल' पर शाम के शिकार को निकला है। मिर्जा ने कई बार समझाया कि देखो पहाड़ों, जंगलों और देहातों में जाना हो तो यूँ न निकला करो - इ यू डी कोलोन लगाए, सिगार मुँह में, हर साँस बियर में बसा हुआ, बातों में ड्राइंग रूम की महक - इससे देहात की भीनी-भीनी खुशबुएँ दब जाती हैं। वह सहमी-सहमी खुशबुएँ जो याद दिलाती हैं कि यहाँ से देहात की सीमा शुरू होती है। वह सीमा जहाँ सदा खुशबुओं का इंद्रधनुष निकला रहता है - कच्चे दूध और ताजा कटी हुई घास की मीठी-मीठी बास, छप्परों-खपरैलों से छन-छन कर निकलता हुआ उपलों का कड़वा-कड़वा धुआँ, घुमर-घुमर चलती चक्की से फिसलते हुए मकई के आटे की गर्म-गर्म सुगंध के साथ 'कुँवारपने की तेज महक', जोहड़ की काई का भीगा छिछलांदा झाँका, सरसों की बालियों की कंटली महकार, भेड़-बकरियों के रेवड़ का भभका, अंगारों पर सिकती हुई रोटी की सीधी पेट में घुस जाने वाली लपट और उनमें रची हुई, उन सब में पिघली हुई खेतों और खलियानों में ताँबे से तपते हुए जिस्मों की हजारों साल पुरानी महक - यह जमीन की वहशी साँस की खुशबू है। जमीन को साँस लेने दो। उसकी खुशबू के सोते खून से जा मिलते हैं। उसे पसीने के छेदों में सहज-सहज घुलने दो। उसे हवाना के सिगार और डियोडरेंट से न मारो कि यह एक बार जिस बस्ती से रूठ जाती है, फिर लौट कर नहीं आती। तुमने देखा होगा, छोटे बच्चों के जिस्म से एक भेद भरी महक आती है। कच्ची-कच्ची, कोरी-कोरी, जो बड़े होकर अचानक गायब हो जाती है। यही हाल बस्तियों का है। शहर अब बूढ़े हो चुके हैं। उनमें अपनी कोई खुशबू बाकी नहीं रही।

प्रोफेसर कुदूस को ऐसी बातों में 'ला दे इक जंगल मुझे बाजार से' वाली फिलास्फी दिखाई पड़ती है। जो सफेद कालर वालों के सुगंधित पलायन की पैदावार है। कहते हैं कि शहरी हिरनों की नाभि उनके सर में होती है। हमने देखा है कि बहस में चारों तरफ से शह पड़ने लगे तो वह मिर्जा के किसी अर्धदार्शनिक वाक्य की दीवारों के पीछे दुबक जाते हैं और इस दृष्टि से उनका रवैया ठेठ प्रोफेसराना होता है। यानी मूल विषय के बजाय फुटनोट्स पढ़ना पुण्य समझते हैं। वह इस तरह कि वो प्राकृतिक दृश्यों की दाद अपने पेट से देते हैं, जहाँ मौसम अच्छा और दृश्य सुंदर हुए, उनकी समझ में उसका आनंद उठाने का एक यही ढंग आया कि डटकर खाया जाए और बार-बार खाया जाए और इस अच्छे कार्य से जो थोड़ा सा समय बच रहे, उसमें रमी खेती जाए। दुर्भाग्य से मौसम हमेशा अच्छा रहता था। इसलिए रोज खाने के बीच के अंतरालों में रमी की बाजी जमती। घनिष्ट मित्रों ने इस तरह पूरे छह हफ्ते एक दूसरे को कंगाल बनाने की घनिष्ट कोशिशों में बिता दिए। जिरगौस तो आँख बचाकर पत्ता बदलने को भी गलत नहीं समझते। इसलिए कि यह न करें तब भी प्रोफेसर हर जीतने वाले को बेईमान समझते हैं। बहरहाल हमने तो यह देखा कि अनगिनत अच्छे क्षण जो चीड़ और चिनार के दृश्यों में बिताए जा सकते थे, वह दोनों ने चिड़िया के गुलाम और पान के चौक्के पर नजरें जमाए बिता दिए और कभी पलट कर बड़े-बड़े पहाड़ों पर डूबते सूरज और चढ़ते चाँद का प्रताप नहीं देखा और न आँख उठा कर इस रूपनगर की आन देखी जिसके सर से भूकंप की प्रलय बीत गई मगर जहाँ आज भी गुलाब दहकते हैं। रास्तों पर भी, गालों पर भी। इनकी कनपटियों पर अब रुपहले तार झिलमिलाने लगे हैं मगर वह अभी उस आवारगी के आनंद से परिचित नहीं हुए जो एक पल में एक

युग का रस भर देती है। अभी उन्होंने हर फूल, हर चेहरे को यूँ जी भर के देखना नहीं सीखा जैसे आखिरी बार देख रहे हों, फिर देखना नसीब न होगा। ऐसे पहाड़ों और घाटियों से गुजरते हुए बाबर ने अपनी आत्मकथा में कितनी मायूसी के साथ लिखा है कि जब हम किसी दरिया के किनारे पड़ाव डालते हैं तो हम और हमारी मुगल फौज अपने तंबुओं की दिशा नदी के सुंदर दृश्यों की तरफ रखती है लेकिन हमारी हिंदी फौज अपने खेमों की पीठ नदी की तरफ कर लेती है।

यहाँ जिरगौस की कम-निगाही दिखाना उद्देश्य नहीं, इमान की बात यह है कि कराची पहुँच कर उन्होंने अपनी खींची हुई रंगीन फिल्में स्क्रीन पर देखीं तो दंग रह गए। कहने लगे, 'यार! कमाल है, इनसे तो मालूम होता है कि कोयटा खूबसूरत जगह है।'

5

जिरगौस खुद को हवेन सांग और एडमंड हिलेरी से कम नहीं समझते। इस यायावरी की इच्छा का विस्तार यह है कि एक दिन मिर्जा ने पूछा, 'यार कंचनजंघा भी देखी?' बोले, 'नहीं हम चीनी फिल्में नहीं देखते। मगर कौन सी फिल्म में काम कर रही है?'

मिर्जा भी उनके साथ दूसरी बार अपने देश की खोज में निकले थे, मगर जहाँ गए, जिधर गए, खुद को ही सामने पाया। आखिर दो महीने भूगोल में आत्मकथा का रंग भर के लौट आए। कहना पड़ेगा कि एक का दिल और दूसरे की आँखें शहरी हैं और उसकी पुष्टि पग-पग पर पिछली यात्रा के वृत्तांत से होती है। आप भी सुनिए, कभी इनकी कभी उनकी जुबानी। जिरगौस का बयान है कि तयोरस्साल मिर्जा कागान घाटी में ग्यारह हजार फिट की ऊँचाई पर फीरोजी रंग की जमी हुई झील, मीलों तक फैले हुए ग्लेशियर और बर्फ से ढके पहाड़ देखकर बहुत हैरान हुए। वह सोच भी नहीं सकते थे कि मलाई की बर्फ के अलावा कोई और भी बर्फ हो सकती है और वह भी मुफ्त! न्यूनाधिक इतनी ही तीव्रता की आत्मलीनता की स्थिति कनहार नदी देखकर उन्होंने अपने ऊपर हावी कर ली। इस तिलमिलाती, झाग उड़ाती, पहाड़ी नदी के पुल पर देर तक दम साधे आश्चर्य की लहरों में गोते खाते रहे। आखिर एक चमकदार मोती लेकर उभरे। बोले, 'किस कदर खूबसूरत झाग हैं। बिलकुल लक्स साबुन जैसे।' उपस्थित लोगों ने इस विज्ञापनी उपमा का मजाक उड़ाया तो तुनक कर बोले, 'साहब! मैं तो जब जानूँ कि वर्ड्सवर्थ को बीच में डाले बगैर आप नेचर पर दो वाक्य बोलकर दिखा दें।'

मिर्जा इस 'गजल' के जवाब के रूप में, इसी जगह और इसी घड़ी का एक और समझाँ खींचते हैं, जिससे पता चलता है कि समय का सदुपयोग करने वाले किस-किस तरह प्राकृतिक सौंदर्य की ऊँचाई बढ़ाते हैं। (तस्वीर में जगह-जगह जिरगौस ने भी शोख रंग लगा दिए हैं।) यह जगह बालाकोट के दामन में इस किनारे पर है, जहाँ नदी दो भारी पहाड़ों के बीच नर्तकी की कमर की तरह बल खा गई है। इससे यह करिश्मा जुड़ा हुआ है कि जहाँगीर के साथ इस रास्ते से कश्मीर जाते हुए नूरजहाँ की आँखों में जलन हुई। जहाँगीर को रात-भर नींद न आई। शाही हकीम के कुहल, सुर्मा और जमाद से कोई लाभ नहीं हुआ। अचानक एक दरवेश उधर से निकला। उसने कहा, जैसे ही चाँद इस सनोबर के ऊपर आए, मलिका नदी का पानी अंजुलि में भर कर उसमें अपना चेहरा देखे और उसी से सात बार अपना चेहरा धोए। मौला अपनी कृपा करेगा। नूरजहाँ ने ऐसा ही किया और आँखें तारा सी हो गईं। उसी दिन से उस जगह का नाम नैन-सुख हो गया और इधर से निकलते हुए आज भी बहुत से हाथ मोती-सा पानी चुल्हू में भर के उस अलबेली मलिका की याद ताजा कर जाते हैं।

हाँ! तो यह जगह थी और शुरू बरसात की रात। सुबह इसी जगह एक ऐतिहासिक फिल्म की शूटिंग के समय हीरोइन के पैर में मोच आ गई थी और दिया जलने तक बालाकोट की घाटी का हर वह निवासी जो उस दिन तक संन्यासी नहीं हुआ था, उस घोड़े को देखने आया जिससे हीरोइन गिरी या गिराई गई थी। इस पल रात की जवानी अभी ढली नहीं थी। यहाँ इस फिल्म के प्रोड्यूसर (जिन का मुकदमा मजिस्ट्रेट से सेशन जजी, सेशन जजी से हाईकोर्ट और हाईकोर्ट से सुप्रीम कोर्ट तक जिरगौस ने बिना पारिश्रमिक और परिश्रम लड़ा और हारा था) जिरगौस के आतिथ्य में बिछे जा रहे थे। साथ में शहद जैसी रंगत के बालों वाली हीरोइन थी जो ट्रांजिस्टर रेडियो पर 'चा चा चा' की धुन पर बैठे ही बैठे अपनी बेजान न हुई टॉग थिरका रही थी और मिर्जा के शब्दों में 'ओपन एयरहोस्टेस' के कर्तव्य बड़ी लगन से पूरे कर रही थी। जिरगौस फीरोजे की अँगूठी से 'पिक विक पेपर्स' की जिल्द पर ताल दे रहे थे। रेडियो पर कोई गर्म गीत आता तो सब के सब सुर मिलाकर इतने जोर से डकराने लगते कि अस्ल गाना बिल्कुल न सुनाई देता। सिर्फ नापसंदीदा गाने खामोशी और ध्यान से सुने गए। अलबत्ता मिर्जा शाम ही से संजीदगी व सर्दी के कारण चुप थे। उन्हें जब अधिक सर्दी लगने लगती तो टूट कर उन डरावनी मशालों को टकटकी बाँध कर देखने लगते, जो बीस मील दूर पहाड़ों पर एक महीने से रात होते ही रोशन हो जाती थीं। एक महीने से कागान के जंगल धड़-धड़ जल रहे थे और दूर-दूर से यात्री सनोबरों की आग देखने लाए जा रहे थे लेकिन यहाँ चारों तरफ अँधेरा था, जिसमें पहाड़ी जुगनू जगह-जगह मुसलमानों की उम्मीदों की तरह टिमटिमा रहे थे। मिर्जा नजरें नीची किए रस भरी गँडेरियाँ चूसते रहे। थोड़ी-थोड़ी देर में जिरगौस अपनी कार की हैडलाइट जला देते और साँवली रात अपने भेद सौंप कर चंद पीछे हट जाती। उनके सोने के दाँत से किरनें फूटने लगतीं और कैसानोवा की काली-काली आँखों के चराग जल उठते। कुछ और स्वरूप भी जिन्हें रोशनी ने रात की चट्टान चीरकर तराशा था, आँखों के सामने कौंध जाते।

इस कौंधे में नदी झमाझम करने लगती, जैसे टिशू की साड़ी। (माफ कीजिए, यह तीर भी इसी तरकश का है।)

सामने मिर्जा चुपचाप पालथी मारे बैठे हुए थे। कुछ बर्फीली हवा, कुछ गँडैरी का असर। उनका हाथ अपनी नाक पर पड़ा तो ऐसा लगा कि जैसे किसी दूसरे की है। फिर नदी के पानी में हाथ डाला तो लगा जैसे पिघली हुई बर्फ है और यह इसलिए महसूस हुआ कि वह वाकई पिघली हुई बर्फ थी। इससे फायदा उठाने के लिए ब्लैक एंड व्हाइट की दूसरी बोटल की गरदन मिर्जा की टाई से बाँधकर नदी में डाल दी गई। अभी कुछ देर पहले प्रोड्यूसर साहब को एक शैंपेन ग्लास के किनारे पर लिपस्टिक का भ्रम हुआ तो उतना हिस्सा अपने दाँतों से तोड़ कर कटर-कटर चबाने लगे और अब वह अँधेरे में सिगरेट का कश लेते तो मुँह के दोनों कोनों पर जीते-जीते खून की धारें चमक उठती थीं। गँडेरियों से निवृत्त होकर मिर्जा इस दृश्य को अपनी आँखों से पिए जा रहे थे जिनमें गुलाबी डोरे उभर आए थे, जो शायद नींद के होंगे। इसलिए कि गँडैरी में अगर नशा होता तो मौलवी गन्ने लेकर गँडैरी खाने वालों के पीछे पड़ जाते। उनके ढंग बेढंगे होते देखे तो जिरगौस ने कंधे झिंझोड़ कर पूछा, 'मिर्जा! तुमने कभी व्हिस्की पी है?' नशीली आँखें खोलते हुए बोले, 'पी तो नहीं, मगर बोटल से ऐसी बू आती है, जैसी उनके मुँह से। बिल्कुल टिंकचर आयोडीन जैसी।' यह कहकर पुष्टि चाहने वाली नजरों से प्रोड्यूसर को देखने लगे, जो इस टिंकचर आयोडीन से अपने मुँह और दिल के जख्मों को डिसइन्फैक्ट कर रहे थे। यह कार्य उस समय तक चलता रहा, जब तक न पीने वालों ने नींद से बेहाल होकर ऑल फौल बकना शुरू न कर दिया और महीने के आखिर की चाँदनी में बालाकोट की ऊँचाई पर उस मकबरे के किनारे दमकने लगे, जहाँ सवा सौ साल पहले इसी घाटी, इसी रुत और उतरते चाँद की इन्हीं तिथियों में एक जियाले ने अपने खून से अपनी जाति के दागों को धोया था और जहाँ आज भी खुदा के सादादिल बंदे नसवार की भेंट चढ़ा कर मुरादेँ माँगते नजर आ जाते हैं।

बात एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ जा पहुँची। दिखाना सिर्फ यह था कि पहाड़ पर जिंदगी हर ढंग और हर ढब से बिताई जा सकती है। हँस कर, रो कर या अधिसंख्या की तरह सो कर। मिर्जा किसी घर बंद नहीं। कुछ नहीं तो, चोरी-चोरी बेगम जिरगौस के मुहब्बत और इमला की गलतियों से भरे हुए खत ही पढ़ते रहते मगर एक दिन एक अजीब रंग में पाए, बल्कि पकड़े गए। देखा कि विभिन्न रंगों और खुशबुओं के टूथपेस्ट से कैरम बोर्ड पर कुछ पेंट कर रहे हैं। खैर टूथपेस्ट के इस्तेमाल पर तो हमें कोई अचंभा नहीं हुआ। इसलिए कि सुन चुके थे कि एब्सट्रेक्ट आर्टिस्ट तस्वीर पर नेलपॉलिश और फिनाइल तक लगाने से नहीं चूकते। एक साहब तो ऐसे गुजरे हैं, जिन्होंने कैनवस पर घोड़े का नाल, अपने कटे हुए नाखून और इकलौती पतलनू के सातों बटन मॉडल की चूसी हुई गम से चिपका कर बगदादी जिमखाना में प्राइज हासिल किया था। कहने का मतलब यह है कि आर्टिस्टों की सुहबत में रहते-रहते हम ऐसी बातों के आदी हो चुके हैं। ठठेरे का कबूतर तालियों से नहीं उड़ता लेकिन इस वक्त परेशानी जो हुई तो इस बात से कि हमारी तारीफ को सच समझ कर वह हमसे इस स्वादिष्ट तस्वीर का शीर्षक पूछने लगे।

'शीर्षक में क्या रखा है। अस्ल चीज तो तस्वीर होती है, तस्वीर!', हमने टालना चाहा।

'फिर भी, क्या नजर आता है तुम्हें?' वह भला कब छोड़ने वाले थे।

'नजर तो आता है, मगर समझ में नहीं आता।'

'पिकासो से भी कभी किसी ने कहा था कि साहब! आपकी तस्वीरें समझ में नहीं आतीं। उसने बड़ा प्यारा जवाब दिया, कहने लगे, चीनी भाषा आपकी समझ में नहीं आती मगर पचास करोड़ आदमी उसे बोलते हैं। क्या समझे?'

'लेकिन यह तस्वीर तो पिकासो की भी समझ में नहीं आ सकती।' हमने कहा।

'बला से न आए। एक तवायफ अपने हुस्न और कमाल की दाद लेने दूसरी तवायफ के पास नहीं जाती। दाद तो दर्शकों से मिलती है।' मिर्जा ने कहा।

जिरगौस की तरह मिर्जा भी हिल-स्टेशन को एक पैदाइशी शहरी की प्यार भरी नजर से देखते हैं और नजर भी ऐसे शहरी की, जिसकी पैदाइश और पहली बीमारी की तारीख एक ही हो। खैर मिर्जा तो हमारे साथ उठने-बैठने वाले और दम बढ़ाने वाले ठठेरे, जिनके स्वभाव से हम इस तरह परिचित हैं जैसे अपनी हथेली से। लेकिन इस बार हमें जिरगौस और हिल-स्टेशन दोनों को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला और हम इस नतीजे पर पहुँचे कि खुदा अगर आँखें दे तो उन्हें इस्तेमाल करने के मौके भी दे, वरना लानत ऐसी जिंदगी पर। मगर हिल-स्टेशन पर - चाहे वह मरी हो या मसूरी, उटाकमंड हो या कोयटा - जिंदगी हमारी आपकी तरह व्यर्थ नहीं होती। उसका एक उद्देश्य, दृष्टि का एक केंद्र होता है। वह यह कि सदा सुहागिन सड़कों पर वह फैशन परेड देखी जाए, जिसमें हर साल चैन से भरे घरानों की बेचैन बेटियाँ धन और तन की बाजी लगा देती हैं। इन्हीं सड़कों पर काली काफी और आलू की हवाइयों पर गुजारा करने वाले साहित्यकार स्ट्रैण भाषा में एक दूसरे को रक्तम क्रांति पर उकसाते हैं। इन्हीं सड़कों पर अपने गमलों में बरगद उगाने वाले इंटेलेक्चुअल किसी खूबसूरत लड़की को पत्नी का रूतबा देने की घात में लगे रहते हैं। उधर खूबसूरत लड़की अपने सुंदर मुखड़े का दिया लिए इस तलाश में लगी हुई कि जल्दी-से-जल्दी किसी बूढ़े लखपति की विधवा बन जाए। यह स्वयंवर, यह सुहाग-रूत हर हिल-स्टेशन पर हर साल

मनाई जाती है और इससे पहले कि दमकती हरियाली बर्फ का कफन पहन कर सो जाए, चिनारों की आग ठंडी और काफी हाउस वीरान हो जाएँ, मवेशी मैदानों में उतरने लगे और सड़कों पर कोई जानदार नजर न आए, सिवाय टूरिस्ट के - इससे पहले कि फूलों का मौसम बीत जाए, बहुत से हाथों की तीसरी उँगली में अँगूठियाँ जगमगाने लगती हैं। अगरचे जिरगौस के सेहरे के फूल दो बार खिले क्या, मुरझा चुके हैं मगर अब भी सड़क पर ढेर सारे हसीन चेहरे देखकर उनका हाल ऐसा होता है जैसे खिलौनों की दुकान में अनाथ बच्चे का।

इस स्वयंवर के साथ हिल स्टेशन पर सारे देश के लाइलाज रईसों और खाते-पीते कमजोरों का एक विराटकाय सालाना मेला लगता है। इसमें बड़े पैमाने पर बीमारियों का आपसी आदान-प्रदान होता है। आपने शायद सुना हो कि बनारस में, जो अपनी सुबह और साड़ियों के बावजूद एक पवित्र स्थान की हैसियत से प्रसिद्ध है, सारे हिंदुस्तान के आस्थावान बूढ़े मरने के लिए खिंच कर चले आते हैं और बहुत जल्द दिली मुराद पाते हैं। जो बीमार अपनी इच्छाशक्ति की कमजोरी के कारण खुद को मरने के लिए तैयार नहीं कर पाते, वह निकटतम हिल-स्टेशन की दिशा पकड़ते हैं। हमारे मिर्जा साहब का बाद वाली चीज से कितना पुराना संबंध है, इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि बीस बरस पहले आई.सी.एस. की परीक्षा में प्रथम आने के बाद उनकी डॉक्टरी जाँच हुई तो पता चला, दाँतों के अलावा और कोई चीज ठीक नहीं। वैसे बिरादरी के एक मेंबर होने के नाते हम खुद भी अपने स्वास्थ्य की तरफ से एक क्षण भी बेध्यान नहीं, फिर भी अभी यह नौबत नहीं आई कि विटामिन की गोली हल्क से उतरते ही अपनी बाँहों की मछलियाँ फुला-फुलाकर देखें, लेकिन मिर्जा का वह दैनंदिन कार्य हो गया कि दवाएँ हज्म करने के लिए शाम को माँगे-ताँगे की छड़ी घुमाते हुए निकल जाते। दस्तानों की तरह यह सुडौल छड़ी भी प्रोफेसर के दोस्त पेरिस से लाए थे। उस पर फ्रेंच ऐक्ट्रेस बरजेत बारदो की टाँग का ऊपरी हिस्सा बतौर दस्ता लगा हुआ था। इसी के सहारे प्रोफेसर ने वह टीला 'फल्ह' किया जिसकी विजय का हाल पहले सुनाया जा चुका है। इसी के जरिये वह अँधेरी रातों में अपने और अशिष्ट कुत्तों के बीच एक गर्वीली दूरी कायम रखते हैं और अब इसी को हिलाते, सहलाते हुए मिर्जा जिनाह रोड की हर तीसरी दुकान में (जो दवाओं की होती है) धड़धड़ाते घुसते चले जाते हैं। काउंटर के पास लगी मशीन में खोटी इकन्नी डालकर अपना वजन लेते और अगर औंस दो औंस बढ़ जाता तो स्थानीय हवा-पानी की शान में कसीदे पढ़ते लौटते हैं। एक दिन हमने कहा, 'देखो! दवाओं की यह दुकान कितनी चलती है मगर तुम्हें यहाँ तुलते कभी नहीं देखा।' कहने लगे, 'तौबा कीजिए साहब! मालूम हुआ है कि उसकी मशीन खास तौर पर औरतों के लिए बनाई गई है। एक दिन तुला तो कुल चालीस पौंड उतरा। धक से रह गया। सेठ से जाकर शिकायत की', तो जवाब मिला कि यह दुश्मनी थोड़े ही है। सभी को पचास पौंड कम बताती है। उस के बाद उस बेईमान ने खोटी इकन्नियों की ढेरी में से मिर्जा को एक इकन्नी वापस करनी चाही, जिसे उन्होंने शालीनता के कारण स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

भला मिर्जा ऐसी दुकान में जाकर सेरों बल्कि मनो मायूसियाँ क्यों मोल लेने लगे। वह तो उन स्वस्थ लोगों में से हैं, जो टहलने निकलें तो कदमों की गिनती रखते हैं और ताकत देने वाला कौर लेने से पहले उस खून की एक-एक बूँद का हिसाब लगा लेते हैं, जो उससे बननी चाहिए - मगर नहीं बनती। उनके खाने के पैमाने के हिसाब से काले हिरन की कलेजी में एक पूरे ऊँट की पौष्टिकता होती है और एक पहाड़ी चकोर में एक हिरन के बराबर लेकिन कोयटा की एक खुबानी पूरे तीन चकोरों के बराबर होती है, बाकी अंदाजे पर। एक दिन अपने हिसाब से डेढ़ दो दर्जन साबुत ऊँट पेड़ से तोड़ कर कचर-कचर खाए और झूमते-झामते हमारे पास आए। कहने लगे, 'साहब! यह शहर तो इतना बढ़िया है कि खा-खा के अपना तो दिवाला निकला जा रहा है। खाना हल्क से उतरा नहीं कि हज्म।' हमने कहा, 'इससे लाभ?' बोले, 'देखते नहीं?' टूरिस्ट बीबियाँ बेकारी से बचने के लिए जो स्वेटर सटासट बुनती

रहती हैं, वह तैयार होने से पहले तंग हो जाते हैं। शाम को चाय और चिलगोजे के साथ दूसरों की बुराई बड़ा मजा देती है। फिर हर चीज सस्ती, हर चीज शुद्ध। हद यह कि स्कैंडल में भी झूठ की मिलावट नहीं। कराची में शुद्ध दूध तो बड़ी बात है, पानी भी शुद्ध नहीं मिलता। उसमें भी दूध की मिलावट होती है मगर यहाँ दुकानदार आदतन सच बोलते हैं और सस्ता बेचते हैं। इसी लिए कई टूरिस्ट समझते हैं कि छोटा शहर है।'

फिर वह कोयटा की बेहतरी एक के बाद एक दुनिया के दूसरे शहरों पर साबित करने लगे।

'लाहौर?'

'कलेंडर से अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर के महीने हमेशा के लिए निकाल दिए जाएँ तो वल्लाह! लाहौर का जवाब नहीं।'

'रोम?'

'एक हसीन कब्रिस्तान। जमीन के नीचे की आबादी, ऊपर की आबादी से कहीं अधिक है। रहे ऐतिहासिक खंडहर, सो उनमें चिमगादड़ें और अमरीकी टूरिस्ट बसेरा करते हैं। जेम्स ज्वायस ने झूठ नहीं कहा था कि रोम की मिसाल एक ऐसे व्यक्ति की सी है जो अपनी नानी की लाश की नुमायश करके रोजी कमाता है।'

'मरी, पहाड़ों की रानी मरी?'

'साहब! दृश्यों में कोयटा से कम नहीं, वही नक्शा है भले इस कदर आबाद नहीं।'

'और दिल्ली?'

'शहर बुरा नहीं, मगर गलत देश में बसा है।'

'जिनेवा - दुनिया के लोगों की सेहत बनाने वाला शहर?'

'साहब मरने के लिए उससे बढ़िया जगह इस धरती पर कहीं नहीं।'

'कराची के बारे में क्या राय है हुजूर की?'

'बहुत अच्छी! अगर आप सर के बल खड़े हो कर देखें तो कराची की हर चीज सीधी नजर आएगी।'

'यार! तुम कराची के साथ तो बिल्कुल जियादती कर रहे हो।'

'हरगिज नहीं। मैं कराची के अधिकारों के लिए हमेशा लड़ता रहूँगा। इसीलिए मैं कराची वालों की इस माँग की बड़ी दृढ़ता से हिमायत करता हूँ कि मलेर के पुल और सड़क की मरम्मत होनी चाहिए, जरूर होनी चाहिए और जल्द होनी चाहिए ताकि कराची से निकलने में आसानी रहे।'

'यही बात है तो तुम वापस क्यों जा रहे हो?'

'मगर (तर्जनी उठाते हुए) एक बात है। कराची वाले आगे होकर कराची की बुराई करते हैं लेकिन कोई और उनकी हाँ में हाँ मिला दे तो बुरा मान जाते हैं। बस इसी अदा पर प्यार आता है।'

फिर कोयटा की श्रेष्ठता साबित करते-करते बेध्यानी में कहने लगे, 'हाय! यह महान शहर अगर कराची में होता तो क्या बात थी।'

मिर्जा ने इतना कहा और दायों हाथ फैलाकर अपना सीना फुलाया और छाती पीटने लगे। फिर एक ठंडी आह भरी और चुप हो गए।

उनके गालों पर पवित्र रक्त की वह बूँदें चमक रही थीं, जिन्हें हालात की आग ने बहुत जल्द सुखा दिया।

(अप्रैल - 1963)

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)